ISSN : 2350-0441

Shodh Chetna

शोध चेतना

The International Reffered, Reviewed & Multifocal Research Journal

Year - 2 **(Jul. - Sep., 2016)** **Volume - 3**

Chief Advisor
Ajay Srivastava
Librarian, State Central Library, Rewa

Chief Editor
Sushil Kumar Kushwaha

Honourary Editor
Dr. Sanjay Shankar Mishra
Professor and Head, Department of Commerce
Govt. T.R.S. College, Rewa (M.P.)

Editor
Dr. Surya Naryan Gautam
Associate Professor (Sanskrit)
J.J.T. University (Raj.)

Managing Editor
Harsh Kushwaha

- The persons holding the posts of the Journal are not paid any salary or remunaration. The Journal's work is purely academic, non political, posts of Journal are honorary.
- The Journal will be regularly indexed and four issues will be released every year in (January to March) - 1, (Apr. to Jun.) - 2, (July to Sept.) - 3, (Oct. to Dec.) - 4

Editorial Board

Shri Narendra Shashtri
Ved Pravakta, Arya Samaj, **Singapore**

Dr. Umakant Mishra
Prof. & HOD (Sanskrit-Academic)
T.R.S. College, **Rewa**

Dr. D. N. Tripathi
Associate Professor & HOD (Sanskrit)
Dharma Samaj P.G. College, **Aligarh**

Dr. Narendra Kumar Gupta
Professor, Department of Law
Himachal Pradesh University, **Shimla**

Dr. (Major) Vibha Srivastava
Professor & Head, Department of History
Govt. Girls P.G. College, **Rewa (M.P.)**

Dr. Sudha Soni
Prof. Department of History
Govt. Girls P.G. College, **Rewa**

G.H. PUBLICATION
121, Shahrarabag, Allahabad-211 003
e-mail : ghpublication@gmail.com
website : www.ghpublication.com

© *Publishers*

Registration Fee : **Rs. 1300.00**

Membership Fee :

Single Copy **Rs. 350.00 (Individual)**

Rs. 500.00 (Institution)

Annual (4 Issues) **Rs. 2000.00 (Institution)**

Life Member Fee **Rs. 5000.00**

Mode of Payment :

DD/Cheque/Cash should be sent in favour of

G. H. PUBLICATION
Union Bank of India
Chowk, Allahabad-211 003
A/c. No. 394301010122432
IFSC-UBIN 0539431

SUBJECT EXPERT/ ADVISORY BOARD

Dr. Smt. Poonam Mishra (History)
Govt. T.R.S. College, Rewa (M.P.)

Dr. Rajendra Prasad Chaturvedi
Prof. & HOD (Sanskrit)
Govt. T.R.S. College, Rewa (M.P.)

Dr. Dinesh Kumar Singh (Botany)
J.J.T. University (Raj.)

Mr. Vineet Kumar Gupta (English)
Govt. Acharya Sanskrit College
Alwar (Rajasthan)

Dr. Vinod Tiwari (Law)
Rajeev Gandhi Law College, Bhopal (M.P.)

Prof. Ratan Lal Bhojak (Education)
Principal, B.T.T. College
Sardar Sahar, Churu (Raj.)

स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक : सुशील कुमार कुशवाहा द्वारा 'शोध चेतना', जी.एच. पब्लिकेशन, 121 शहरारा बाग, इलाहाबाद-211 003 से प्रकाशित एवं श्री विष्णु आर्ट प्रेस, 332/257, चक जीरो रोड, इलाहाबाद-3 से मुद्रित। प्रधान संपादक : सुशील कुमार कुशवाहा, (M) 09329225173, 9532481205, E-mail : ghpublication@gmail.com website : www.ghpublication.com

जनरल में प्रस्तुत विचार और तथ्य लेखक का है, जिसके विषय में प्रकाशक, मुद्रक एवं सम्पादक मंडल सहमत हो, आवश्यक नहीं। सभी विवादों का न्यायिक क्षेत्र इलाहाबाद रहेगा।

सम्पादकीय

साहित्य शब्द को परिभाषित करते हुए आचाय दण्डी ने कहा है–

साहित्यमनयोः शोभासालिनां प्रतिकाव्यसौ।
अन्यूनातिरिक्तत्वं मनोहरिण्यवस्थितिः।।

अर्थात् साहित्य वह है जिसकी सौन्दर्यबोध के लिए काव्य में एक जैसी मनोहारिणी स्थिति हो, अथवा सरल शब्दों में यह कहा जाय कि, जितने सुन्दर अर्थ का वर्णन किया जा रहा हो उस वर्णन के अनुरूप ही शब्दों का चयन भ किया जाना चाहिए। इसे कुछ इस अंदाज में भी परिभाषित किया जा सकता है कि, काव्यसंसृति में जितने सुन्दर शब्दों का चयन किया जा रहा हो उस शब्दसमूह का अर्थ भी उतना ही सुन्दर हो।

साहित्य की भूमिका समाज में दर्पण की भाँति है। वह हमें भ्रम से निकालकर यथार्थ का दर्शन कराता है। आज साहित्य का स्वरूप भी बदल गया है, उसके भी अनेक मार्ग तैयार हो चुके हैं। साहित्य सर्जना भी जाति, पंथ, सम्प्रदाय, भौगोलिक दुराग्रह से ग्रसित लिखे जा रहे हैं। जबकि, साहित्य का स्वरूप नदियों, पर्वतों, वृक्षों, वनस्पतियों की ही भाँति वैयक्तिक न होकर सार्वजनिक अभ्युदय और कल्याण के लिए होते हैं।

सत्य यह है कि, साहित्य ही समाज को उसके कर्त्तव्यों के लिए प्रेरक बनता है, उसका स्थान समाज में देह और प्राण की भाँति एकाकार है। समाज के बिना साहित्य का अस्तित्व नहीं और साहित्य के बिना समाज का मूल्य नहीं।

साहित्य के अनेक स्वरूप हैं, जैसे–भक्ति साहित्य, ऐतिहासिक साहित्य, भौगोलिक साहित्य, राजनैतिक साहित्य, आर्थिक साहित्य इत्यादि। इन सबके भीतर भी अनेकानेक विषयों का संकलन है तथा सबका सीधा सम्बन्ध समाज से है। मनुष्य के लिए इन सबकी समान रूप से आवश्यकता है। इन सबमें ज्ञान-विज्ञान के विविध आयामों की कुंजियाँ निहित हैं।

किसी भी समाज को श्रेष्ठ व सुन्दर बनाये रखने के लिए विचारों का आदान-प्रदान एवं किये गये कार्यों का मूल्यांकन आवश्यक है। समाज सही दिशा में कार्य करे और उसके द्वारा किये जा रहे कार्यों की समीक्षा भी हो जिससे समाज को यह पता चल सके कि, वह सही दिशा में अग्रसर है। वह प्रभावी साधन साहित्य ही है जिससे यह सम्भव हो सकता है।

साहित्य न केवल राम, कृष्ण, महात्मा बुद्ध, महाबीर, विवेकानन्द, दयानन्द, महात्मागांधी जैसे आदर्श समाज के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं अपितु समाज को उत्तम भक्ष्य बताकर उसके स्वास्थ्य का चिंतन भी करते हैं, उनके रहन-सहसन के तौर-तरीकों के वर्णन द्वारा सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि की उन्नत अभिव्यंजना करते हुए वे स्वयं मनोरंजन के साधन बनकर उसके अतीत का गौरव गान करते हैं।

अतः प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि, वह साहित्य साधना में स्वतः प्रवृत्त होकर अन्यों के लिए भी प्रेरक बने जिससे समाज में शिक्षा का प्रसार हो अशिक्षा का विनाश हो, लोक सन्मार्ग पर चलें और समाज में सुख शान्ति के वातावरण का निर्माण हो सके। यह तभी सम्भव है जब समाज साहित्य के सरोकार के महत्त्व को समझेगा और उसे अपने जीवन में यथोचित महत्त्व भी प्रदान करेगा।

डा. सूर्य नारायण गौतम

 ISSN : 2350-0441

अनुक्रम

- **"Epigraphical Note on the Social Condition of Madhya Pradesh during post Gupta Period"** **9-12**
  Dr. Vishal Soni
- **A Comparative Study between Rural and Urban College going students in Relation to Anxiety** **13-19**
  GulSnober, Dr. Devendra Kumar
- **Studies on the Cytology of the order Hemiuratoidea (Trematoda : Digenea) of Rewa Region with Especial Reference to their Spermatogenesis** **20-24**
  Dr. Anita Shukla
- **Labour Participation Action in Management** **25-28**
  Dr. Omika Singh
- **Impact of Brick Kiln Dust on Some Leaf Epidermal Characters of Root-Knot Nematode infected Chick Peas** **29-39**
  Dr. Navneet Sharma, Dr. Dinesh Kumar Singh
- **Growth and Body Composition of Rohu, Labeo Rohita (Hamilton) Fed Compounded Diet : Winter Feeding and Rearing to Marketable Size** **40-50**
  Suhail Ahmad Chadoo, Virendra Kumar
- **"E-Commerce : A New Innovation in Busness"** **51-55**
  Kripa Shankar Tiwari, Aradhana Dubey
- **महीयसी महादेवी वर्मा और नलिनीवाला देवी की जीवन एवं काव्य यात्रा का तुलनात्मक अध्ययन** **56-65**
  डॉ. अदिति सैकिया
- **संवेदना का यथार्थ स्वरूप एवं प्रासंगिकता** **66-69**
  डॉ. उमाकान्त मिश्र
- **छत्तीसगढ़ राज्य में नक्सली समस्या का मूल्यांकन** **70-76**
  डॉ. बी.के. गर्ग, डॉ. विनोद गर्ग
- **बघेलखण्ड में पत्रकारिता का प्रादुर्भाव एवं जनजागरण में उसका योगदान** **77-80**
  डॉ. विभा श्रीवास्तव
- **मध्यप्रदेश में घटता लिंगानुपात प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन** **81-86**
  डॉ. एम.एल. तिवारी, सीमा दुबे
- **पुराण की प्राचीनता : एक अध्ययन** **87-92**
  डॉ. रमाशंकर द्विवेदी, डॉ. बुद्धिलाल प्रजापति
- **डॉ. मोहम्मद इकबाल का आध्यात्मिक दर्शन** **93-96**
  डॉ. सुधा सोनी
- **भारत में रोजगार की संभावनाएँ** **97-102**
  डॉ. हरिओम शुक्ल

- ❒ **वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दर्शन की उपादेयता** 103-106
  डॉ. रमाशंकर द्विवेदी, अंजू सिंह
- ❒ **म.प्र. के डिण्डोरी एवं मण्डला जिले की बैगा जनजाति के सामाजिक एवं आर्थिक विकास का एक भौगोलिक अध्ययन** 107-113
  डॉ. एस.पी. पाण्डेय, मनोज द्विवेदी
- ❒ **ग्रह-गोचर-विचार** 114-120
  डॉ. बृजेश नाथ ओझा
- ❒ **सविनय अवज्ञा आंदोलन में महिलाओं की सहभागिता (महाकोशल के विशेष संदर्भ में)** 121-125
  डॉ. ममता गर्ग
- ❒ **आचार्य शुक्र एवं उनके द्वारा प्रतिपादित नीतिक उपाय** 126-129
  डॉ. संध्या कुमारी
- ❒ **पर्यावरण को बचाने के लिए वनों का संरक्षण** 130-134
  डॉ. एम.पी. सिंह
- ❒ **''धर्म और मानवीय चेतना''** 135-137
  घनश्याम दास साकेत
- ❒ **प्रोत्साहन योजनाओं की आवश्यकता एवं महत्व** 138-141
  डॉ. के. के. शर्मा, मुकेश कुमार तिवारी
- ❒ **बहिर्विवाह का विश्लेषण** 142-146
  डॉ. राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी, डॉ. पंकजा मिश्रा
- ❒ **मन्वन्तर और उसके अधिकारी** 147-149
  शिवाली त्रिपाठी
- ❒ **रामायण में वर्णित धर्म एवं कर्मकाण्ड** 150-153
  डॉ. राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी, डॉ. निर्मला मिश्रा
- ❒ **महिला विकास कार्यक्रम एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** 154-156
  डॉ. अभिलाषा सिंह
- ❒ **सामाजिक विकास योजनाओं का गरीबों पर प्रभाव** 157-159
  डॉ. कमल प्रताप सिंह परमार
- ❒ **उपविज्ञान एवं पर्यावरण** 160-165
  डॉ. सुषमा श्रीवास्तव, लक्ष्मी गुप्ता
- ❒ **ज्योतिष ग्रन्थ वशिष्ठ संहिता के रचनाकार वशिष्ठ : एक परिचय** 166-170
  डॉ. वागीश कुमार तिवारी
- ❒ **मध्य प्रदेश के अन्तर क्षेत्रीय औद्योगिक विकास में विषमता के प्रभाव** 171-177
  डॉ. प्रियंका शुक्ला
- ❒ **वाल्मीकि रामायण में रस-योजना** 178-183
  डॉ. रामनरेश तिवारी, डॉ. अनामिका चतुर्वेदी

- ❒ **वर्तमानकालिक सन्दर्भ में 'राष्ट्रीयता एवं राजनैतिक चेतना'** 184-191
  अंजना कुमारी
- ❒ **''समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप''** 192-195
  डॉ. प्रतिमा सिंह
- ❒ **भागवतपुराण की लघुकथाओं का भक्तिसाहित्य पर प्रभाव** 196-199
  डॉ. मनीष कुमार
- ❒ **प्रजातंत्रीकरण में ग्रामीण महिला नेतृत्व के उभरते प्रतिमान** 200-206
  डॉ. (श्रीमती) दीपाली दास
- ❒ **उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत उपभोक्ताओं के अधिकार** 207-209
  डॉ. सुशील कुमार मिश्र
- ❒ **सच्ची मित्रता का आदर्श : कृष्णसुदामाकथा** 210-214
  डॉ. (श्रीमती) ममता द्विवेदी
- ❒ **व्याकरणशास्त्रं लोकजीवनं च** 215-217
  डॉ. द्वारिका नाथ त्रिपाठी
- ❒ **वामनपुराणे सरस्वत्याः वैशिष्ट्यम्** 218-220
  डॉ. सूर्य नारायण गौतमः
- ❒ **नारदीयपुराणे गणितज्योतिषम्** 221-223
  डॉ. देवेन्द्र कुमार तिवारी
- ❒ **महाभाष्ये भारतीय संस्कृतेः विविध आयामाः** 224-227
  मनोज कुमार पाण्डेयः
- ❒ **एकार्थीभावष्यपेक्षाभाववादिनां मतानि** 228-231
  गोविन्दसिंह पैंकरा, घनश्यामदास साकेत
- ❒ **व्याकरणशास्त्रीयं धात्वर्थसमीक्षणम्** 232-234
  डॉ. रावेन्द्र कुमार मिश्र
- ❒ **वेदेषु गोतत्त्वम्** 235-239
  डॉ. देवेन्द्रप्रसादमिश्रः
- ❒ **गेहूँ की फसल में खरपतवार द्वारा खरपतवारों का नियंत्रण** 240-243
  शिव प्रसाद विश्वकर्मा, एस. पी. वर्मा
- ❒ **A Comparative Study of Job Satisfaction in Part Time and Full Time Teachers of KGBV of Uttar Pradesh** 244-248
  Dr S P Verma, Dr Adesh Kumar Verma, Mamta Kanoujia
- ❒ **Role of SHG Based Micro_Finance in Empowering Rural People : A Review** 249-255
  Dr S P Verma, Dr Adesh Kumar Verma, Mamta Kanoujia
- ❒ **उत्तर प्रदेश के संतुलित आर्थिक विकास की समस्याएँ एवं कठिनाइयाँ** 256-259
  डॉ. जे.पी. सिंह

ISSN : 2350-0441

इस भौतिक जगत में हर व्यक्ति को
किसी-न-किसी प्रकार के
कर्म में
प्रवृत्त होना पड़ता है।
किन्तु
ये कर्म ही
उसे इस जगत से
बाँधते या मुक्त कराते हैं।
निष्काम भाव से परमेश्वर की प्रसन्नता
के लिए कर्म करने से
मनुष्य कर्म के नियम से
छूट सकता है और आत्मा
तथा परमेश्वर विषयक
दिव्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

कर्मयोग-गीता

वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है।
वेद का पढ़ना-पढ़ाना
तथा
सुनना-सुनाना
सब आर्यों का परम धर्म है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

"EPIGRAPHICAL NOTE ON THE SOCIAL CONDITION OF MADHYA PRADESH DURING POST GUPTA PERIOD"

❒ Dr. Vishal Soni

ABSTRACT

A number of inscriptions have been found from various parts of Madhya Pradesh. These inscriptions are the authentic source of providing information not only about Indian polity but also about Indian society of ancient period. Scholars have written a lot about social condition of India but on the basis of literary sources. Previously, sufficient light has not been thrown on post Gupta period. The research paper written by me focuses especially on the inscriptions which provide valuable information about social condition of Madhya pradesh during post gupta period.

Varṇāshrama System

Supreme duty of the kings was to protect the varṇāshram dharma. Khoh copper plate of Parivrjāka Mahārāja Saṁkshóbha (G.S.209) records that he established the varṇāshram dharma. Kāritalāli stone inscription of Kalachuri King Lakshmaṇarāja (Kalachuri year 593) refers to the word "Chaturvaraṇnya."[1] From above discription it is clear that the society was divided into four varṇas. Brāhmaṇas were seen as respectable persons. They had gained much importance in the society. Land donations were mostly given to the Brāhmaṇas. Ratlām plate of Dhruvasēna II (G.S.321) records the grant of a field to two Brāhmaṇas of Pârâśara Gôtra by the king Dhruvasêna.[2]

Tiwarkhēḍ plate of the Rāshṭrakūṭa king Nannarāja (Śaka saṁvat 553) records a grant of land in the villages Tivērēkhēṭa & Ghūikhēṭā to Muṇḍibhaṭṭa, a Mādhyandina Brāhmaṇa of Bhāradvāja gôtra.[3] Jeṭhwai plate of Rāshṭrakūṭa queen Śīlamahādēvī records the grant of a village by the queen to two Brāhmaṇas. One of the donees was Mārachcha. He was an adhvaryu & a religious student of the Kānva - śakhā. He was related to the Śālaṅkāyan-gôtra. The other donee was Durgāditya. He was also an adhvaryu, but was a religious student of the

* Ancient Indian History, Culture & Archaeology, Dr. H. S. Gour Vishwavidyalaya Sagar (M.P.)
E-mail : vishalsoni864@gmail.com, Mob. 9977437600

Madhyandina - śākhā. He was related to Jātūkarṇya gôtra.[4]

Verse 5 of Sēnakapam inscription of the time of Śivagupta Bālārjuna speaks of a Brāhmaṇa named Śivarakshita, who enjoyed the status of a Rājan & seems to have been the governor of a tract called Navyāsī-vishaya. It is evident from above inscription that Brāhmaṇas started taking part in politics. They played an important role in politics. They were appointed on higher posts of the kingdom. Verses 10-11 of above inscription state that a Brāhmaṇa Durgarakshit was the bee at the feet, i.e. a servant of king Bālārjuna.[5] Vaillabhaṭṭasvāmin temple inscription (V.S. 933) records that a Brāhmaṇa Alla was appointed to the guardianship of Gwalior fort by the king Śrimad-Ādivarāha. This clearly indicates the downfall in the condition of Brāhmaṇas during that period.[6]

Gwalior praśasti of Mihirbhoja records that the king Nāgbhaṭṭa II did his duty according to Kshatriya dharma & performed several yajñs.[7] Vaillabhaṭṭasvāmin temple inscription records the field cultivated by Memmāka the son of the Kshatriya Devavarman.[8] From above discription it is clear that Kshatriyas did farming in that period. The supreme duty of Kshatriyas was to protect the society but they started doing deeds of lower varṇs.

Mahuā inscription of Vatsarāja records that the body of Vatsarāja which was divided by his yajñōpavīta (sacred thread) showed that he bore in his body faculties (tējas) of both the Brāhmaṇa & Kshatriya. The expression brāhmatējas or faculty of Brāhmaṇa appears to stand for the performance of all kinds of dharmas & Kshāttra-tējas or the faculty of the warring race for the protection of the people. On palaeographical grounds this inscription may be assigned to the latter half of the eight century A.D. From above discription it is clear that intercast marriages were in vogue during eight century A.D. in Shivpuri district of M.P.[9]

Condition of women

Sāgar stone inscription of Śankaragaṇadēva records some religious work done by a lady named Kṛishṇādēvi for the religious merit of her mother & father. It is clear from above inscription that women took interest in religious work.[10] Jeṭhwai plate of Rashṭrakūṭa queen Śīlmahādevī records that the queen made a grant of a village & issued the charter without any formal sanction or approval of her husband king Dhruvarāja. She bore the title of paramēśvarī paramabhaṭṭārikā which does not seem to be empty. This indicates that she was a co-partner of her husband. It is clear from above discription that in ancient times wife & husband were jointly concerned in all the affairs of the life.[11]

Gwalior praśasti of Bhôja refers to the word "punarbhū" i.e. the woman who marries twice. It is clear that the women had right of second marriage.[12] Sesai memorial pillar inscription records self cremation of a mother sorrowing for her two sons who were killed in a battle. This is the first example of a mother's self cremation in separation of her sons. Above inscription is datable to 5th-7th century A.D.[13]

Food system

Chhoti Deori stone inscription of Śaṅkaragaṇa records donation of a granary (kridara) by vishayapati of Kakandakuṭu, Chuṭu Nāgaka during the reign of the illustrious Śaṅkaragaṇa.[14] It is clear that govt. buildings were built to keep grains. These granaries might be used at the time of natural calamity. Jēṭhwaī copperplate refers to the word "Agnihôtra" i.e. the yajñ in which milk, curd, ghee & rice (taṁdul) were offered. It is clear that people used milk curd, ghee & rice in their meal.15

Education

Indragaḍh inscription of Rāshṭrakūṭa king Ṇaṇṇappa (V.S. 767) furnishes the name of two Pāśupata teachers, Vinītarāśi & his disciple Dānarāśi.[16] Jeṭhwai copper plate refers to a Bārhmaṇa who was well versed in the four vedas.[17] Ratlâm plate of Dhruvasēna II (G.S. 321) mentions trivêdin Brāhmaṇa Daṭṭasvāmin.[18]

Kārītalāi stone inscription of Lakshmaṇarāja (Kalachuri year 593) refers to a saintly person whose mind was devoted to the observance of the rules of conduct laid down in the sruti & smriti.[19]

Superstition

Tiwarkhēḍ plate of the Rāshṭrakūṭa king Nannarāja (Śaka saṁvat 553) records that the land grant was made on the occasion of solar eclipse to reduce the bad effect of evil spirit. Tiwarkhēḍ inscription quotes Vyāsa i.e. the arranger of vedas as saying that the doner of land dwells in heaven for sixty thousand years.[20] The concept of heaven, hell, solar eclipse & lunar eclipse mentioned in inscriptions shows that people during that period believed in superstitions.

It is clear from above study that the society in the post Gupta period was divided into four varṇas. In spite of the effort of the kings to establish the varṇāshrama dharma, laxity can clearly be seen in this system. Women of higher classes stood shoulder to shoulder with their husband in every matter of life. It clearly indicates that they didn't keep veil. Study of the inscriptions of this time also indicates that people believed in superstitions & had enough to eat and drink.

Reference

1. Vasudev Vishnu Mirashi, Corpus Inscriptionum Indicarum, ootacamund, 1955, Vol. 4, pt 1, p 181.
2. Archaeological Survey of India Report 1902-03, Indological book house, Varanasi.
3. Rai Bahadur Hiralal, Tiwarkhēḍ plate of the Rāshṭrakūṭa king Nannarāja, Epigraphia Indica, Archaeological Survey of India, New Delhi, 1911-12, Vol XI, p 277.
4. N.P. Chakravarti, op. cit., 1933-34, Vol. XXII, p 99.
5. M.G. Dikshit & D.C. Sircar, Sēnakapaṭ inscription of the time of Śivagupta, Epigraphia Indica, The manager of publications, Delhi, 1956, Vol XXXI, Pt 1, P35, verse-5 & p 35-36, verse 10-11.
6. James Burgess, Epigraphia Indica, Archaeological Survey of India, New Delhi, 1882, Vol-1, p 156.
7. K.D. Bajpai, Aitihsik Bhārtiya Abhilēkh, Jaipur, 1992, p 257, verse 7-9.

8. James Burgess, op. cit, p 159.
9. S. Sankaranarayana & G. Bhattacharya, Mahua inscription of vatsarāja, Epigraphia Indica, The manager of publications Delhi, 1967, vol- XXXVII, pt-2, p 54-55, verse-4.
10. Vasudev Vishnu Mirashi, op. cit., p 174-176.
11. N.P. Chakravarti, op. cit, p. 99.
12. K.D. Bajpai, op. cit, p 258, verse 15-18.
13. The Descriptive & Classified List of Archaeological Monuments in Madhya Bharat, The Deptt. of Archaeology, Madhya Bharat Govt, Gwalior, p 124 & serial No 1507.
14. Vasudev Vishnu Mirashi, op. cit, p 76.
15. N.P. Chakravarti, op. cit, p 109, line- 55.
16. D.C. Sircar & B.Ch. Chhabra, Epigraphia Indica, The manager of publications, Delhi, 1962, Vol XXXII, p 112-113.
17. N. P. Chakravarti op. cit., p 99.
18. Archaeological Survey of India report, 1902-03, p 232.
19. Vasudev Vishnu Mirashi, op. cit. P182.
20. Rai Bahadur Hiralal, op. cit., p 280.

अप्रकाशित मौलिक शोध-पत्र, शोध प्रबन्ध, पुस्तक समीक्षा
एवं
पुस्तकों के प्रकाशन हेतु

सम्पर्क करें :

जी.एच. पब्लिकेशन
121, शहराराबाग, इलाहाबाद-211 003
e-mail : ghpublication@gmail.com
Ph. : 0532-2563028 (M) 09329225173

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

A COMPARATIVE STUDYBETWEEN RURAL AND URBAN COLLEGE GOING STUDENTS IN RELATION TO ANXIETY

❒ GulSnober*
❒ Dr. Devendra Kumar**

ABSTRACT

The present study is conducted to compare the anxiety of college going students in relation to mode of population. The sample for the study is consisted of 100 rural and 100 urban college male students, studying in class XI and XII. Mean score of urban college going male students are slightly lesser than mean score of urban college going male students are slightly lesser than mean score of urban college going male students. Value of the 't' test is 0.63 which has not been found to be significant even at 0.05 level. It indicates that there is no significant difference between rural and urban college going male students in relation to Anxiety.

Key words :*Anxiety, urban, Rural, male students.*

Anxiety is an emotion experienced by almost every one of us on multiple occasions irrespective of our personality, past experiences, environmental conditions, or learning. Anxiety can be defined as a vague, unpleasant, diffused feeling which results in restlessness, heart palpitations, perspiration etc. which if not dealt with may interfere with optimal functioning of an individual. Anxiety can be a chronic, persistent, and disabling condition. Individuals with generalized anxiety are characterized by excessive, unrealistic worry that lasts six months or more; in adults, the anxiety may focus on issues such as health, money, career, timeliness, repairs, or the security of their children. For most anxious patients, their anxiety produces a degree of suffering that is underestimated by outside observers. Anxiety is a normal reaction to stress and can actually be beneficial in some situations. For some people, however, anxiety can

Research Scholar, Department of Psychology, J.J.T. University, Jhunjhunu (Rajasthan)
** Assitt. Professor, Department of Psychology, J.J.T. University, Jhunjhunu (Rajasthan)

become unbearable. While the persons suffering may realize their anxiety is too much, they may also have difficulty in controlling it and it may negatively affect their day-to-day living. Whether or not we are living in the age of anxiety, anxiety is a prevalent problem in contemporary life. Freud argued that anxiety could be adaptive if the discomfort that goes along with it motivates people to learn new ways to approach life's challenges.

Change in the grading system in schools by CBSE to CCE pattern was especially introduced to simply help students deal with the rising levels of anxiety in them, whether CCE helped or not in dealing with anxiety is still a question of debate. It is a matter of fact that prevalence of anxiety among college going students (classes XI and XII) is a cause of concern because of the reason that when these students are unable to adapt to anxiety, they resort to defensive and compensating behaviour, this is why cases of juvenile crimes are also on rise.

Adolescence is marked by physiological changes leading to emotional upheavals affecting their overall being; therefore adolescence is also referred to as the age of "trauma and turmoil". Teenage is surrounded by its own distinguishing features which causes anxiety amongst them such as "egocentrism" (According to David Elkind, the phenomenon of adolescents inability to distinguish between what they perceive other people think and what others really think); "Imaginary audience" (Elkind used to describe this phenomenon that an adolescent anticipates the reactions of other people to him-èherself in actual or impending social situations) as well as "Personal Fable" (Elkind addressed that adolescents had a complex of beliefs that their own feelings are unique and they are special and immortal.) Besides this parental and teachers pressure to achieve higher adolescents are required to compete with other of the same age group to fulfill the expectations of parents, teachers and their own. These are the root causes of springing anxiety among college going students.

The Quick Reference Dictionary for Occupational Therapy, Edited by Jacobs, K. and Jacobs, L. (2004), defines anxiety as: "Characterized by an overwhelming sense of apprehension; the expectation that something bad is happening or will happen; class of menatl disorders characterized by chronic and debilitating anxiety (e.g. generalized,anxiety disorder, panic disorder, phobias, and post-traumatic stress disorder)" (pg. 13).

American Psychological Association adapted following definition of anxiety from Encyclopedia "Anxiety is an emotion characterized by feelings of tension, worried thoughts and physical changes like increased blood pressure. People with anxiety disorders usually have recurring intrusive thoughts or concerns. They may avoid certain situations out of worry. They may also have physical symptoms such as sweating, trembling, dizziness or a rapid heartbeat.According to above definitions anxiety has debilitating effect on the experiencing individuals which may make himèher feel incapable and inadequate to adapt and survive even everyday challenges of life.

This paper attempts to investigate the difference between rural and urban college going male students with respect to anxiety.

Few important studies related to anxiety are as follow :

Ghaderi, A.R., Venkatesh Kumar, G., and Samapth Kumar[1] investigated to understand and compare the experiences of Stress, Anxiety, and depression among the Indian and the Iranian students. The data is collectedfrom students studying in different departments of University of Mysore, studying post-graduate and Ph.D. degree courses. The sample comprised of 80 Indian and 80 Iranian, both male and female students. The Depression Anxiety Stress Scale (DASS) is used to assess depression, anxiety and stress. It is hypothesized that the Depression, Anxiety and Stress level of Iranian students is higher than Indian students. The 2x2x3 ANOVA is used for statistical analysis. Interestingly, the findings revealed that the Depression, Anxiety and Stress levels of Indian students are significantly higher than those of Iranian students. Furthermore gender differences are not found significant.

Prof. (Dr.) Susan Chirayath and SanalBabu George[2]conducted this study in software major in Bangalore. The main objective was to find out the relationship between the measures of emotional competency and the measures of anxiety. The other objective was to explore the relationship between age and gender with the various measures of emotional competency and anxiety. It has been found that factors like adequate depth of feeling, encouragement of positive emotions, self-control etc. play a major role in the positive attitudinal behavior of the employees. It has also been found out that only 33.3% of the respondents were able to use stress-reduction techniques properly. From the correlation analysis, it was found that all the factors of emotional competency and anxiety were positively correlated, except for the factor of "Suspiciousness" From the Chi-square tests, it was found that age of the employees had associations with many factors like Tension. Self-control, and Maturity etc.

Martian K. Gere, Marianne A. Villabo, SvennTorgersen, Philip C. Kendal examined the relationship between overprotective parenting and child anxiety. It has been examined repeatedly because theories emphasize its role in the maintenance of child anxiety. No study has yet tested whether this relationship is unique to child anxiety, by controlling for commonly co-occurring behavior problems within the same children. The current study examined 190 children (age 7-13,89 boys) referred to mental health clinics and their parents. Results revealed that significant correlations between overprotective parenting and child anxiety symptoms disappear after controlling for co-occurring child behavior symptoms. It appears that overprotection is not uniquely related to child anxiety. Furthermore, overprotective parenting was significantly and uniquely related to child behavior symptoms. Researchers and practitioners need to consider co-occurring child behavior problems when working with the parents of anxious children.

Sonja Breinholst, Barbara H. Esbjorn, Marie Louise Reinholdt-Dunne, Paul Stallard in their study explained that anxiety affects 10% of all children and disrupts educational, socio-emotional development and overall

functioning of the child and family. Research has shown that parenting factors (i.e. intrusiveness, negativity, distorted cognitions) contribute to the development and maintenance of childhood anxiety. Recent studies have therefore investigated if the treatment effect of traditional cognitive behavioral therapy may be enhanced by adding a parental component. However, randomized controlled trials have not shown unequivocal support for this assumption. The results are inconsistent and ambiguous.

Sibnath Deb, PoojaChatterjee, Kerryann Walsh investigated anxiety among adolescents' of Kolkata City, India. Specifically the study compared anxiety across gender, school, socio-economic background and mother's employment status. The study also examined the adolescents' perception of quality time with their parents. A group of 460 students (220 girls and 240 boys) ages 13-17 were recruited to participate in the study via a multi stage sampling method. The data were collected using a self-report semi structured questionnaire and a standardized psychological test, state-Tamil Anxiety inventory. Results show that anxiety was prevalent in the sample with 20.1% girls were found to be suffering with high anxiety. More boys were anxious than girls ($p<0.01$). Adolescents from Bengali medium school were more anxious than adolescents from English medium schools. Adolescents from middle class (socio-economic group) were more anxious than adolescents than both from low or high economic girls ($P<.01$). Results also show that adolescents perceived that they did not receive quality time from their father (32.1 %) and mothers (21.3%). A large number of them also did not feel comfortable sharing their personal issues with their parents (60% for father and 40% for mother).

Hypothesis :

There is no significant difference between urban and rural college male students with regard to Anxiety.

Method :

Sample :

In the present study sample consisted of 100 rural and 100 urban college going male students, studying in classes XI and XII. Random sampling method was used for the present study.

Study Material :

For this present research Anxiety Scale developed by Dr. R.P. Singh (1994), published by: SodhSumanPrakashanAchalTaal, Aligarh was used for collection of data.

Anxiety scale consists of total 100 items and the subject is required to mark his response in either of the two categories 'Yes' or 'No'. Subjects were instructed to respond spontaneously; to ensure genuine responses. Confidentiality of the responses was maintained.

Reliability of the test :

Reliability of test was ensured with the test-re test reliability method. For this sample of 200 individuals was selected and a gap of three weeks given between the two trials. The internal consistence of the scores total was known with the help of product moment correlation method i.e.88. On the basis of odd

and even items the internal reliability was known with the help of Spearman-Brown formula i.e. 90. This was also tested on the sample of 200 individuals.

Validity of the test :

Validity of this test was found with help of Taylor and Sinha Anxiety Test. Correlation between test used in present research and Taylor and Sinha Anxiety test was tabulated which was found to be respectively:. 78and84.

Procedure:

The anxiety scale by Dr. R.P. Singh was administered on the selected sample and responses on the items in the scale was then analyzed (with the help of the norms given in the manual of the anxiety scale) to reach the conclusion of the study. For scoring of the responses one mark was allotted to each response to the 'Yes' and no mark on 'No' response. Results were than interpreted with the help of Mean, Standard Deviation and t-test was applied.

Result and Discussion :

Result of the collected sample is presented through the below mentioned table, followed by the interpretation, analyses and discussion on the obtained scores.

Table

Group	Size	Mean	Standard Deviation	t-value	Significance
Rural Male students	100	30.55	31.64	0.63	Not significant even at .05 level
Urban Male Students	100	29.27	20.26		

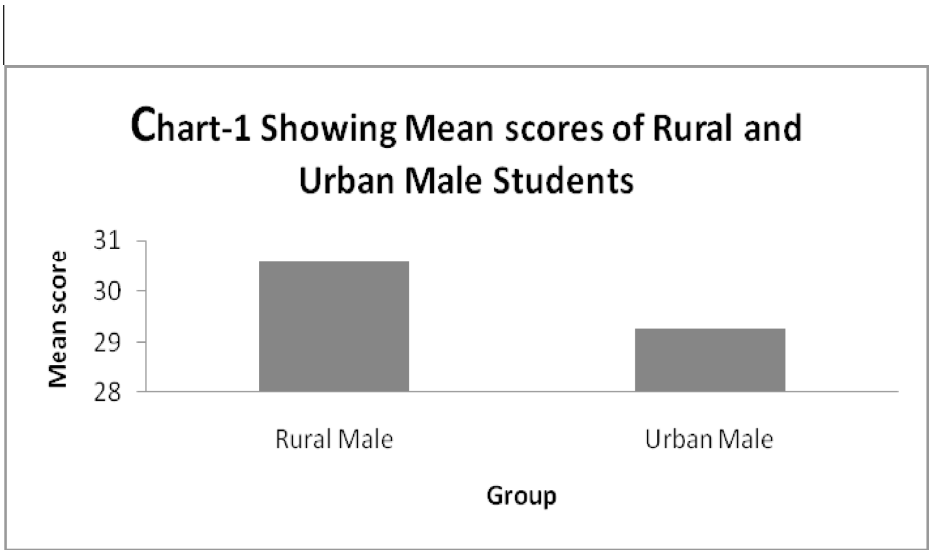

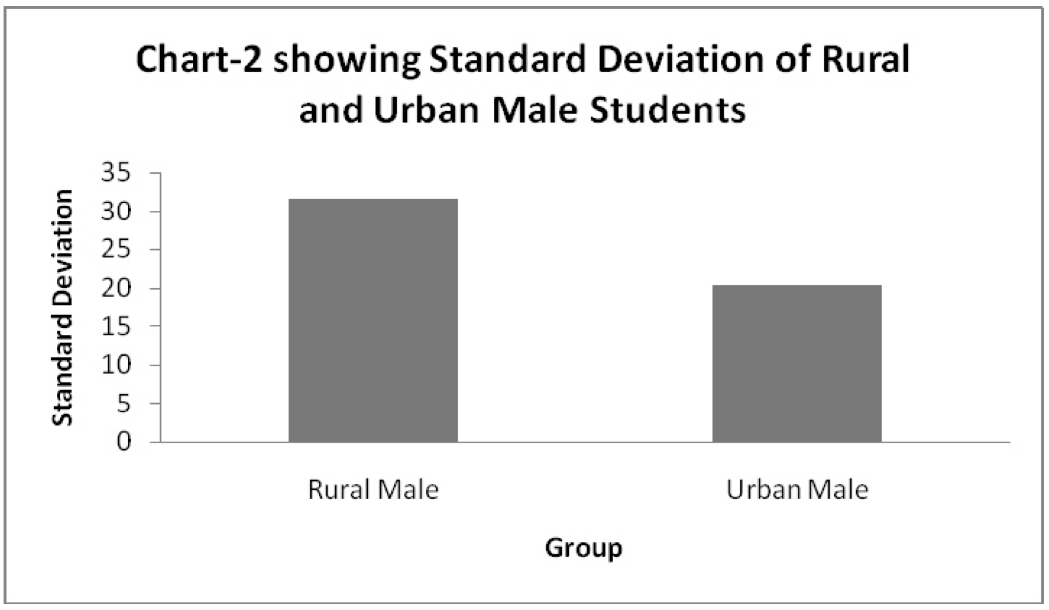

In the above table with N as 100 the Mean score of the college going male students in rural areas is 30.55 and mean score of the urban college going male students is 29.27. With respect to anxiety the standard deviation computed for rural college going male students is 31.64 and for urban college going make students is 20.26. Mean scores of urban college going male students is slightly lesser than mean scores of urban college going male students. Value of the t test is 0.63 which has not been found to be significant even at 0.05 level indicates that there is no significant different between rural college going male students and urban college going male students with respect to anxiety: hence the hypothesis that there is no significant difference between rural and urban college going male students with regard to anxiety is well accepted.

To cite the reason for hypothesis to be true could be the universal nature of bio-psycho-social changes occurring among adolescents across different terrains. The search for identity and questions about their existence and apprehensions about future are an integral part of the "growing up" of adolescents'. Secondly irrespective of their geographical or other environmental conditions adolescents experience pressure to be performing in academics, to achieve higher than their peer group and to follow societal norms. Another reason for anxiety among adolescents is that they do not like to share their personal issues with anyone especially elders that amounts to distress irritability, wrong decision making, doubts and apprehensions. This inability of college going students, to communicate their thoughts feeling and emotions to the people around them result into anxiety among them. For healthy development of adolescents it is necessary for them to be self-aware and it is advisable for the parents and teachers to catch

early signs of anxiety among them. Adolescents should be trained in finding ways to cope with stress and anxiety, hence control further damage to their overall well-being and social, psychological emotional cognitive development Parents and teachers must try is keep lines of communication always open with adolescents so that they are able to share their thought, feeling, emotions and confusions readily with them and they move toward optimum functioning and healthy future.

References

1.Ghaderi, A.R., Venkatesh Kumar, G. and Sampath Kumar (2009) Mysore University, Mysore, Journal of the Indian Academy of Applied Psychology, January 2009, Vol. 35, No. 1, 33-37.

2.Chirayath, Susan and George, SanalBabu, "Emotional Competency and Anxiety Among Software Professionals: A Co-Relational Study" (September 5, 2008). IMED Journal of Management and Social Research, Forthcoming. Available at SSRN: http:èèssrn.comèabstract= 1263752.

3.Martina K. Gere, Marianne A. Villabo, SvennTorgersen, Philip C. Kendal, "Overprotective parenting and child anxiety-the role of co-occurring child behaviour problems", Journal of Anxiety Disorders, Volume 27, Issue 2, March 2013, Page 265.

4.Sonja Breinholst, Barbara H. Esbjorn, Marie Louise Reinholdt-Dunne. Paul Stallard, "CBT for the treatment of child anxiety disorders: A review of why parental involvement has not enhanced outcomes", Journal of anxiety disorders, Volume 26, Issue 3, April 2012, Pages 416-424.

5.Sibnath Deb, PoojaChatteijee, Kerryann Walsh, "Anxiety among high school students in India: Comparisons across gender, school type, social strata and perceptions of quality time with parents", Australian Journal of Educational & Developmental Psychology. Vol. 10, 2010,pp. l8-31.

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

STUDIES ON THE CYTOLOGY OF THE ORDER HEMIURATOIDEA (TREMATODA : DIGENEA) OF REWA REGION WITH ESPECIAL REFERENCE TO THEIR SPERMATOGENESIS

❐ **Dr. Anita Shukla**

ABSTRACT

The present studies include the cytology of developing germ cells and spermatogenesis of forms of the Indian species of digenetic 3 species of order Hemiuratoidea from certain vertebrate hosts of Rewa region for which the author feels that it would certainly add further more data to the knowledge of the subject to this significant area.

During the research work, various difficulties were faced. The collection of Helminth parasites is a very pains taking job now. Many a times we do not get infection in the hosts. Some times the staining problems of the cytological preparations-smears and squashes are also found.

Key words : *Cytology, Hemiuridae Spermatogenesis Digenea Rewa*

Introduction :

Spermatogenesis, oogenesis and fertilization in the hermaphrodic digenea attracted much attention during the mid part of the century. The first account on cytology of trematodes appear in 1902 when Goldschmidt described the process of oogenesis in Polystomum integerrimum, a monogenetic trematode. In the some year Henneguy studied oogenesis, maturation and fertilization in Fasciola hepatica, the common liver fluke of cattle, Janicki (1903) described certain stages of oogenesis and cleavages in the eggs of Gyrodactylus elegans, a monogenetic trematode. He reported eight as the diploid chromosome number. Kathariner (1904), in a further study of oogenesis, fertilization and cleavage in Gyrodactylus elegans also reported the same chromosome number in the species.

However, Schreiner (1908), and Wassermann (1913) have shown that the

* Assistant Professor (A. V.) Zoology, Govt. College Budhar, Shahdol (M.P.)

diploid number of chromosomes in Zoogonus mirus is 12. According to them the first maturation division is educational and the haploid number of the chromosomes appear as vivalents before this division. The 'primaotypus' of Goldschmidt therefore, does not exist.

Schubmann (1905) reported that some of the oocytes degenerate during the process of oogenesis in Fasciola hepatica and their products provide nourishment to the remaining cells. Schellenberg(1911) also observed similar degenerating cells.Lindner (1914) gave the first account of sex chromosomes during his studies in Schistosoma haematobium. Lindner (1914) in S. haematobium, Faust and Severinghaus (1928) in S. Japonicum reported the differences in chromosome number between the sexes and indicated male as heterogametic.

Further work on gametogenesis of Indian species have been done by Saxena (1972), Dubey (1993), Sharma L.P. (1974), Sharma, S.D. (1981), Singh (1936), Pandey (1975), Ghosh (1974), Gupta (1985) and Awasthi (1982).

Tripathi (1972, 1991, 1994) has given extensive review on the systematics of digenetic trematodes of Madhya Pradesh and discussed the cytology of germ cells and the evolutionary significance of chromosome numbers, phylogeny and ecology in Digenea.

Rewa, where this research work is being held, is a town of great antiquity. This is the original home of Tansen, who bejewelled the court of Akbar, the Great. It was, where, that the World's first white tiger- Mohan was caught and his progeny is now the delight of many zoos, all over the world. In the suburb of Rewa, there is a village called Mukundpur. It is here that the one of the last Mughal Kings- akbar II was bonr. Rewa is the head quarter of Rewa district. The are aof this District is 22,468 sq. miles, with ahuman population of 54,04,933.

The forests of Rewa district are maintained and managed along with those of the adjoining Satna district. Their total extent is 1289.43 sq. miles. Reserved forests spread over 363.43 sq. miles, and the balance of 92600 sq. miles is protected forests. Some portion of the protected forests is being transferred to the Revenue Department for the extension of cultivation and management as village forests. the general distribution of these is extremely uneven. The Central Cultivated area has no forest. Also, these forests are riddled with cultivation patches, both of legal and illegal origin. They are sparsely stocked and poor in condition and maintenance.

Once a very reich and beautiful wildlife existed in this. Hunting leapord cheetah was very common. In the days when fire arms were not known, taming of cheetah was common for catching herbivorous wild animals. Early records, paintings in old palaces and carvings on temple walls testify to this belief. Presently, wild life has greatly, dwindled down, in the wake of indiscriminate lust for shooting and under the grab of crop protection with the legal protection now afforded, it is heartening to note that the population of wildlife is once again reviving. It is not uncommon to notice occasionally the pug-marks of t and panthers, and to see fleeing individuals of small groups

of cheeta, gazal, chinkara, black buck, sambher etc. The bird life is y around tanks and ponds.

The natural scenic beauty around Rewa is superb. The following water falls are a delight to visitors. :

Sl.N.	Waterfall	River	Fall (in ft.)
1.	Chachai	Bihar	368
2.	Keonti	Mahanadi	331
3.	Purwa	Tons	240
4.	Bahuti	Adhwa	465

Industrial development is yet to dawn in this region. However, the Cement factories of Satna and Rewa and Lime-Kilns at Maihar are Important, not only for material they produce but also the continual pollution of atmosphere they do. As amlai there is a paper mill and its effluent contaminates the near by river.

The parasites were collected from different vertebrate hosts ranging from fishes amphibians, reptilers, birds and mamals. These vertebrate hosts were collected from different localities of Rewa region like-Nehru Nagar, Lipania, Lakhauribag, govindharh, Amilki, Bichhiya, Nagaria (Rewa) and various other localities withing 15 to 35 kms. distance from Rewa.

On procuring the vertebrate hosts, they were identified and examined carefully, firstly the buccal cavity was opened and examined. Then the alimentary canal was taken out and cut into suitable parts. Every apart was separately examined. Most of the collection of parasites was made from the alimentary canal. Other organs of host like liver, kidney, lungs, urinary bladder, oviduct, bursa fabrici, cloaca, eyeball and orbits were also examined.

The Indian species of digenetic trematodes which were collected during present investigation are shown in the table 1.

Table 1 Indian species of digenetic trematodes of family Hemiuridae Luhe, 1901

Classification of parasites & authority	Host	Location	No. of Examined	Host Infected	No. of Parasites Obtained	Locality	Years of collation Recorded by
Order: Family :	*Hemiuratoidea Mehra, 1957* *Hemiuridae Luhe, 1901*	Intestine	84	11	21	Sirmour 1998	Shukla, Tripathi
Halipegus mehransis Shrivastava, 1933	*Chamelion calcaroctus Rana Cynophlyctis*	Intestine	50	09	18	Govindgarh, Rewa 1999	Shukla
Genorchopsis melanostictas Dwivedi, 1962	*Bufo melanostictus*	stomach	102	21	45	Jhiria Rewa 1999	Shukla

The parasites were removed from the organs of the host very gently and carefully in normal saline solution. Therir colour, movement, collar spine and cuticular spines and excretory organs were studied in living condition. For morphological studies and identification, some of the parasites were fixed in aqueous or alcohalic Bouin's fluid, 90% alcohal, or 5% to 10% formaline. Formaline and alcoholic Bouin's fluid give better results. While fixing the parasites every precaution was taken to avoid over or under pressure. Some parasites were flattened on a slide under slight pressure of a cover slip

gently, where some bigger and muscular ones were flattened by using tow \cover glasses giving more pressure.

The material after faxation were washed in water or 70% alcohol. When Bouin's fluid was used as a fixative, the worms were removed after 12-18 hours, washed thoroughly to remove the fixative, bleached in chlorinated water or chlorinated alcohol.

The material after washing were stained. A variety of tains were used such as, Haemalum, Borax Carmine, Gower's Carmines, Ehrlich's Heamatoxylin and Acetocarmine. gower's carmine gave better results, when fixative used were formaline or aquesous Bouin's fluid. The worms were dehydrated and cleared in clove oil or xylol, mounted in canada blsom and dried at 400C to 450C.

The smear were prepared from living material. Testes were taken out with fine needles under sterobinocular microscope on the clean slide. They were punctured with the help of fine needles and semifluid contents were allowed to flow over the slide. The slide, is then inverted in a semidried condition over the fixative without loosing much time. Faxative like aqueous Bouin's fluid, Alcoholic Bouin's Fluid, Zenker's fluid, Carnoy's first and second, Regaud's fluid, Helly 1903, sublimate, acetic and Levistsky's fixative were tried. Most satisfactory results were obtained from aqueous Bouin's fluid, Carnoy's first fluid and Zenker's fluid. stains like Iron Haematoxylin and Feulgen gave better results.

Observations : Observation of bot living and fixed material ere made with Meopta binocular research microscope. Microphotographs were made with the help of Meopta attachment camera. The films were developed in the Gevaert formula G241 and Kodack formula for 3-5 minutes. The draings were made by camera lucida. In morphological study all measurements were taken in millimeteres and in cytological measurements were taken in microns.

Results

The present research work deals with "studies on the cytology of the order Hemiuratoidea (Trematoda : Digenea) of Rewa region with special reference to their spermatogenesis." The author has attempted here to discuss the various views regarding the gonadial complex of male and female genital system, cytology of spermatogenesis and spermiogenesis in three Indian species of Digenetic trematodes namely Helipagus mehransis Shrivastava, 1933, Lecithothirium chauhani Dwivedi, 1962 and Genorchopsis melanostictas Dwivedi, 1962 available to Rewa region of Madhya Pradesh.

Reference :

Awasthi, U. 1982. Studies on gametogenesis of certain digenetic trematodes with special reference to their trematodes with special reference to their spermiogenesis. Ph.D. thesis, A.P.S. University, Rewa (M.P.), 1982.

Dingler, M. 1910. Uber the Spermatogenese des Dicrocoelium lanceatum Stil. et Hass (Distomum lanceolatum) Arch. f. Zellf. 4 : 672-712.

Goldschmidt, R. 1905. Eireitung und Befruchtung and Embryonalentwicklung des Zoogonus mirus I. ss. Zool. Jahrb. Abt. f. Anat. 2.1 : 607-654.

Ghosh, M. 1974. Studies on the gametogenesis and fertilization in 3 species of digenetic trematodes, Ph.D. Thesis (1974) Jabalpur University, M.P. India, pp. 1-90.

Gupts, R. 1985. Studies on the Morphology and cytology of certain Digenetic trematodes of Rewa Region. Ph.D. Thesis. A.P.S. Univ., Rewa, 1985.

Janicki, C. Von. 1903. Beziehumgen Zwischen Chromatin U. Nucleolen Wahrend der Furching des Eies Von Gyrodactulus elegans. Von. Nordm. Zool. Anz. 26 : 241-245.

Linder, E. 1914. Uber Spermatogenese von Schistosoma haematobium Bilmit bessonderer Berurcksichtigung der Geschlechtschromodomen. Arch. F. Zelf. 12: 516-538.

Pandey, R.L. 1975. Studies on the cytology of prasitic Platyhelminthes with special reference to their developing germ cells. Ph.D. Thesis. A.P.S. University, Rewa (M.P.), 1975.

Saxena, R.M. 1972. Studies on the cytology of certain Trematodes with special reference to gametogenesis and fertilization. Ph.D. Thesis, A.P.S. University, Rewa, 1972.

Schellenberg, A. 1911. Oogenesis, Eireifung, and Befruchtung von Fasciola hepatica Arch. Zellforsch., 6 : 443-482.

Severinghaus, A.E. 1928. Sex studies on Schistosoma Japanicum. Qust. Jaun. Mior. Sci. 71: 653-702.

Sharma, L.P. 1974. Studies on the cytology of developing germ cells in the order Echinostomida La Rue, 1957 (Trematoda : Digenea) Ph.D. Thesis (1974) A.P.S. University, Rewa (M.P.), India.

Tripathi, N.P. 1972. Studies on the cytology of certain digenetic trematodes with special reference to their chromosome numbers. Ph.D. Thesis, A.P.S. University, Rewa (M.P.) India, 1972.

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

LABOUR PARTICIPATION ACTION IN MANAGEMENT

❐ Dr. Omika Singh

ABSTRACT

Participation is a way of sharing this decision making power with the lower ranks of the organisation in an appropriate manner. In Vindhya region for worker participation in different cement company have make different several scheme for worker.

These are several schemes :

Sharing information with the workers. Management keep the worker informed about what is going on within the organisation worker are allow to expressing their opinions regarding various matters. But a final decision is taken by the management. Participate in discussions, suggest alternatives to solve an issue and help in the decision making process.

Introduction

Company provide scheme for worker in share. If any worker can purchase share in the company then company can payment its 2è3 share value also give him bonus share as extra share. According to share he has voting rights in the strategic and policy matters in the company. Giving employees the authority to make decisions and granting employees' power to initiate changes, try out new ideas use resources freely and work towards predetermined goals independently.

Most Method is participation used in cement Industries:- Participation through staff or work council. Participation through joint councils and committees. Participation through collectives bargaining. Participation through job enlargement and job enrichment. Participation through suggestion schemes. Participation through quality circles. Empowered teams. Total quality management. Method used by cement company in Vindhya region :- (A) Quality circles (B) Quality of work life

1. Quality circles

Meaning of quality circles: A quality circle is a small group of employees who meet periodically to identify analyses and solve quality and work related problems in the area. In cement industries, in each department they have more than one quality circles group, which involves 4-6 employees.

* M.B.A, Ph.D., Vill- Silpara, Distt. Rewa (M.P.)

For example :-In packing house, there are four quality circles group. These group deals with cement loading, machinery maintenance etc.In Maihar cement total number of quality circle formed in the plant is 136 and total participation of employees since inception is 560.In JP cement Rewa, total number of quality circle formed in the plant is 200 and total participation of employees since inception is 800 around.

The main features of quality circle in cement plant :-Voluntary group :-A quality circle is a voluntary group of employees members join the circle on their own there is no pressure from management. Manageable size :-Size of a quality circle various between six to ten according to work area members number varies.Regular meetings :-Members meet at periodic intervals to discuss quality related problems. They assemble during normal working hours usually at the end of the working day according to manager meeting time fixed in advanced and meeting occur once a weak or according to situation. Agenda :-Each circle has its own agenda, own terms of reference, he selects its own problems and offers recommendations for solving them. Main focus on quality:-Main focus on quality circle is to improve on quality of product and problem solve in particular department there by ultimate purpose is to improve organisational functioning and the quality of work life.

Advantage of quality circles in cement plant :- Improvement in quality and productivity. Reduction in specific fuel and power consumption. Reduced water consumption Production loss recovery. Reduced maintenance cost. Reduction in machinery break downs. Development in team work amongst employees. Safety of man and machinery. Improvement in problem solving capability of employees. Generation of creative ideas. Better teamwork. Higher motivation.

Conditions necessary for making quality circles effective:- Top management support. Education and training of management and workers. Timely implementation of ideas generated by quality circles. Sharing gains in productivity with workers. Facilities for meetings and discussions. Regular monitoring of working of quality circles.

2. Quality of work life

Meaning of quality of work life:-All the organization wants, improving the quality of work life become as one of the main goals of the organization. People can have high performance that will satisfy their needs partially. Given attention to the quality of work life can increase employee motivation and increase the performance of employees. If staff with their able and capabilities be considered as well, they can have a critical important role to achieve the organizational objectives. So, the use of different techniques and methods to improve the quality of working life can be effective.

Quality of work life can be defined as the environment at the work place provided to the people on the job, i.e. excellent working conditions where people can perform excellent work also their health as well as economic health of the organization is also met. In earlier times Quality of work life means only job enrichment. In addition to improving the work system, Quality of work life programs usually emphasize on development of employee skills, the

reduction of occupational stress and the development of more co-operative labor-management relations.

Quality of work life programs can be evaluated on the basis of following points:The economic interests of people drive them to work at a job and employee satisfaction depends at least partially, on the compensation offered. Pay should be fixed on the basis of the work done, responsibilities undertaken, individual skills, performance and accomplishments. Job security is another factor that is of concern to employees. Permanent employment provides security to the employees and improves their quality of work life.Organizations should realize that their true wealth lies in their employees and so providing a healthy work environment for employees should be their primary objective.An organization should provide employees with opportunities for personalèprofessional development and growth and to prepare them to accept responsibilities at higher levels.Flat organizational structures help organizations facilitate employee participation. A participative management style improves the quality of work life. Workers feel that they have control over their work processes and they also offer innovative ideas to improve them. Recognition also helps to motivate employees to perform better. Recognition can be in the form of rewarding employees for jobs well done.Organizations should provide relaxation time for the employees and offer tips to balance their personal and professional lives. They should not strain employees' personal and social life by forcing on them demanding working hours, overtime work, business travel, untimely transfers etc.

The components of Quality of Work Life :-

The components of Quality of Work Life may vary from organization to organization, individual to individual but some of the basic components are –Open communication in the organization with the co- workers is the vital factor that ensures good quality of work life. It leads to more of informal communication between co-workers and subordinates during the rest hours of the organization. Reward is related to monetary or non monetary rewards eg- incentives, movie tickets, and family health insurance, sponsoring the education of children etc. any kind of reward given to the employee promotes good quality of work life. .Job security is the one vital element to get maximum productivity from the employee; the employee should feel secured regarding the job.The organization should provide career growth to the employee i.e. promotion, authority with responsibility, like in the salary to retain the talented employee. Employees should be encouraged to take participate actively in the decision making body of the organization so that should feel that we are also of some value to the employers. They will be more loyal, committed towards the organization. Organizations should provide some basic opportunities to their employees e.g. Research, training sessions based on increase of skills and knowledge. These kinds of organizations are required than the vice versa. Stress level should not be in proportion to the work life. Higher the stress level poor is the quality of work life, lower is the stress level higher is the quality of work life.

Measures to improve the quality of work life are :-Flexibility on job means flexible working hours, no fixed working hours, different time intervals etc. By this flexibility in the job can be introduced.Job enrichment focuses on designing the job in such a way that becomes more interesting and challenging so that it satisfies the higher level needs.Security of job should be provided to the employee to make him feel committed and loyal to the organization The disciplinary procedure, grievance procedures, promotions, and transfer matters should be handled with of justice, fair and equity. Employees should be allowed to participate in management participative schemes which may be of several types. The most sophisticated among them is quality circle. Job satisfaction is influenced by various issues including clarity of goals and role ambiguity, appraisal, recognition and reward, personal development career benefits and enhancement and training needs in employee.Employee should be satisfied with the fundamental resources, working conditions and security necessary to do their job effectively. Physical working conditions influence employee health and safety and thus employee Quality of working life.

Quality of Working Life is not a concept, that deals with one area but it has been observed as incorporating a hierarchy of concepts that not only include work-based factors such as job satisfaction, satisfaction with pay and relationships with work colleagues, but also factors that broadly focuses on life satisfaction and general feelings of well-being. To retain a good talent in the organization it is important for the organization that he should have low stress level and high quality of work life.

References

JOURNALS AND PERIODICALS

- Labour and Investigation Reports 1946, Govt. of Indian Publication.
- Personality and Social Psychology Bulletin, 27 (2).
- Capitalizing on a Generation Gap. Management Review, (June),

RESEARCH MAGAZINES

- Rise of the baby-boom bosses. Business Review Weekly, 28-34
- Business Today, New Delhi
- Commerce, Bombay
- Jaypee cement - Jay Prakash (2010-2014)
- Birla Cement (2010-2014)
- Prism Cement Industry (2009-2014)
- Associate Limited, Annual Report 2009-2014)
- Youjana May 2014
- Kurukshetra May 2014

NEWS Papers

- The Times of India, New Delhi
- The Times of India, Bhopal
- Dainik Bhaskar, Rewa
- Dainik Jagran, Rewa

OTHERS

www.google.co.in
www.satnancement.com
www.maiharcement.com
www.jpcement.com
www.jpcement.com

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

IMPACT OF BRICK KILN DUST ON SOME LEAF EPIDERMAL CHARACTERS OF ROOT-KNOT NEMATODE INFECTED CHICK PEAS

❐ Dr. Navneet Sharma*
❐ Dr. Dinesh Kumar Singh**

ABSTRACT

Leaf epidermal characters i.e. number of stomata, epidermal cells and trichomes were increased in brick kiln dust amended soil upto 60%, compared to controls. But maximum value of such characters were found at 20% dust amendments except stomatal index. Onward to 60% there was steep decrease in the characters at 80 and 100% dust amendments. All epidermal characters except stomatal index were found greater in Rhizobium leguminosarum treated than non-treated plants but opposite result was found with Meloidogyne incognita. In joint treatment of bacteria and nematode, all studied leaf epidermal characters were found stranded in betweenthe root-nodule bacteria treated and root-knot nematode inoculated plants.

Key words: *Brick kiln dust, Meloidogyne incognita, Rhizobium leguminosarum, chick pea*

Introduction

In India, brick kiln dust is considered as major particulate air pollutant as brick kilns are operating throughout the country. In developing countries like ours, brick is supposed to be the basic constructing material for pucca house construction. It happens to be dream of each and every human being to construct a pucca house for the fulfillment of basic needs of life. Most of the brick kiln industries are established on the agricultural land of the rural or peri-urban areas (Gupta and Narayan, 2010). At present, large number of brick kiln industries are running throughout the country to meet out the brick demand. There

* *Section of Environmental Sciences, Department of Botany, J.J.T.University,Jhunjhunu*
Email: navneetp218@yahoo.co.in, singhdk.singh955@gmail.com

are tentatively 250 brick kilns operating in Aligarh district.

Chickpea *(Cicerarietinum*L.) is the world's third most important leguminous crop (Dhar and Gupta, 1998). World production of chick pea has averaged about 8 million metric tons in the recent years (Anonymous, 2007). It is a source of high quality protein, and is known as "a poor man's meat" (Isabel and Garmen, 2003; Rincon *et al.,* 1998). Chickpea is rich source of complex carbohydrates, vitamins and minerals (Wang *et al.,* 2010).

Root-knot nematodes are the major biological constraints that reduce per capita growth and yield of leguminous and non-leguminous crops (Rehman*et al.,* 2011). Out of more than 90 known species, four species of root-knot nematode viz. *Meloidogyne incognita* (Kofoid and White) Chitwood, *M. javanicav*(Treub) Chitwood, *M. arenaria*(Neal) chitwood and *M. hapla*chitwood, are considered as the dominating species due to their worldwide distribution, extensive host range and the damage quantified to different host crops. The average crop yield losses are estimated to be about 25% which ranged upto 60% in the individual fields (Sasser, 1980; Sasser and Carter, 1982). Root-knot nematodes also have a tendency to develop a relationship with root-nodule bacteria on the leguminous plants (Singh *et al.,* 1996; Siddiqui*et al.,* 2001).

The main objective of the present work is to assess the effects of brick kiln dust ondifferent leaf epidermal characters of root-knot nematode *(Meloidogyne incognita* race 1) infected and root-nodule bacteria *(Rhizobium leguminosarum)* inoculated chickpea *[Cicerarietinum*(L.) cv. P-391] plants.

MATERIALS AND METHODS

Root-knot nematode culture

Meloidogyne incognita (Kofoid and White) chitwood race 1, is one of the commonest root-knot nematode species in the Aligarh and the adjoining area. This major species of root-knot nematode was used in the experiment for experimental purpose. Roots of tomato or egg plant were surveyed in the agriculture fields for the root-knot nematode infection. The root-knot nematode infected roots were collected from the field and brought to the laboratory by putting their in polypacks in order to not to allow them (root) to dry. The species of root-knot nematode present in the collected samples were identified on the basis of the characteristics of the perineal patterns of the females. After species identification, roots infected with *M. incognita* were chopped and added to the pots containing seedlings of tomato, *Lycopersiconesculentum*Mill (cv. Pusa Ruby) or eggplant, *Solanummelongena*L. (cv. PusaKranti) growing in steam sterilized field soil.

Seeds of tomato or eggplant were first of all surface sterilized by putting in 0.01% $HgCl_2$ for 15 min and washed thoroughly in sterilized water afterward. Thereafter, surface sterilized seeds were sown in autoclaved soil filled clay pots having 30 cm diameter, in order to get adequate number of seedlings for further experimental use. Three to four days old seedlings were carefully uprooted

from the parental stock and transplanted to the clay pots duly filled with autoclaved field soil. Single egg mass of the nematode, obtained from the roots of plants maintaining pure population of *M. incognita,* was injected in the soil by making a hole near the roots of each seedling in the pot. This way, single egg mass culture of *M. incognita* was established within 45 to 50 days after inoculation. Subculturing was done in the similar fashion after every 2 to 3 months by inoculating new tomato or eggplant seedlings with at least 15 egg masses per pot, each obtained from a single egg mass culture in order to maintain sufficient inoculum for further experimental studies.

Plant Culture and nematode inoculation

Seeds of chickpea, *Cicerarietinum*(L.) cv. P-391 were procured from Chola Seed Centre, G.T. Road, Aligarh, U.P., India. Seeds were soaked in water for 24 h and then surface sterilized by 0.01% mercuric chloride ($HgCl_2$ for 15 minutes. Five seeds of chickpea were sown separately in each clay pot (having upper diameter as 30 cm.) after surface sterilization. But prior to seeding, the clay pots were filled with autoclaved sandy loam field soil, having the physico-chemical properties as referred below under the heading of brick kiln dust. Seedlings of chickpea were thinned to one in order to maintain single healthy seedling per pot which were used for further experimental study. The pots were arranged on the glasshouse benches of botanical garden of D.S. College, Aligarh at 27±2°C and watered regularly after certain time intervals. The plants were harvested 120 days after sowing.

For inoculation of *M. incognita,* the soil around the roots was carefully moved aside without damaging the roots. The nematode suspension containing the second stage juveniles (J_2) of *M. incognita,*was taken in micropipette controller and poured around the roots of seedlings. After the addition of juvenile suspension, the soil was replaced. Inoculum density was 2000 J_2 per pot. The inoculation was done after two weeks of seed germination.

Root-nodule bacteria

Commercial culture of *Rhizobium leguminosarum*strain Jordan, obtained from the Agriculture Farm House, Quarsi, Ramghat Road, Aligarh (U.P.), was used in the experiment. Prior to sowing, seeds of chickpea were treated with a mixture of sugar, water and *R. leguminosarum*culture, followed by drying in shade for half an hour.

Brick kiln dust

The experiment was conducted in the glass house fabricated at the Botanical garden, D.S. College, Aligarh (U.P.), India. The college campus is situated 15 km away from the source of brick kiln dust. Brick kiln dust in the experiment was obtained from the brick kiln situated at ManzoorGarhi, Aligarh used. Random sampling of brick kiln was done from brick kiln dust pond. Sampled brick kiln dust was brought to the laboratory in different gunny bags. Then a composite sample was made by mixing the separately sampled brick kiln dust. This composite mixture was sterilized by putting the mixture

filled bags, in the autoclave. For the experiment to be done, the soil was collected from the agricultural field of suburban Aligarh. The soil was collected from 20 to 30 cm depth, after scrapping the upper flora and litter. The soil was sandy loam field soil (66% sand, 24% silt, 8% clay, 2% OM and pH as 7.7). This field soil was filled in gunny bags and was steam sterilized in the autoclave before incorporating with different levels of brick kiln dust. The pressure of the autoclave was maintained 20 lb continuously upto 20 minutes. After drying, the autoclaved field soil is mixed with brick kiln dust. The autoclaved field soil and brick kiln dust were mixed in the following proportions to get 4000 gm (4 kg) of mixture for each treatment separately.

Brick kiln dust % level		Brick kiln dust weight		Field soil weight	Total mixture weight
0%	=	0.000 g	+	4000 g	4 kg
20%	=	800 g	+	3200 g	4 kg
40%	=	1600 g	+	2400 g	4 kg
60%	=	2400 g	+	1600 g	4 kg
80%	=	3200 g	+	800 g	4 kg
100%	=	4000 g	+	0.000 g	4 kg

After proper mixing, clay pots were filled with 4 kg of each type of mixture. Treatment without brick kiln dust served as control. Each treatment was replicated five times. So the total 120 pots were prepared for the experiment (24 treatments x5 replicates). The following were the brick kiln dust unamended (4 set with five replicates) and amended (20 set with five replicates) treatments.

Treatments

Brick kiln dust unamended(controlled) treatments

Plant

Plant + bacteria (= *R. leguminosarum*)

Plant + nematode (= *M. incognita*)

Plant + bacteria + nematode

Brick kiln dust amended treatments

Plant + 20% brick kiln dust

Plant + 20% brick kiln dust + bacteria

Plant + 20% brick kiln dust + nematode

Plant + 20% brick kiln dust + bacteria + nematode

Plant + 40% brick kilndust

Plant + 40% brick kiln dust + bacteria

Plant + 40% brick kiln dust + nematode

Plant + 40% brick kiln dust + bacteria + nematode

Plant + 60% brick kilndust

Plant + 60% brick kiln dust + bacteria

Plant + 60% brick kiln dust + nematode

Plant + 60% brick kiln dust + bacteria + nematode

Plant + 80% brick kiln dust

Plant + 80% brick kiln dust + bacteria

Plant + 80% brick kiln dust + nematode

Plant + 80% brick kiln dust + bacteria + nematode

Plant + 100% brick kiln dust

Plant + 100% brick kiln dust + bacteria

Plant + 100% brick kiln dust + nematode

Plant + 100% brick kiln dust + bacteria + nematode

After the termination of experiment (120 days after sowing), epidermal character were determined as per the procedure described below. All the data were analysed by using the Fischer (1950) factorial method. At the time of analysis, the data was splitted into

two factors i.e. F_1 and F_2. The factor with brick kiln dust treatment is considered as F_1 and that with different nematode andèor bacteria is considered as F_2. The L.S.D. was calculated for F_1 and F_2 separately as well as for F_1 x F_2 collectively.

Epidermal character

Freshly collected mature leaves from the unharvested plants were fixed and preserved in formalin-aceto alcohol (FAA) at the end of the experiment (Johansen, 1940).

Leaf peelings were prepared according to Ghouse and Yunus (1972) method. Preserved leaf pieces were boiled in 40% HNO_3 for 2 to 3 minutes. When epidermis of both the surfaces of leaves had separated, epidermal peelings were washed three times with water. The peeling was transferred to 20% KOH thereafter, for 15 minutes. The function of the KOH is to neutralize the HNO3. Now the leaf peeling was ready for staining.

Put the washed epidermal peelings for 10 min in 30% alcohol and transferred to 50% alcohol for 5 minutes. The peelings were then stained with bismark brown (prepared in 50% alcohol) for 12 hours. After 12 h, the peelings were washed thrice with 50% alcohol, and after 5 min interval, passed them (peelings) through a series of 70%, 90% and absolute alcohol + xylene and xylene. The peelings were finally mounted in Canada Balsam.

The slides of peelings were ready for the observation of stomata and trichomes. The slides were examined under light microscope. The number of stomata, epidermal cells and trichomes were counted on both (i.e. upper and lower) the surfaces of leaves and calculated in per cm^2 leaf surface.

After the calculation of number of stomata and epidermal cell, following formula was employed for the calculation of stomatal index (SI).

$$\text{Stomatal index} = \frac{\text{Number of epidermal cells}}{\text{Number of epidermal cells + number of stomatal cells}} \times 100$$

With the help of this formula, stomatal index (S.I.) was calculated for both (i.e. upper and lower) the surfaces of the leaves separately.

RESULT

When both surfaces of the chickpea leaves were examined for the different epidermal characters (i.e. number of stomata, epidermal cells, trichomes and stomatal index). They all were present in greater numbers on the upper than lower surfaces of the leaves (table 1-4) .

All the epidermal characters were increased in brick kiln dust amended soil upto 60% levels compared to controls . However, maximum value of their's (epidermal characters) was found at 20% brick kiln dust amendments. Onward to 60%, there was steep decrease in the characters at 80 and 100% brick kiln dust amendments.

All the epidermal characters were found greater in *Rhizobium leguminosarum* treated plants compared to non-treated plants. But opposite trend was found with the

Meloidogyne incognita. All the epidermal characters in joint bacteria and nematode treatments were found in between (less than) root-nodule bacteria treated and (more than) root-knot nematode inoculated treatments (table 1-3).

Since, stomatal index (SI) happens to be the percentage ratio of number of the epidermal cells to the total number of epidermal plus stomatal cells, so not much impact could be seen on indices (table 4).

DISCUSSION

Brick kiln dust is the second major particulate air pollutant after the fly ash, in India. It contains dust particles (soil + sand) and mixture of ashes (coal + wood).Utilizable plant nutrients are found in the brick dust (Gupta and Narayan , 2010) and its addition can enrich the soil in macro and micro nutrients which may have favourable effects on the crop productivity (Rizvi and Khan, 2009). Increased productivity reflects the health of the plants. The number of stomata might have increased to favour the greater gaseous exchange so as to keep pace with high rate of metabolism in such healthy plants. Healthy plants remains healthy probably through improvising the defence system. The improvement in the number of trichomes might have happened to that favour in the chickpea leaves upto 60% dust levels. Leaves of such healthy chickpea plants are studded with high number of stomata, epidermal cells and trichomes. Similar reasons were also asserted earlier (Khan and Khan, 1994) for the development of greater trichomes andèor hairs on the plant leaves along with the different leaf epidermal characters.

Besides this, root-nodule bacteria also increased the photosynthetic pigments of the chickpea leaves, accompanied by amelioration of seed proteins and leaf nitrogen. These favourable effects were apparently due to root nodulation and symbiotic nitrogen fixation, which were beneficial for the plants (Fyson and Sperent, 1982, Singh and Prakash, 2008). Improved plant growth due to *R. leguminosarum* was reflected in all the considered epidermal parameters. Healthy leaves of chickpea plants, in presence of root-nodule bacteria, were probably need greater amount of gases for exchange so as to keep pace with high rate of metabolism. May be due to this fact, the leaves of plant might have developed greater number of stomata and thereby the surrounding by greater number of epidermal cells. Healthy chickpea plants remains healthy probably by way of improvising the resistance power which a reflected back in the form of improved number of trichomes on both surfaces of the leaves. Some workers have earlier reported the development of trichomes in favour of resistance development (Khan and Khan, 1994).

Root-knot nematode attacks on several kind of crops and results enormous reduction to plant growth and yield (Sasser and Carter, 1982; Koenning*et al*., 1999). *M. incognita* also suppressed the plant growth of chickpeas in the present study. Reduction in plant growth due to *M. incognita* may have been happened by dysfunctioning of the absorption and supply of water and minerals to the infected plants because of various anatomical and biochemical transformations induced by the nematodes (Wilcox and Loria,

1987). Such plants, which were already under water stress, could not afford to bear with high number of stomata on their leaves andèor otherwise they will loss a huge quantity of water through transpiration. Such a factorial reason might have helped to trigger the mechanism in chickpea plants which favours the water conservation. Similar impact, like stomatal number, would obviously be gone on to the number of epidermal cells. Such nematode infected chickpea plants, which were in a poor state of health, could not develop high number of trichomes on their leaf surfaces and thereby show the weak resistant power against the biotic and abiotic stresses.

All the studied epidermal characters were increased in presence of *R. leguminoarum*(upto 60%), however, decreased onward in the nematode presence. However, reductions caused by nematode to these parameters were comparatively less in presence of bacteria, probably due to their antagonistic interactions (Bopaiah*et al*., 1976 and Khan and Hussain, 1998).

The present study showed that different epidermal characters were improved significantly (maximum were bring at 20%) upto 60% dust additions. However with each particular dust treatment, the characters were either increased (in presence of *R. leguminosarum*) or decreased (in presence of*M. incognita*). This trend of characters was however different (stranded somewhere between nematode and bacteria treated chickpeas) in *R. leguminosarum* x *M. incognita* treated plants, probably due to their antagonistic interaction, as discussed above. But at higher levels (onwards to 60%), these interactions could not materialized because of the accumulation of unbearable amount of the heavy metals (e.g. K, P, Zn, Mg and Mn) and non metal (carbonates and bicarbonates) (Ali *et al*., 1992; Ismail *et al*., 2012). That is why all the nematode andèor bacteria inoculated plant shows insignificant difference in epidermal characters at 80 or 100% dust levels. Thus improvement in different epidermal characters (upto 60%) shows the beneficial effects of brick kiln dust on the plant defence system, growth and productivity.

REFERENCES

Ali, E.A., Ibrahim, Y.H. and Nasralla, N.M. (1992).Contamination of the agricultural land due to industrial activities southern of greater Cairo.*Journal of Environmental Science and Health*, 27(5): 1293-1304.

Anonymous (2007).Food and Agriculture Organisation (FAO). http:èwww.Fao.org

Bopaiah, B.M., Patil, R.B. and Reddy, D.D.R. (1976).Effect of *Meloidogynejavanica* on nodulation of symbiotic nitrogen fixation in mung, *Vignaradiata.Indian Journal of Nematology*, 6: 124-130.

Dhar, V. and Gurha, S.N. (1998).Integrated management of chickpea diseases. In: Integrated Pest and disease management (Eds. Rajeev, K., Upadhyay, K.G., Mukerji, B.P., Chamola and Dubey, O.P.), APH Publishing Co., New Delhi, India, pp. 249.

Fischer, R.A. (1950). Statistical methods for research workers (11th ed.), Oliver Gupta, S. and Narayan, R. (2010). Brick kiln

industry in long term impacts biomass and diversity structure of plant communities. *Current Science*, 99: 72-79.

Ghouse , A.K.M and Yunus, M. 1972.Stain technol. 47: 322-324.

Gupta, S. and Narayan, R. (2010). Brick kiln industry in long term impacts biomass and diversity structure of plant communities. *Current Science*, 99: 72-79.

Isabel, G. and Garmen, V.G. (2003). Chickpea flour ingredient shows glycemic response to pasta in healthy volunteers. *Food Chemistry*, 81: 511-515.

Ismail, M., Mohammad, D., Khan, F.U., Munsif, F., Ahmad, T., Ali, S., Khalid, M., Haq, N.U. and Ahmad, M. (2012). Effect of brick kiln emissions on heavy metals (Cd and Cr) content of contiguous soil and plants.*Sarhad Journal of Agriculture*, 28(2): 165-170.

Johansen, D.A. (1940). *Plant Microtechnique*. McGraw Hill Book Co., New York, U.S.A. pp. 523.

Khan, M.R. and Khan, M.W. (1994). Single and interactive effects of root-knot nematode and coal smoke on okra. *New Phytologist*, 126: 337-342

Khan, T.A. and Hussian, S.I. (1998).Effect of individual, concomitant and sequential inoculation of *Rhizobium, Rotylenchulusreniformis, Meloidogyneincongita* and *Rhizoctoniasolani* on cowpea plant growth, disease development and nematode multiplication.*Indian Journal of Nematology*, 18: 232-238.

Koenning, S.R., Overstreet, C., Noling, J.W., Donald, P.A., Becker, J.O. and Fortnum, B.A. (1999).Survey of crop losses in response to phytoparasitic nematodes in the United States for 1994.*Supplement, Journal of Nematology*, 31: 587-618.

Rahman, B., Usman, A. and Siddiqui, M.A. (2011).Nematoxic effect of leaf extract and fungal strains against *Meloidogyne incognita* affecting chickpea. In: Proceeding of National Conference on Conquering Impact of Climate Change on Agriculture through Organic Farming – A global Perspective (Eds. Shweta and Singh, V.K.), D.S. College, Aligarh (U.P.), India, pp. 41-43.

Rincon, F., Martinez, B. and Ibanez, V. (1998).Proximate composition and anti-nutritive substances in chickpea (*Cicerarietinum* L.) as effected by the biotype factor.*Journal of Science and Food Agriculture*, 78: 382-388.

Rizvi, R. and Khan, A.A. (2009). Response of eggplant (*Solanummelongena* L.) to fly ash and brick kiln dust amended soil. *Biology and Medicine*, 1(2): 20-24.

Sasser, J.N. (1980). Root-knot nematodes: A global menace to crop production. *Plant Disease*, 64: 36-41.

Sasser, J.N. and Carter, C.C. (1982).Overview of international *Meloidogyne*project rationale, goals, implementation and progress to date. In: Proceedings IMP Research Planning Conference on root-knot nematode *Meloidogyne* spp. (Renon 111) Brasillia, Brazil, pp. 3-13.

Siddiqui, I.A. and EhleshamulHaque, S. (2001). Suppression of the root rot-root-knot disease complex by *Pseudomonas aeruginosa* in tomato: The influence of inoculums density, nematode population, moisture and other plant associated bacteria. *Plant and Soil*, 237: 81-89.

Singh, K. and Prakash, J. (2008). Impact assessment of root-knot nematode on fly ash stressed plants. In: National Symposium on Environment of Sustainable Development, Department of Botany, Meerut College, Meerut, CCS University, Meerut (U.P.), India, pp. 46 (Abst.).

Singh, K., Khan, M.W. and Khan, M.R. (1996).Interaction of fly ash and root-knot nematode on growth and yield of cowpea in presence or absence of root-nodule bacteria.In Nineteenth All India Botanical Conference (Ed. Glvil, C.M.), Department of Botany, C.C.S. University, Meerut (U.P.) India, (Abst.).

Wang, N., Hatcher, D.W., Tyler, R.T., Toews, R. and Gawalko, E.J. (2010).Effect of cooking on the composition of beans (*Phaseolus vulgaris* L.) and chickpea (*Cicerarietinum* L.).*Food Research Intenrational*, 43: 589-594. Wilcox-Lee, D. and Loria, R. (1987). Effects of nematode parasitism on plant water relation. In: Vistas on Nematology (Eds. Veech, A. and Dickson, D.W.), Society of Nematologist, Hyattaville, Maryland, pp. 260-261.

Table 1. Effect of brick kiln dust amendment on the number of stomata of lower (abaxial) and upper (adaxial) surface of the chickpea leaves (in cm^2)

Treat ments	Brick kiln dust							
	Surface	0	20	40	60	80	100	Mean
P	Lower surface	40.00	48.75*	45.50*	41.25ns	32.50ns	22.50ns	38.42
	Upper surface	13.25	16.00*	14.00*	13.75ns	11.20ns	8.25ns	12.74
P+R	Lower surface	46.50*	54.25*	49.75*	48.00*	34.25ns	27.75ns	43.25@
	Upper surface	16.75*	19.00*	17.25*	16.50*	10.00ns	9.50ns	14.83@
P+Mi	Lower surface	31.75ns	42.50*	32.75ns	31.50ns	22.75ns	16.25ns	29.58ns
	Upper surface	10.20ns	14.15*	11.00ns	10.05ns	7.50ns	5.25ns	9.69ns
P+R+Mi	Lower surface	38.25ns	47.50*	42.00*	39.25ns	26.00ns	21.50ns	35.75@
	Upper surface	13.50ns	16.75*	15.25*	14.00*	8.75ns	7.00ns	12.54ns
Mean	Lower surface	39.13	48.25#	42.50#	39.75ns	28.88#	22.00#	
	Upper surface	13.43	16.48#	14.38#	13.58#	9.36#	7.50#	

CD at 5% of lower surface – Brick dust (F_1) = 0.635, Treatment (F_2) = 0.778, Interaction (F_1 x F_2) = 1.556

CD at 5% of upper surface – Brick dust(F_1) = 0.218 , Treatment (F_2) = 0.267, Interaction (F_1 x F_2)= 0.535

Table 2. Effect of brick kiln dust amendment on the number of epidermal cells of lower (abaxial) and upper (adaxial) surface of the chickpea leaves (in cm^2)

Treat ments	Brick kiln dust							
	Surface	0	20	40	60	80	100	Mean
P	Lower surface	200.00	243.75*	205.50ns	201.25 ns	133.50ns	112.50ns	182.75
	Upper surface	66.25	82.00*	73.00*	66.75 ns	42.00 ns	31.25 ns	60.21
P + R	Lower surface	232.50*	262.25*	248.75*	233.00*	172.25ns	130.75ns	213.25@
	Upper surface	85.75*	100.00*	87.25*	84.50*	50.00 ns	45.50 ns	75.50@
P + Mi	Lower surface	159.75ns	215.50*	163.75ns	160.50 ns	113.75ns	82.25 ns	149.25@
	Upper surface	53.00ns	72.75*	58.00 ns	53.25 ns	36.50 ns	26.25 ns	49.96@
P + R + Mi	Lower surface	193.25ns	283.58*	196.00ns	194.25 ns	130.00ns	107.50ns	176.60@
	Upper surface	68.50ns	85.75*	73.25*	69.00*	42.75 ns	37.00 ns	62.71@
Mean	Lower surface	196.38	240.02#	203.50#	197.25 ns	137.38#	108.25#	
	Upper surface	68.38	85.13#	72.88#	68.38 ns	42.81#	35.00#	

CD at 5% of lower surface – Brick dust(F_1) = 3.101, Treatment(F_2) = 3.798, Interaction(F_1 x F_2) = 7.596

CD at 5% of upper surface – Brick dust (F_1) = 1.099, Treatment(F_2) = 1.346, Interaction(F_1xF_2) = 2.692

Table 3. Effect of brick kiln dust amendment on the number of trichomes of lower (abaxial) and upper (adaxial) surface of the chickpea leaves (in cm^2)

Treat –ments	Brick kiln dust							
	Surface	0	20	40	60	80	100	Mean
P	Lower surface	260.50	310.00*	265.75ns	262.25 ns	225.50ns	200.00ns	254.00
	Upper surface	215.75	235.35*	220.55*	214.20 ns	180.75ns	165.70ns	205.38
P + R	Lower surface	285.25*	340.55*	292.20*	288.50*	208.00ns	190.55ns	267.51@
	Upper surface	232.00*	250.70*	235.25*	234.25*	200.65ns	183.05ns	222.65@
P + Mi	Lower surface	225.25ns	282.20*	233.00ns	224.75 ns	180.05ns	168.00ns	218.88@
	Upper surface	185.20ns	210.50*	192.60ns	185.00 ns	162.60ns	150.00ns	180.98@
P + R + Mi	Lower surface	255.40ns	325.80*	265.60ns	256.00 ns	190.40ns	178.20ns	245.23@
	Upper surface	210.20ns	232.15*	251.60*	212.00*	185.25ns	155.60ns	201.80ns
Mean	Lower surface	256.60	314.64#	264.14#	257.88 ns	200.99#	184.19#	
	Upper surface	210.79	232.18#	216.00#	211.36 ns	182.31#	163.59#	

CD at 5% of lower surface – Brick dust (F_1) = 4.032, Treatment (F_2) = 4.938,Interaction(F_1xF_2) = 9.876

CD at 5% of upper surface – Brick dust(F_1) = 3.233, Treatment(F_2) = 3.959, Interaction(F_1xF_2) = 7.918

Table 4. Effect of brick kiln dust amendment on the stomatal index (SI) of lower(abaxial) and upper (adaxial) of the chickpea leaves.

Treat-ments	Brick kiln dust							
	Surface	0	20	40	60	80	100	Mean
P	Lower surface	16.67	15.13^{ns}	18.12*	17.01^{ns}	19.57*	12.86^{ns}	16.56
	Upper surface	16.66	14.78^{ns}	14.26^{ns}	17.08^{ns}	21.05*	20.88*	17.45
P + R	Lower surface	16.66^{ns}	15.28^{ns}	15.67^{ns}	16.78^{ns}	14.04^{ns}	12.39^{ns}	15.14$^{@}$
	Upper surface	16.34^{ns}	14.16^{ns}	13.29^{ns}	16.33^{ns}	15.94^{ns}	14.76^{ns}	15.14$^{@}$
P + Mi	Lower surface	16.57^{ns}	15.52^{ns}	15.66^{ns}	16.40^{ns}	15.87^{ns}	12.96^{ns}	15.50$^{@}$
	Upper surface	16.13^{ns}	15.87^{ns}	14.86^{ns}	15.87^{ns}	19.13^{ns}	18.71^{ns}	16.76$^{@}$
P + R + Mi	Lower surface	16.52^{ns}	16.02^{ns}	17.64*	16.80^{ns}	13.76^{ns}	13.07^{ns}	15.64$^{@}$
	Upper surface	16.46^{ns}	16.06^{ns}	17.23^{ns}	16.86^{ns}	17.11^{ns}	16.45^{ns}	16.70^{ns}
Mean	Lower surface	16.61	15.49$^{\#}$	16.77^{ns}	16.75^{ns}	15.81$^{\#}$	12.82$^{\#}$	
	Upper surface	16.40	15.22$^{\#}$	14.91$^{\#}$	16.54^{ns}	18.31$^{\#}$	17.70$^{\#}$	

CD at 5% of lower surface – Brick kiln dust(F_1) = 0.252, Treatment(F_2)= 0.308, Interaction(F_1xF_2) = 0.617

CD at 5% of upper surface – Brick kiln dust(F_1)= 0.264, Treatment(F_2)= 0.323,Interaction(F_1xF_2) = 0.646

* = data significant with 0% brick kiln dust and at P treatment only at P = 0.05
^{NS}= Not significant
@ = data significant within a column at P=0.05
# = data significant in a raw at P = 0.05
P = chickpea plant, R = *Rhizobium leguminosarum,* Mi = *Meloidogyne incognita* race 1

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

GROWTH AND BODY COMPOSITION OF ROHU, LABEO ROHITA (HAMILTON) FED COMPOUNDED DIET: WINTER FEEDING AND REARING TO MARKETABLE SIZE

❐ **Suhail Ahmad Chadoo***
❐ **Virendra Kumar****

ABSTRACT

Rearing L.rohita in polyhouse, where water temperature remained relatively high during winter resulted in improved growth andfeed utilization.Bandy Opadhyay et.al.(2000) reported enhanced production of L.rohita in polyhouse compared to those in natural ponds in Orissa, India. At the same experimental station, production of giant freshwater prawn M. rosenbergii, was also found higher in polyhouse than in natural ponds (Pillai et.al., 1999). These reports indicated a moderate increase in water temperature in polyhouse (minimum-22^{0}C; maximum- 32^{0}C) than in the natural ponds (minimum- 18^{0}C; maximum- 29^{0}C). During the present study, the average minimum water temperature in polyhouse was 19.5^{0}C, as compared to 15.0^{0}C in outdoor tanks. While minimum water temp in outdoor tanks often dipped to below 10 ^{0}C during January to mid February, it remains above 15^{0}C in polyhouse.FCR, PER and protein deposition were also higher in polyhouse reared L.rohita than those reared in outdoor tanks. Jauncey and Ross (1982) reported that optimum temperature for maximum growth in Tilapia is around 30^{0}C and below 16^{0}C most species cease to feed. The retention of protein, non protein energy and total energy increased in fingerling carp, Cyprinuscarpio, following an increase in temperature from 23-27 ^{0}C at higher rations (Huisman et.al., 1979). Singh et.al., (1979) noted improved protein assimilation and growth rate in L.rohita at higher (25-31.5 ^{0}C) than lower (18-24 ^{0}C) temperature. Kestemont (1995) observed that growth of gold

* Deptt. Of Zoology, D.S. College Aligarh
Email:chadoosuhail@gmail.com; vv_kvr28@rediffmail.com

fish, Carassiusauratus, larval reared at 28 ^{0}C was 4 times greater than those reared at 20 ^{0}C, fed maximum daily ration. Imsland et.al. (1996) reported increased growth rate of Juvenile turbot (Scophthalmusmaximus) with increasing temp (10,13,16,19^{0}C). It has also been shown that, within the optimum range, an increase in temperature leads to higher growth in fish. Channel catfish, Ictaluruspunctatus, fingerlingsreared at a temp range of 18-34^{0}C registered an improvement in weight gain and FCR with the best values obtained at 30^{0}C (Andrews & Stickney, 1972). Atlantic halibut, Hippoglossushippoglossus, reared at temperature, near optimum (12^{0}C) attained higher weight than those at sub optimal (6^{0}C) temperature (Jonassenet.al., 2000). The amount of feed consumed and its utilisation depends on temperature. In general, if water temperature is above or below the optimum range for the animal, feeding rate will be reduced (Stickney,1994). Russell et.al. (1996) reported that growth of Juvenile sea bass, Dicentrarchuslabrax, at maximum meals, increased with temperature. However, at restricted rations the growth rate of sea bass decreased with increasing temperature. In the present study, L.rohitawas fed to apparent satiation to minimize the problem of ration availability.There are reports on variation in body constituents of fish reared at different temperatures (Andrews & Stickney, 1972; Papoutsoglou&Papoutsoglou 1978; Shearer, 1994; Weeks et.al.,2010). In L. rohita, higher protein content was found in polyhouse reared fish. Huisman et.al.,(1979) reported that protein retention values for small sized carp, Cyprinuscarpio, increased because of a rise in temperature from 23-27 ^{0}C, but decreased for bigger fishes. Pannevis&Houlihan (1992) reported that acute changes in temperature results in increased rates of oxygen consumption and protein synthesis. However, no effect of temperature or ration was noted on body protein content in O.nerka (Brett et.al., 1969) &S.trutta (Elliot, 1975). Andrews & Stickney (1972) observed that in channel catfish, I.punctatus an increase in temperature led to increased lipid content. Polyhouse reared L.rohita also exhibited higher fat content. The fact that quantitatively growth is an accumulation in a large amount of fat, a moderate amount of protein, a small amount of minerals and a considerably large amount of water (Huisman et.al.,1979) further supports the result obtained for L.rohita.

Key Words: Labeorohita, Feed Conversion Ratio(FCR), Protein Efficiency Ratio(PER)

Introduction :

Fish being poikilotherms, their growth, food consumption, conversion & other body functions are markedly influenced by temperature (Britz et.al.,1997; Azevedo et.al.,1998; Ali et.al.,2005; Gokcek et.al.,2008; Abid and Ahmad 2009a; Abid and Ahmad 2009b; Garcia et.al.,2010). Growth and survival in fish are optimum within a defined range of temperature (Brett, 1979; Gadowski and Caddell, 1991).

Warm water fish have optimum growing temperature in the range of 25-30^{0}C (NRC, 1983). In Inland states of India, water temperature remains low during winter often falling below 10^{0}C, thereby influencing biological functions in fishes. Rohu, *Labeorohita*, is an important fresh water fish species cultured in Asia, particularly the Indian sub continent. Growth rate of this fish and other cultivable fresh water carps viz., *Catlacatla, Cirrhinamrigala, Ctenopharyn-godonidella; Hypophthalmichthysmolitrix*, decreases during the period of low water temperature. As a result, the growing season in a year is reduced by about 4 months. One of the procedures to overcome this problem is to raise water temperature using polyhouse which is based on the concept of heat preservation by green house effect provided by a singleèdouble layer of plastic sheet erection (Ra'anan& Cohen, 1983). Polyhouse has been used to enhance the production of *L.rohita* (Bandyopadhyay et.al, 2000) & giant fresh water prawn, *Macrobrachiumrosenbergii* (Pillia et.al., 1999) in Orissa, one of the coastal states of India where winter season experiences a moderate decline in watertemperature. However, no report is available on the use of polyhouse from inland states of India.

The present study was conducted to observe the impact of polyhouse in winter on growth, conversion efficiencies and body composition of fingerling *L.rohita* fed compounded diet. The effect of feeding traditional feed mixture and compounded diet on the above growth parameters and body composition of polyhouse reared young fish grown to marketable size in outdoorearthen ponds was also examined.

REVIEW OF LITERATURE

Water temperature has a major influence on metabolic rate of fishes. Food intake (Elliott, 1975; Ashraf et.al.,2008) and maintenance requirements (Hawkins et.al., 1985; Ashraf et.al.,2008) in fish are affected by change in temperature. It is also a key factor in regulating the reproductive cycle in fishes(Sundraraj and Vasal, 1976; Lam 1983; Richter et.al., 1987; Chmilevskiy and Lavrova, 1990; Van Der Kraak and Punkhurst, 1997; Webb et.al; 1999). Temperature along with photoperiod modulates sexual development and spawning in fishes with temperature exerting a predominant influence in most fish species. Most of the inland Indian states experience severely low temperature during winter, with water temperature often falling below 10^{o}C affecting the biological functions of fishes inhabiting these regions, thereby reducing the growing season of fish by about 4 months. Gonadal development in fish is almost

suspended during winter until the environment is warm enough for final maturation and ovulation. This generally restricts the availability of quality seed at the desired time, a major constraint in the expansion of aquaculture for many fish species, thereby emphasizing the need to develop techniques to control sexual maturation and spawning in target species. The concept of heat preservation by green house effect has been used as one of the important procedures to raise water temperature on such situation through the use of polyhouse, comprising a singleèdouble layer of plastic sheet (Ra'anan and Cohen, 1983). In India this concept has been successfully applied for enhancing fish growth only in the coastal state of Orissa, which experiences a moderate decline in water temperature during winter. However, there is no report on the use of polyhousevis-a-vis growth andèor maturation in carps from inland Indian states.

MATERIAL AND METHODS

Experimental Trial I

Fingerling *Labeorohita*(8.0 ± 0.8cm; 4.61 ± 0.02g) were stocked (15000 ha^{-1}) in polyhouse and outdoor concrete tanks (250m^2), in duplicate, during winter. Fish were fed 35%CP compounded diet (T-1). The details of polyhouse and outdoor tanks are given in general methodology. The trial lasted 122 days (9 December – 9 April). Water temperature during the period inpolyhouse ranged between 19.5 ± 0.61 to 30.5 ± 0.98^{0}C while in outdoor tanks the range was 14.9 ± 1.2 to 25.3 ± 0.84^{0}C. Average dissolvedoxygenin both the tanks ranged between 4.5 and 9.4 ppm.

Experiment Trial II

On termination of the above trial, polyhouse reared young *L.rohita* (21.8 ± 1.1cm; 127.9 ± 0.69g) were transferred to outdoor earthen ponds (500m^2), in duplicate, at a stocking density of 3700 fish ha^{-1} and reared to marketable size. Fish were fed 30% CP compounded diet in the form of pellets and traditional feed mixture in the form of moist balls, prepared by soaking the ingredients overnight in water (T-2). The trial lasted 122 days. Water temperature and dissolved oxygen during the period ranged between 23 ± 1.6 to 34 ± 1.2 0C and 4.0 to 8.5 ppm respectively.

In both the trials, fish were acclimated to the experimental diets for a fortnight in respective tanksèponds. Fish were fed to satiation, twice daily, at 0900hrs and 1700 hrs. Natural photoperiod was maintained during the trial. Details of dietary ingredients, preparation of diet and method of feeding are described under general methodology.

Growth parameters and conversion efficiencies were calculated using standard definitions (Wee and Tacon, 1982; Tabachek, 1986; Hardy, 1989; Hanley, 1991; Kim and Kaushik, 1992) .

Analytical methods:

Proximate composition of diets and fish muscle was analyzed using standard methods (AOAC, 1995) as given under general methodology.

Statistical analysis:

Details of Statistical analysis are described elsewhere.

OBSERVATION

A 122 day growth trail was conducted to observe the impact of polyhouse in winter, on growth, conversion efficiencies and body composition of fingerling*L. rohita* (8.0 ± 0.8cm; 4.61 ± 0.02g). Fish were stocked (15000 ha^{-1}) in polyhouse and outdoor concrete tanks (250m^2); in duplicate and fed compounded diet (35%CP) to apparent satiation, twice daily 0900h& 1700h. Natural photoperiod was maintained during the trials at the end of the trail, polyhouse reared fish produced significantly ($p<0.01$) higher values for weight increment SGR, PER& protein deposition and better FCR. Fish reared in polyhouse showed higher ($p<0.05$) crude protein and fat and lower ($p<0.05$) moisture and ash content in their muscle. Polyhouse reared young *L. rohita*(21.8 ± 1.1cm; 127.9 ± 0.69g), were raised to marketable size in outdoor earthen ponds (500m^2) at a stocking density of 3700 ha^{-1} to examine the effects of feeding traditional feed mixture & compounded diet (30%CP) on growth and body composition of fish. *L.rohita* fed compounded diet showed higher ($p<0.01$) values for weight increment, SGR, PER & protein deposition and better ($p<0.01$) FCR than those fed traditional feed. Proximate composition of fish muscle showed higher ($p<0.05$) crude protein and fat and lower ($p<0.05$) moisture and ash contents in fish fed compounded diet. The results suggested that polyhouse may be used successfully to culture *L.rohita* during winter and thereafter the fish may be reared in earthen ponds using compounded diet to obtain better production.

Results

Results on growth and feed utilization in *L.rohita* reared in polyhouse and outdoor tanks using compounded diet during winter are given in table 3. Polyhouse reared fish produced significantly ($P<0.01$) higher values for weight increment, specific growth rate (SGR %), protein efficiency ratio (PER) and protein deposition than those reared in outdoor tanks during the same period. Feed conversion ratio (FCR) was also better ($P<0.01$) in polyhouse reared fish. Proximate composition of muscle of *L.rohita* is given in table 4. Crude protein and fat content were higher ($P<0.05$), while moisture and ash contents were significantly ($P<0.05$) lower in polyhouse reared fish, in composition to those reared in outdoor tanks.

Results on growth and feed utilization in fish reared to marketable size in earthen ponds using compounded diet and traditional feed mixture is given in table 5. *L.rohita* fed compounded diet showed better ($P<0.01$) FCR and higher ($p<0.01$) values for weight increment, SGR, PER& protein deposition than those fed the traditional feed. Proximate composition of muscle of fish is given in table 6. Fish fed compounded diet contained significantly ($p<0.05$) higher crude protein and fat and lower moisture and ash contents than those fed the traditional feed.

Table 1.Ingredients & Proximate composition of experimental diets used for winter feeding of Labeorohita in polyhouse and outdoor tanks.

Ingredient gè100g		
Tuna fish meal		19.60
Soya bean meal		19.60
Ground nut meal	19.60	
Corn flour	15.35	
Rice bran	15.35	
Vitamin premix [a]	1.50	
Mineral premix [b]	3.00	
Oil premix (1:1 Corn & Cod liver oil	6.00	
Proximate composition[c]		
Crude protein	35.50±0.15	
Crude fat	9.25±0.10	
Ash	10.08±0.18	
Crude fibre	7.60±0.47	
Nitrogen free extract	37.57	
Metabolizable energy kcal g^{-1}	3.71	

[a]Halver (1989); [b]Agrimin (Agrivet Farm Care, Glaxo India Ltd., Mumbai, India)[c] Results of mean of Triplicate estimations ± SE

Table 2. Ingredients & Proximate composition of experimental diets used to rear young Labeorohita to marketable size.

Diets		
Ingredient	Compound Diet	Traditional Feed
Tuna fish meal	15.40	_
Soya bean meal	15.40	_
Ground nut meal	15.40	50.00
Corn flour	21.15	_
Rice bran	21.15	50.00
Vitamin premix [a]	1.50	_
Mineral premix [b]	3.00	_
Oil premix (1:1 Corn & Cod liver oil)	7.00	_
Proximate composition[c]		
Crude protein	29.09±0.21	30.05±0.42
Crude fat	9.80±0.13	3.60±0.09

Ash	10.00±0.07	11.30±0.15
Crude fibre	8.25±0.36	14.80±0.58
Nitrogen free extract	42.86	40.25
Metabolizable energy kcal g^{-1}	3.65	3.10

[a]Halver (1989); [b]Agrimin (Agrivet Farm Care, Glaxo India Ltd., Mumbai, India)[c] Results of mean of Triplicate estimations ± S

T-3. Growth and feed utilization of L.rohita reared in polyhouse and outdoor tanks during winter

	Polyhouse Tank	Outdoor Tank
Initial weight (g)	4.59±0.02	4.60±0.03
Final Weight (g)	128±2.53a	52.50±4.10b
Weight Increment (g)	123.41±2.55a	47.90±4.13b
Specific Growth Rate (%)	2.73±0.02a	1.99±0.07b
Feed Conversion Ratio	1.42±0.03b	2.57±0.05a
Protein Efficiency Ratio	2.02±0.05a	1.11±0.02b
Protein Deposition	39.79±0.84a	17.76±0.36b

Mean ± SE values with different letters in same row are significantly (p<0.01)different.

Table 4. Proximate composition of muscle of Labeorohita in polyhouse and outdoor tanks during winter.

	Polyhouse tank	Outdoor tank	Initial
Moisture	76.50±0.32b	80.15±0.16a	78.77±0.21
Crude protein*	83.64±0.22a	81.05±0.10b	82.15±0.08
Crude fat*	5.20±0.20a	3.21±0.12b	1.88±0.10
Ash*	4.35±0.15b	6.08±0.10a	7.30±0.18

Dry wt. Basis, Mean ± SE values with different letters in same row are significantly (p<0.05) different.

Table 5. Growth and feed utilization in Labeorohita reared to marketable size in earthen ponds using traditional feed and compounded diet.

	Traditional Feed	Compounded Diet
Initial Body Weight (g)	127.50±0.57	128.10±1.53
Final Body Weight (g)	516.00±13.00b	1120±28.00
Weight Increment (g)	388.50±13.53b	991.90±29.53a
Specific Growth Rate (%)	1.15±0.03b	1.78±0.03a

Feed Conversion Ratio	3.28±0.15a	1.65±0.06b
Protein Efficiency Ratio	1.02±0.07b	2.04±0.0a
Protein Deposition	17.10±0.81b	43.58±1.60a

Mean ± SE values with different letters in each row are significantly (p<0.05) different.

T-6 Proximate composition of muscle of Labeorohita reared to marketable size in earthen ponds using traditional feed and compounded diet.

	Traditional Feed	Compounded Diet
Moisture	78.10±0.25a	75.10±0.50b
Crude protein*	79.70±0.30b	85.25±0.12a
Crude fat*	4.45±0.22b	7.17±0.15a
Ash*	7.40±0.20a	3.98±0.15b

***Dry wt. Basis, Mean ± SE values with different letters in each row are significantly (p<0.05) different**.

REFERENCES

1. Abid, M. and M. S. Ahmed (2009 a). Growth response of *Labeorohita*fingerlings fed with different feeding regimes under intensive rearing. J. Animal & Plant Sci., 19(1): 2009, 45-49.

2. Abid, M. and M. S. Ahmed (2009 b). Efficacy of feeding frequency on growth and survival of *Labeorohita*(Ham.) fingerlings under intensive rearing. J. Animal & Plant Sci., 19(2): 2009, 111-113

3. Alim, M. A., 2005. Developing a polyculture technique for farmer's consumptionand cash crop. Ph.D. dissertation, Department of Fisheries Management,Bangladesh Agric. Univ., Mymensingh. 192 p.

4. Andrews, J.W and Stickney, R.R (1972).Interaction of feeding rates and environmental temperature on growth, food conversion and body composition of channel catfish. Transactions of the American Fisheries Society, 101, 94-99.

5. Andrews, J.W and Stickney, R.R (1972).Interaction of feeding rates and environmental temperature on growth, food conversion and body composition of channel catfish. Transactions of the American Fisheries Society, 101, 94-99.

6. Ashraf. M., M. Ayub and A. Rauf (2008). Effect of different feed ingredients and low temperature on diet acceptability, growth and survival of Mrigal, *Chrrhinusmrigala*fingerlings. Pakistan. J. Zool., 40 (2): 83-90.

7. Azevedo, P.A., Cho, C.Y., Leeson, S. and Bureau, D.P. (1998). Effects of feeding level and water temperature on growth,

nutrient and energy utilization and waste outputs of rainbow trout (*O.mykiss*). Aquatic Living Resources, 11, 227-238.

8. Bandyopadhyay, M.K., Tripa, S.D., Arvindakshan, P.K., Singh, S.K Sarkar, B.,Majhi, D. &Ayyappan, S. (2000). Fish culture in polyhouse ponds –a new approach for increasing fish production in low temperature areas. In: The Fifth Indian Fisheries Forum, 17-20 January 2000, Bhubaneswar, India. (Abstract)

9. Brett J.R, Shelbourn, J.E. and Scoop, C.T. (1969).Growth rate and body composition of fingerling sockeye salmon (*Oncorhynchusnerka*) in relation to temperature and ration size. Journal of the Fisheries Research Board of Canada, 26, 2363-94.

10. Brett, J.R. (1979). Environment factors and growth In: Fish physiology, vol.8, bioenergetics and growth (Hoar, W.S; Randall, D.J, and Brett, J.R. eds.), PP. 599-675. Academic Press, New York. USA

11. Britz, P.J, Hecht, T and Mangold, S. (1997). Effect of temperature on growth, feed consumption and nutritional indices of Haliotismidae fed a formulated diet. Aquaculture, 152, 191-203.

12. Chmilevskiy, D.A, and Lavrova, T.V. (1990).The influence of temperature on oogenesis in tilapia, *Oreochromismossambicus*. Journal of Ichthyology, 30, 14-24.

13. Eeliott, J.M. (1975). Body comp. of Brown trout (*Salmotrutta* L.) in relation to temperature and ration size on the growth and energetic of salmonids in captivity. Comparative Biochemistry and Physiology, 73B, 81-91.

14. Gadowski, D.M.&Caddel, S.M. (1991).Effects of temperature on early life history stages of California halibut *Paralichthyscalifornicus*. Fishery Bulletin, 89, 567-576.

15. Garcia Garcia, B., CerezoValverde, J., Aguado-Giménez, F., Garcia Garcia, J., Hernández, M.D., 2010. Effect of the interaction between body weight and temperature on growth and maximum daily food intake in sharpsnoutseabrean (Diploduspuntazzo). Aquacult. Int. 19:131-141.

16. Gokcek CK, Mazlum Y, Akyurt I (2008). Effects of feeding frequency on the growth and survival of *Himri barbell* and *Barbusluteus*fry under laboratory conditions. Pak. J. Nutr., 7(1): 66-69.

17. Hawkins, A.D.,Soofiani, N.M. & Smith, G.W. (1985). Growth and feeding of Juvenile cod, GadusMorhua L.J. Cons perm Int. Explor. Mer, 42, 11-32.

18. Huisman, E.A., Klein Breteler, J.G.P., Vismans M.M. &Kanis, E. (1979).Retention of energy, protein, fat and ash in growing carp (*C.carpio*,L.) under different feeding and temperatureregimes. In: Proceedings of World Symposium on Fin fish Nutrition and Fish Feed Technology (Halver, J.E. &Tiews, K.eds.), Vol. I, pp.175-188.Heenemann, Berlin, Germany.

19. Imsland, A.K., Sunde, L.M.,Folkvord, A. &Steffansson, S.O. (1996).The interaction of temperature& fish size on growth of Juvenile turbot. Journal of Fish Biology, 49, 926-940.

20. Jauncey K & Ross, B. (1982).A guide to Tilapia Feeds and Feeding.Institute of Aquaculture University of Stirling, Stirling.

21. Jonassen, T.M., Imsland, A.K.,Kadowaki, S.& Stefansson, S.O. (2000). Interaction of temperature and photoperiod on growth of Atlantic Halibut *Hippoglossushippoglossus* L. Aquaculture Resource, 31, 219-227.

22. Kestemont, P. (1995). Influence of feed supply temperature and body size on the growth of gold fish *Carassiusauratus* larvae. Aquaculture, 136, 341-349.

23. Lam, T.J. (1983). Environmental influences on gonadal activity in fish. In: Fish Physiology vol. 9B (Hoar, W.S., Randall, D.J.& Donaldson, E. M. eds.), pp. 65-116. Academic Press, New York.*North American Journal of Aquaculture, 72*, 279-289.

24. Pannevis, M.C &Houlihan, D.F. (1992).The energetic cost of protein synthesis in Isolated hepatocytes of rainbow trout (*O.mykiss*) Journal of comparative Physiology B, 162, 393-400.

25. Papoutsoglou, S.E. &Papoutsoglou, E.G.P (1978). Complete studies on body composition of rainbow trout (*Salmogairdneri*) in relation to type of diet and growth rate. Aquaculture, 13, 235-244.

26. Pillai, B.R.,Tripathy, A.P. &Rao, K.J. (1999). Observations on the growth of post larva of *Macrobrachiumrosenbergii* in polythene sheet covered earthen nursery ponds during winter. Indian Journal of fisheries, 46, 57-59.

27. Ra¹anan, Z.& Cohen, D. (1983). Production of the freshwater prawn *Macrobrachiumrosenbergi* in Israel! Winter activities 1980è81.Bamidgeh, 34, 47-58.

28. Richter, C.J.J., Viveen, W.J.A.R., Eding, E.H., Sukkel, M., Rothuis, A.J, Hoff, M.F.D.M. Van., Berg, F.G.J. Van Den &Oordt, P.G.W.J Van. (1987). The significance of photoperiodicity, water temperature& an inherent endogenous rhythm for the production of viable eggs by the African catfish, *Clariasgariepinus*, kept in subtropical ponds in Israel and under Israeli and Dutch hatchery conditions. Aquaculture, 63, 169-185.

29. Russel, N.R., Fish, J.D. & Wooten, R.J. (1996).Feeding and Growth of Juvenille Sea bass, the efficiency of ration and temperature on growth rate and efficiency. Journal of Fish Biology, 49, 206-220.

30. Shearer, K.D. (1994).Factors affecting the Proximate Composition of cultured fishes with emphasis on Salamonids, Aquaculture, 119, 63-68.

31. Singh, B.N.,Sinha, V.R.P. & Chakraborty, D.P. (1979).Effects of protein quality and temperature on the growth of fingerlings of rohu, *L.rohita* (Ham). In: Proceedings of World Symposium on Finfish Nutrition and Fishfeed Technology (Halver, J.E. &Tiews, K.eds.), Vol. II, pp.303-311. Heenemann, Berlin, Germany.

32. Stickney, R.R. (1994). Principles of Aquaculture. John Wiley & Sons Inc., New York.

33. Sundaraj, B.I. &Vasal, S. (1976). Photoperiod and temperature control in the regulation of reproduction in the female cat fish, *Heteropneustesfossilis*. Journal of the Fisheries Research Board of Canada, 33, 959-973.

34. Van Der Kraak, G. and Pankhurst, N.W (1997). Temperature effects on reproduction. In: Global Warming: Implication for Freshwater & Marine Fish (wood, C.M &Mc Donald, D.S.eds). pp 159-

176. Society for experimental Biology, Seminar Series 61, Cambridge University Press, Cambridge, UK.

35. Webb, M.A.H., Eenennaam, J.P.V., Doroshov, S.I. andMoberg, G.P. (1999).Preliminary observations on the effects of holding temperature on reproductive performance of female white sturgeon, Acipensertransmontanus Richardson. Aquaculture, 176, 315-329.

36. Weeks, C., Garling, D., Barrows, F. T., & Faisal, M. (2010). The effect of feeding varying levels of soybean meal in high-nutrient-density diets on growth performance and body composition of juvenile Atlantic salmon.

अप्रकाशित मौलिक शोध-पत्र, शोध प्रबन्ध, पुस्तक समीक्षा

एवं

पुस्तकों के प्रकाशन हेतु

सम्पर्क करें :

जी.एच. पब्लिकेशन

121, शहराराबाग, इलाहाबाद-211 003

e-mail : ghpublication@gmail.com

Ph. : 0532-2563028 (M) 09329225173

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

"E-COMMERCE : A NEW INNOVATION IN BUSINESS"

❒ Kripa Shankar Tiwari
❒ Aradhana Dubey

ABSTRACT

The business world has changed rapidly over the last decate with globalization, increased competition advanced internet network today have changed the entire scenario, today organizations are developing new relationship with customers, distributors, suppliers and partners. With the liberalization and the emergence of largely free and competitive market in the third world. Countries marking management is becoming multidimensional and global strategic game. E-commerce and the booming information technology contribute significantly to this healthy economy. The emerging E-commerce had a significant and historic impact of economic activities.

E-commerce is directly dependent on the integration of network connectively with information systems. Many of its advantages are the some as those that make the internet a preferred infrastructure. The internet is available globally and distributes information to any one connected through it, twenty hours a day, several days a week.

Introduction

The business world has changed rapidly over the last decade with globalization, increase competition advanced internet network today have changed the entire scenario, today organizations are developing new relationship with customers, distributors suppliers an partners. With the liberalization and the emergence of a largely free and competitive market in the third world. Countries marking management is becoming a multidimensional and global strategic game. E-commerce and the booming information technology contributed significantly to this healthy economy. The emerging E-commerce had a significant and historic impact on economic activities.

* Faculty Member, Commerce Department , Govt. College Gurh, Rewa (M.P.)
** Research Scholar, Geology Department, A.P.S. University Rewa (M.P.)

E-commerce utilizes electronic networks to implement daily economic activities such pricing, contracting, payments and in some case even shipments and delivery of goods at services.

Definition

E-Commerce very much used in business and information system. SO it has numerous definitions. According Wigand.- "the seam less application of information and communication technology fro its point of origin to its end point along the entire value chain of business processes conducted electronically and designed to enable the accomplishment of a business goal. These processes may be partial or complete and may encompass business to business well as business to consumer and consumer to business transactions.

This introduced the value chain, an important point as e-commerce technology can applied in transactions between manufacture and supplier, manufacture and retailer and serve supplier and consumer. This definition is, however, possibly a bit all embracing, one is temp to think of an order processing system of EDI era as e-commerce is provided at a Europe union website.

Electronic commerce is a general concept covering any form of business transaction information exchange executed using information and communication technology, between companies and their consumers or between companies and public administration, Electro commerce includes electronic trading of goods, services and electronic material.

Scope of E-Commerce

E-commerce is a term popularized by the advent it commercial services on the internet. Internet e-commerce is only part of overall sphere of e-commerce. The commercial use of the internet is perhaps typified by once-all sales to consumers. Other types of transaction use other technologies. Electronic markets (Ems) are in use in a number of trade segments with an emphasis on search facilities and electronic data interchange (EDI) is used for real and standardized transactions between organization the mainstream of e-commerce consists of these three areas; There are represented as a diagram in figure-1

Figure-1

Electronic

EDI Internet

Commerce

Source - whitely. D.E. commerce strategy, technologies and application - New Yar McGraw -Hill Companies - 2000-P4

Electronic Markets :- An Electronic Market is the use of information and communication technology to present a range of offering available in a market segment so that the purchaser can compare the prices of the offer example of a electronic market is an airline booking system.

Electronic Data Interchange - It provides a standardized system for coding trade transactions, that they can be communicated directly from one computer system to another without the need for printed orders and invoices and the delays and errors implied in paper handling. EDI is

used by organizations that make a large number of regular transactions one sector where EDI is extensively used is the large supermarket chains which use EDI for transactions with their suppliers.

Internet Commerce

Information and communications technologies can also be used to advertise and make once off sales of a wide range of goods and services. This type of e-commerce is typified by the commercial use of the internet. The internet can for example, for purchase of book that are than delivered by post or the booking of tickets that can be picked up by the client when they arrive at the event. It s to be noted that the internet is not the only use of the internet in e-commerce.

Opportunities of E-commerce

There is a large number of e-commerce opportunities that depend on the business and customers its serves. Here are some opportunities of e-commerce.

- Retail seller on the internet can sell high quality, specialized products that appeal to a audience of affluent, well educated, well informed people.
- Companies that sell their goods through catalog and 1-800 numbers can expand the reach to additional global customers at a low marginal cost.
- Wholesalers, distributors, or service provides can sell to business that have embraced e-commerce and that demand the convenience and efficiencies of buy it from a website.
- Companies holding comprehensive sets of digital assets can sell and distribute the products electronically.

Business to business selless, the majority of whose customer base is already on the internet. Can build a closer relationship, electronically.

Companies that already have a corporate website and an efficient Network operation can establish subsidiary sites for related, ancillary or consumable products.

Business selling products that can readily be distributed over the internet (software, market research, industry and financial report news, about local events, sports travel and so on) can expand their customer bases.

Business selling products that are subject to frequent changes (airline tickets, financial instrument) can reduce production and obsolescence costs become they offer only prudent on the site they can also adjust pricing in real time in response to fluctuations in demand.

Business that configure products to customer measurements or specification (custom-tailored garments, configured PCS food shopping and delivery services or other just in-times products) can expand made to-order services to new markets.

Benefits of E-commerce :- E-commerce is directly dependent on the integration of network connectively with information systems. Many of its advantages are the some as those that make the internet a preferred infrastructure. The internet is available globally and distributes information to any one connected through it, twenty hours a day, sever days a week.

Global Accessibility and sales reach :- An e-commerce can receive orders from just about any country in the world.

Market base expansion :- An e-commerce can open its critical information systems to entirely new groups of users, including employees, customers suppliers and business partners, who formality did not have timely access to them.

Increased profits :- With e-commerce compares reach more and different customers and gain exposure in new markets not covered by existing physical channels.

Improved customers service and loyally :- E-commerce enables a company to be open for business whenever a customer needs it shorter time to market.

E-commerce market for fast and flexible executing and response to mark opportunities.

Supply chain integration :- E-commerce enables the full integration of a business making the entire supply chain more efficient form the point of customer contact the way back through physical distribution, warehousing, Manufacturing resources management and purchasing.

The Need for E-commerce :-

The new electronic distribution and sales chains will require a new set of players such a content provides to develop appealing editorial consumers production hourses, to produce information that has culturally appropriate style and language and which are able to reach small niche markets network infrastructure provides, to provide the transmission right on way and carries (telephone, companies, cable companies, primal networks) to reach discrete masses of consumers.

Thus the four key parties involved, i.e. consumers, sellers, intermediaries and network operators have to work very closely for success of the e-commerce. Consumer sovereignty is being maintained, i.e. consumers are not bystanders in this process.

Thus, we can say that evolution of web enabled business e-commerce has four distinct phases, out off which the first three phases are essential for establishing e-commerce.

Business set up and their presence on the web.

Interactive websites

Transaction happening online.

Advanced personalization, industry

Specific application engines, etc.

Some of which are listed :

It provides a win-win situation for all.

To business organization :

It provides, paperless transaction faster movements of inventory insignificant communication bills fever middlemen in business lower manpower costs quicker order-execution and faster realisation of money etc.

To consumers :

Easy at purchase

Flexibility of time, place and distance to enter into buying and selling business.

under choice

Customer used impersonalized

Product èservices

lower price, etc.

E-commerce provides an opportunity to the people to come in contact with superior

goods or superior palter us of consumption with new articles or new ways of meeting old wants.

The varieties of environment in which multinational organization operate create rich poor knowledge, which can be used to improve performance of any business, knowledge has become such a resource in corporation that it is often for more valuable than the hard resources of building, plant, equipment and inventories.

The small sellers get a chance to complete against much bigger players in almost every field. Entrepreneurs are able to start business more easily, with smaller up front investment requirement.

By one estimate, distribution expense comprise between 50 and 60 percent of cost of consumer product, shrinking existing distribution chains and using e-commerce cna achieve substantial savings. Thus electronic commerce lowers down prices and provides new sales channels.

Better products promotion

In provides very easy way to get a touch with consumer at global level it provides high global instant visibility of the products through web technology and hence better products promotion.

At a relatively lower cost than magazine advertising companies can use the web as their bill board for interactive advertisements, and reach an international audience of over 150 million people.

This has special significance for developing countries like India, where international advertising in more traditional way is simply unaffordable, except for large companies.

A rich medium describes the product, it unique selling features in more professional and effective way, interactive websites can contain photographic product or service documentation or even virtual reality walk through, where the user can interact with the production and services.

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

महीयसी महादेवी वर्मा और नलिनीवाला देवी की जीवन एवं काव्य यात्रा का तुलनात्मक अध्ययन

❐ डॉ. अदिति सैकिया

शोध सारांश

हिन्दी तथा असमिया के शिखर कवयित्री महादेवी वर्मा और काव्य भारती नलिनीवाला देवी एक ही प्रदेश के न होने पर भी अपनी-अपनी भाषा में लिखने वाले काव्य तथा दोनों के व्यक्तित्व का अद्‌भुत सादृश्य देखने को मिलता है। उन दोनों की साहित्य में प्रेम, करुणा और वेदना की त्रिवेणी प्राप्त होती है। दोनों के काव्य में पग-पग पर देशप्रेम की अभिव्यक्ति पाई जाती है। अज्ञात सत्ता की खोज में दोनों कवयित्रियाँ आजीवन बन्दी हैं। दोनों के बीच समानताएँ होते हुए भी विषमताएँ भी है। यहाँ केवल काव्य की संवेदना तथा शिल्प के ऐसे प्रतिमानों को आधार लिया गया है, जो दोनों कवयित्रियों में समान रूप से अनुसंधेय रहे हैं। अतः दोनों कवियित्रियों की जीवन यात्रा तथा काव्ययात्रा में जो समान तत्त्व लक्षित होते हैं, सिर्फ उनका उल्लेख ही यहाँ किया गया है।

उन्नीसवीं सदी में असम में जन्म लेने वाली कवयित्री नलिनीवाला देवी और उत्तर प्रदेश में जन्म लेने वाली हिन्दी कवयित्री महादेवी वर्मा अपनी-अपनी भाषा तथा साहित्य आकाश के दो उज्जवल नक्षत्र हैं। काव्य भारती नलिनीवाला देवी का जन्म सन् 1898 में 23 मार्च को असम के बरपेटा में हुआ था। सन् 1909 में उनकी शादी हुई थी। शादी के कुछ साल बाद ही सन् 1917 में में उनके स्वामी जीवेश्वर चांकाकती की मृत्यु हो गई। दस साल की आयु में '**पिता**' शीर्षक एक कविता से काव्य का शुभारम्भ करने वाली नलिनीवाला देवी ने अपनी रचनाओं से असमिया साहित्य की सेवा की। सन् 1928 में लिखित '**सन्धियार सुर**' उनका प्रथम काव्य संकलन है। इसके अलावा उन्होंने '**सपोनर सुर**' 1943, '**पारसमणि**' 1954, '**युगदेवता**' 1957, '**अलकनन्दा**' 1967, '**जागृति**' और '**अन्तिम सुर**' शीर्षक काव्य ग्रन्थों से असमिया साहित्य कोष को समृद्ध किया है। अपनी प्रतिभा से असमिया साहित्य को समृद्ध करने वाली काव्यभारती नलिनीवाला देवी का 24 दिसम्बर, 1977 को देहावसान हुआ।

नलिनीवाला देवी के जन्म के ठीक नौ साल बाद उधर उत्तर प्रदेश में महादेवी वर्मा का जन्म हुआ। आस्था, आनन्द और सौन्दर्यमय जीवन की गायिका महादेवी वर्मा का जन्म होली के दिन सन् 1907 में 26 मार्च के उत्तर प्रदेश के फर्रूखाबाद में हुआ था। सन् 1916 में ग्यारह वर्ष की अवस्था में डॉ. स्वरूप नारायण वर्मा से उनका विवाह हो गया। किन्तु वैवाहिक जीवन अधिक सफल न रहा। कविता

* एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, मनोहारी देवी कनई महिला महाविद्यालय, डिब्रूगढ़ (असम)

के प्रति उनका अनुराग बचपन से ही था। उनकी पहली कविता सन् 1924 ई. में **'चाँद'** पत्रिका में प्रकाशित हुई। बचपन से ही साहित्य प्रेमी महादेवी वर्मा का पहला कविता संग्रह सन् 1930 में प्रकाशित हुआ। उसके बाद **'रश्मि'** 1932, **'नीरजा'** 1935, **'सान्ध्यगीत'** 1936 और **'दीपशिखा'** 1942, **'सन्धिनी'** 1965 तथा **'यामा'** 1940 शीर्षक आदि रचनाओं से उन्होंने हिन्दी साहित्य को बहुत बड़ा योगदान दिया है।

जीवन भर हिन्दी की सेवा तथा राष्ट्र की सेवा करने वाली महादेवी वर्मा ने 11 सितम्बर, 1987 को अन्तिम साँस ली।

दोनों कवयित्रियों के काव्य संकलन-विश्लेषण करने के बाद दोनों के व्यक्तित्व औरर कृतित्व में अपूर्व सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है। दोनों की कविताओं का मूल उत्स है दुःख। सांसारिक जीवन में बुरी तरह घायल, अभिशप्त नलिनीवाला देवी का मानना है कि दुःख से आत्मा की शुद्धि होती हैं वेद की वाणियों में उन्होंने सीखा है कि दुःख मनुष्य का परम दोस्त है। दुःख मनुष्य को अहंकार मुक्त कर भगवान के शरणों में आत्मसमर्पण करना सिखता है। दुःख लोगों की आत्मा को शुद्ध करता है, विनय, सहिष्णुता तथा संवेदनशील बनाता है। दुःख है लोगों का सच्चा पथ-प्रदर्शक।

नलिनीवाला देवी के दुःख का आधार स्पष्ट है। विवाहोंपरान्त पति जीवेश्वर चांकाकती और दोनों सन्तानों का छीनकर भगवान ने उनका संसार उजाड़ दिया। इस अनघ्र बज्रपात ने नलिनीवाला देवी को झकझोर दिया। उनकी जिन्दगी निराशा और वेदना की कहानी बन गयी।

अकाल वैधव्य तथा पुत्र शोकातुर महीयसी कवयित्री नलिनीवाला देवी की कविता में वेदना की सजल मार्मिक अभिव्यक्ति देखने को मिलता है—

उत्सव दीपालि आजि नाइ ज्वालि थोवा-
उलाहर वीणखनि नाइ आजि कोनेउ बजोवा।
बेलिर जेउति सौ बुर ग 'ल सागर बुकुत,
एन्धार घनाई आछे विषादर कालिमा रूपत।

(अनाहुत-सन्धियार सुर, पृ.2)

उनकी कविता का मूल तत्त्व दुःख और करुणा हैं इस दुःख और विरह ने इनकी समस्त स्वप्नों, कल्पनाओं व इच्छाओं को बिखेर दिया है। उनका जीवन वेदना, करुणा व आँसुओं से परिपूर्ण हैं। उन महीयसी कवयित्री नलिनीवाला देवी की कविताओं में यही भाव स्पष्ट होता है—

निमिषते आँतरिल
पुवतरि आलोक सपोन,
डावरे धरिले छाटि
प्रभातर सोणाली किरण।

(सन्धियार सुर-पृ. 2)

दुःखवाद की चितेरी के रूप में विश्वविख्यात महादेवी वर्मा ने वेदना को विशेष आत्मीयता और आस्था के साथ अपनाया था। दुःख की बड़ी कवयित्री महादेवी जी वेदना को उच्चतम भूमिका पर स्वीकार करती है। उन्होंने 'यामा' की भूमिका में कहा है—**'दुःख मेरे निकट जीवन का एक ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सके, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेले भोगना चाहता है परन्तु दुःख सबको बाँटकर विश्व जीवन में अपने जीवन को, विश्ववेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देता है जिस प्रकार एक जल बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, 'कवि' का मोक्ष' है[1]।**

वेदना, पीड़ा तथा करुणा की त्रिमूर्ति के रूप में विश्वव्यापी ख्याति मिलने वाली महादेवी वर्मा ने दुःख-पीड़ा जैसी अनुभूतियों का वर्णन सुन्दर ढंग से किया है—

''मैं नीर भरी दुःख की बदली,
स्पन्दन में चिर निस्पंद बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हंसा
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली!''

संसार और जीवन के प्रति दुःख तथा निराशा की भावना उनकी कविता में यत्र-तत्र मिलता है—

''सखे! यह है माया का देश
क्षणिक है तेरा मेरा संग
यहाँ मिलन काँटों में बंधु
सजीला सा फूलों का रंग
न भूलों हे प्यारे जीवन''

(नीहार-पृ. 57)

महादेवी जी को विरहाग्नि प्रिय है। इसलिए उनके लिए ज्वाला में जीवन है। उन्होंने जीवन को विरह का जलजात बताते हुए कहा है—

''विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात!
वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवाससस,
अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु गिनती रात!
जीवन विरह का जलजात!
आँसुओं का कोष उर, दृगअश्रु की टकसाल,
तरल जल-कण से बने घन-सा क्षणिक मृदुगात!
जीवन विरह का जलजात!''

सच तो यह है कि हिन्दी के छायावादी कवियों में एकमात्र उन्होंने ही वेदना के चरम विकास को अंकित किया है। बीसवीं सदी का प्रथमार्द्ध भारतीय साहित्य में रोमांटिक विस्तार युग है। इस समय पली-बढ़ी दोनों कवयित्रियाँ रोमांटिक भावधारा से पूर्ण कविताएँ लिखने लगी। रोमाण्टिसिज्म तथा रहस्यवाद दोनों कवयित्रियों की मूलधारा होने के कारण दोनों की काव्यवस्तु की समानता अधिक है। जिज्ञासा, आस्था तथा अद्वैत भावना दोनों कवयित्रियों की कविता में देखने को मिलता है। इन दोनों के काव्य में पग-पग पर रहस्यवादी की अभिव्यक्ति पाई जाती है। नलिनीवाला देवी रहस्यवादी कवयित्री हैं। व्यक्तिगत जीवन की वेदना ही उनके रहस्यवाद का मूल उत्स है। अतीन्द्रियवादी कवयित्री नलिनीवाला देवी का मन अज्ञात सत्ता को जानने के लिए भटकता रहता है। अज्ञात तथा अज्ञेय सत्ता की खोज में नलिनीवाला देवी आजीवन बन्दी हैं। उनकी कविता में अज्ञात सत्ता के प्रति जिज्ञासा भाव की रहस्यवादी सुर—

''अमिया धारा ढालाहि आँरे आँरे
शीतल करि अवश तनु मन,
गोपन चारि!
तुमि कोन? तुमि कोन?

(सन्धियार सुर-पृ.51)

उनका हृदय जिज्ञासा से भर जाता है तथा रहस्यमय भाव से उद्वेलित हो उठता है। नलिनीवाला देवी की रहस्यानुभूति का आधार उनके अन्तर की गहन पीड़ा है। आतुर आकांक्षा से तप्त हृदय आकुल होकर अज्ञेय जन को खोज रही है—

''ओ मोर परम प्रिय!
तुमि क 'त तुमि क 'त क 'त?''

उसी तरह महादेवी वर्मा की कविता में भी अज्ञात सत्ता के प्रति जिज्ञासा भाव की अभिव्यक्ति स्पष्ट होती है। चिरन्तन सत्य-सुन्दर के प्रति आकुलता, अज्ञेय सत्ता को जानने की इच्छा आदि सीमाहीन भाव का वर्णन रहस्यवादी कवयित्री महादेवी वर्मा की कविता में स्पष्ट झलकता है। उस अज्ञात सत्ता द्वारा रचे हुए संसार को देखकर कवयित्री महादेवी वर्मा का हृदय जिज्ञासा से भर उठता है। वे कह उठती हैं—

''और यह विस्मय का संसार
अखिल वैभव का राजकुमार,
धुलि में क्यों खिलकर नादान
उसी में होता अन्तर्धान।''

इस संसार का नियमन करने वाली उस अज्ञात अव्यक्त तथा परम सत्ता का आभास तो उन्हें हुआ है, लेकिन वह निश्चित रूप से यह नहीं जान पायी कि वह कौन है। वह विवश होकर पूछती है—

''कौन तुम मेरे हृदय में?
कौन मेरी कसक में नित
मधुरता भरता अलक्षित?
कौन व्यासे लोचनों में
घुमड़ घिर झरता अपरिचित?''

उस रहस्यमय सत्ता के प्रति जिज्ञासा का भाव यत्र-तत्र मिलता है। वह उस अज्ञात सत्ता के रहस्य को समझने में सर्वथा असमर्थ रही है।

मुस्कराया जब मेरा प्रात,
छिपाकर लाली में चुपचाप
सुनहला प्याला लाया कौन?

(नीहार-पृ.18)

उस रहस्यमय कार्यकलापों को देखकर उस अव्यक्त सत्ता के प्रति जिज्ञासा कुतूहल अथवा आश्चर्य के भाव का बड़ा सुन्दर तथा रहस्यात्मक काव्यमय भावचित्र का वर्णन महादेवी वर्मा ने इस प्रकार अंकित किया है—

''शून्य नभ में उमड़ जब दुःख भार-सी
नैशतम में सघन छा जाती घटा।
बिखर जाती जुगनुओं की पंक्ति भी,
जब सुनहले आँसुओं के हार-सी।
तब चमक जो लोचनों को मूँदता,
तड़ित की मुस्कान में वह कौन है?''

परम सनातन सत्ता के प्रति जटिल विश्वास और आस्था रहस्य भावना की मूल है। अनादि, अनन्त सत्ता में आस्था और विश्वास की अभिव्यक्ति नलिनीवाला देवी की कविता में परिलक्षित होती हे। उनका विश्वास है कि इस जगत का संचालन करने वाली कोई अदृश्य, अज्ञात एवं चेतन सत्ता अवश्य हैं यही भावना उनकी कविता में अनायास मुखरित हो उठती है, वह कह उठती हैं—

'जगतर प्रति रेणु माजे
आछा तुमि जानो भालकैये,
तथापि तथापि मोर-
हिया भरा आकुल वासना,
वियापिछे तोमार-काषलै।'

(सँचा ने-सन्थियार सुर)

महादेवी वर्मा भी प्रतिक्षण अजान परम सत्ता की उपस्थिति महसूस करती है। अज्ञात सत्ता के प्रति आस्था और विश्वास को वाणी भी उनकी कुछ कविताओं के माध्यम से स्पष्ट होता है—

''छिपा है जननी का अस्तित्व,
रुदन में शिशु कै अर्थविहीन
मिलेगा चित्रकार का ज्ञान,
चित्र का जड़ता में लीन।''

(यामा-पृ. 86)

महादेवी वर्मा को अज्ञेय सत्ता का संकेत प्रकृति में मिलता है। इसका स्पष्ट चित्रण द्रष्टव्य है—

''तुम अनन्त जलराशि उर्म्मि में
चंचल-सा अवदान
अनिल निपीड़ित जा गिरती जो
फलों का अम्लान।''

(रश्मि, पृ. 53)

जिस तरह चित्र चित्रकार के अस्तित्व का प्रमाण होता है, उसी तरह विश्व ब्रह्माण्ड भी सृष्टिकर्ता के अस्तित्व का ही प्रमाण है। दोनों कवयित्रियों का यही मानना है।

आत्मा-परमात्मा की अद्वैत भावना ही है रहस्यवाद की अन्य विशेषता। चिरसुन्दर परम सत्ता के साथ एकता का बन्धन तथा प्रियतम के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव असम के कवयित्री नलिनीवाला देवी की कविता में मुखरित हुआ है—

''तुमि ज्योति मइ रेणु
हे अरूप। रूपर आलय,
अनरूपे अनादित
तोमातेइ लन हमगै।''

कवयित्री महादेवी वर्मा ने भी आत्मा और परमात्मा के भिन्नता में अभिन्नता के सम्बन्धों का निरूपण किया है। उन्होंने कहा है—

''चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम
मधुर राग तू मैं स्वर संगम।?''

(यामा-पृ.149)

उन्होंने द्वैत की स्थिति और अद्वैत का आभास-दोनों आवश्यक माना है **''क्योंकि एक के अभाव में विरह**

की अनुभूति असम्भव हो जाती है और दूसरे के बिना मिलन की इच्छा अधिकार खो देती हैं''[2] आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध तथा अद्वैतवाद का स्पष्टतः प्रतिपादित **''बीण भी हूँ तुम्हारी रागिनी भी''** शीर्षक कविता में भी दिखाई देते हैं। जब आत्मा अपनी सत्ता को छोड़कर असीम सत्ता में संयुक्त हो जाती है, तब वह परमात्मा के समस्त गुणों को प्राप्त करता है। आत्मा का परमात्मा में विलय होने की स्थिति निम्न पंक्तियों में स्पष्ट है—

''नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,
तार भी, आघात भी, झंकार की गति भी,
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ, और स्मित की चाँदनी भी हूँ।
बीन भी हूँ, मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।''

प्रिय के रंग में पूर्णतया रंग जाने पर भक्त द्वैत की भावना से मुक्त हो जाता है। भाव और भगवान के मिल जाने पर भक्त और भगवान का भी तादात्म्य हो जाता है। रहस्यवादी कवि इस स्थिति में परम आत्मा के साथ एकाकार हो जाता है। महीयसी कवयित्री नलिनीवाला देवी का मानना है कि आत्मा अनीश्वर है। प्रत्येक मनुष्य की आत्मा परम पुरुष परमात्मा से मिलने के लिए व्याकुल है। 'परम तृष्णा' शीर्षक कविता में उनका वह सुर विद्यमान है—

''दूरनिर पखीजाकि उरि जाय रिडियाई
वियाकुल उदासी सुरत
प्रतिध्वनि बाजे सुदूरत।
मोरो एइ पिंजरार अशांत पखीटि देखो
मिलि याव खोजे अनन्तत
असीमर अचिन बाटत।''

(सन्धियार सुर, पृ. 15)

नलिनीवाला देवी ब्रह्म से मिलकर नीर-क्षीर की भाँति उसके साथ एकमेक हो जाना चाहती है। यही पूर्ण तादात्मय की स्थिति का वर्णन उनकी कविता से स्पष्ट दिखाई पड़ता है—

''पुवतिर शुभ लगनत
अरुणर रडा पोहरत
तोमार लगत मोर
अनन्त मिलन
निते देखा शेवालि बनत॥''

(सन्धियार सुर-मिलन-पृ.22)

नलिनीवाला देवी के काव्य आलोचना प्रसंग में डॉ. महेश्वर ने ओग का कहना है कि **''भगवन्तक सम्बोधन करि रचा कविताबोरत एक आकुल भक्तिर आत्मसमर्पणर सुर कँपि उठिछे। किन्तु सेइ भक्ति आरु आत्मसमर्पणर येन एक रहस्यर माजत सोमाई अतीन्द्रियवादी है परिछे।''**[3]

रहस्यानुभूति की यही स्थिति महादेवी की कविता में भी देखने को मिलती है। अपने प्रियतम के साथ मधुर मिलन का भाव उनकी समस्त काव्य रचनाओं में भरा हुआ है। उनका मानना है—आत्मा परमात्मा से मिलने का प्रयत्न करती है और उसे प्राप्त कर उसमें लय हो जाना चाहती है। प्रिय से तादात्म्य की स्थित का वर्णन करते हुए महादेवी वर्मा कहती है—

''सिहर सिहर उठता सरिता उर
खुल-खुल पड़ते सुमन सुधा भर
मचल-मचल आते पल फिर-फिर
खुन प्रिय की पदचाप हो गयी
पुलकित यह अवनी।''

(नीरजा-पृ. 13)

अतः उन दोनों के काव्य में पग-पग पर रहस्यवाद की अभिव्यक्ति पाई जाती हैं दोनों की रहस्यानुभूति का आधार अपने-अपने अन्तर की गहन पीड़ा तथा वेदना है। दुःखवाद दोनों कवयित्रियों की सिद्धि और साधना दोनों ही है। दोनों की कविताओं में अज्ञात सत्ता के प्रति जिज्ञासा तथा उससे उत्पन्न कौतूहल, विस्मय एवं आनन्द की व्यंजना, अदृश्य सत्ता के प्रति आस्था, विश्वास और प्रेम, चिरन्तन सत्य सुन्दर के प्रति आकुलता तथा आत्मसमर्पण की भावना मुखर दिखाई देती है।

दोनों कवयित्रियों में देश-प्रेम की भावना भी प्रगट हुई है। बाल्यावस्था में ही असाधारण प्रतिभा से युक्त कवयित्री नलिनीवाला देवी की प्रायः रचनाएँ देशप्रेम से युक्त थीं। **'भारत', 'भारतवाणी', 'तुमि असमिया', 'तुमि आदि असमिया'** आदि उनकी विशेष रूप से उल्लेखनीय देशप्रेममूलक कविता है। अपनी कृतियों के माध्यम से उन्होंने देशप्रेम का भाव झलकाया है—

''मेलिलो प्रथम चकु
तोमार कोलाते आइ
जनमर आदिम पुवात,
मुदिम आकौ चकु
तोमार कोलातेइ शुइ
जीवनर शेष सन्धियात।''

(जन्मभूमि)

देश-प्रेम का तात्पर्य सच्ची निष्ठा से है। देश की मर्यादा एवं आन-बान-शान की रक्षा के लिए सर्वस्व निछावर करना ही देश-प्रेम है। नलिनीवाला देवी ने भी अपने देश मात्र के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार है, क्योंकि उनमें देश के प्रति सच्चा प्रेम है। वे देश के उत्थान एवं विकास के लिए सर्वस्व न्यौछावर करना चाहती हैं—

''नदी है पखालिम
दुःखनि चरण निते
माटि है मिमिल बुकुत।
सोनोवाली मेघ है
रडा हाँहि बिरिडाम
शँता परा दुःखनि उँठत।''

(जन्मभूमि)

स्वदेश प्रेम का भाव आपकी कृतियों का प्रतिनिधित्व करता है। वे अपनी जन्मभूमि से बहुत प्यार करती हैं। स्वदेश प्रेम की भावना उनमें इतनी प्रबल है कि मृत्यु के बाद भी वे अपने देश में ही जन्म लेना चाहती हैं। स्वेदश के प्रति सच्चा प्रेम का परिचय निम्न पंक्तियों में स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं—

''दुखियार भडा पँजा
एकोखनि तीर्थ बात
एकोखनि पुब्यर आश्रम,
मरिले पुनर आहि
दुःखीया देशते मोर
लउँ येन पुनर जन्म।''

(जन्मभूमि)

विरह की अमर गायिका महादेवी वर्मा में भी देशप्रेम की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। अन्य देशप्रेमियों की तरह उन्होंने भी अपनी जन्मभूमि की हर वस्तु से प्रेम किया हैं वे अपने देश के वीरों को उत्साहित करती है और कविताओं के माध्यम से कहती हैं कि चाहे यह न हिलने वाला हिमालय भी हिल उठे, चाहे प्रलय के प्रभंजन जल उठे, चारों ओर कितना भी अन्धकार क्यों न हो, आकाश चाहे कुछ भी क्यों न करे। इन सब बन्धनों को महादेवी जी मोम के समान मानती हैं। वे वीरों को इन सबसे दूर रहकर या निडर होकर अपनी राह पर चलने के लिए प्रोत्साहित करती हैं—

''अचल हिमगिरि के हृदय में
आज चाहे कम्प हो ले
या प्रलय के आँसुओं में मौन
अलसित व्योम रो ले।''

काव्य शिल्प के क्षेत्र में दोनों के बीच अनुपम सादृश्य है। कथ्य और शिल्प की एकता के कारण उन दोनों का काव्य कालात्मक और क्लासिक न होकर सहज, स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है।

नलिनीवाला देवी के काव्य में प्रकृति वर्णन, प्रतीक प्रयोग, अलंकार और छन्द की प्रधानता है। उनके काव्य में विभिन्न अलंकारों का सुन्दर प्रयोग मिलता है। शब्दालंकार का प्रयोग ही उनके काव्य को श्रुतिमधुरता प्रदान करते हैं। पद्मश्री नलिनीवाला देवी की निम्न पंक्तियों में अनुप्रास अलंकार का निदर्शन है—

''मधु मालतीर रूप माधुरी
मधु मधुप गुंजन

जन मानसर कल्पकानन
अनुभूति अनुपम।''

ठीक उसी तरह महादेवी वर्मा की कविता भी शब्दालंकार, अर्थालंकार, प्रतीक, चित्रण, विचित्र छन्द-सज्जा और लय का सौन्दर्य अधिक आकर्षणीय तथा वैशिष्ट्यपूर्ण है। उनकी कविता में अनुप्रास अलंकार का निम्न उदाहरण देखिए—

''मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
युग-युग प्रतिदिन-प्रतिक्षण-प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।''

(नीरजा-पृ.34)

दोनों कवयित्रियों ने लौकिक प्रतीकों का प्रयोग करके अपने-अपने काव्य को सुन्दर और सुष्ठु रूप प्रदान किया है। '**सागर**' संसार के लिए, '**तम**' यानी '**एधार**' अज्ञान के लिए, '**दीपक**' आत्मा के लिए, '**दीया**' जीवन के लिए प्रयोग किया गया है। इनके अलावा और अनेक प्रतीकों का प्रयोग उन दोनों ने किया है। इन्हीं मान्य प्रतीकों के सहारे वे अपने मानस के बिन्दुओं को रूप प्रदान करती हैं।

दोनों कवयित्रियों के प्रतीकों के मूल में अन्तर्मुखी प्रवृत्ति है। उन दोनों ने लौकिक प्रतीकों के माध्यम से सूक्ष्म, अलौकिक अमूर्त को व्यक्त करने का प्रयास किया है। पद्मश्री नलिनीवाला देवी की कविता में प्रतीकों की योजना स्वच्छद रूप में हुई है। प्रतीकों को समुचित स्थान दिया जाने वाला एक दृष्टांत देखिए। यहाँ एन्धार अज्ञान के लिए प्रयुक्त किया गया है—

''एन्धार पृथ्वीखनि
नाइ पोहरर लेश
मोरो हिया एन्धारेरे भरा।''

(एन्धार-सन्धियार सुर-पृ. 24)

'**वीण**' प्रतीक नलिनीवाला देवी के काव्य में बार-बार प्रयुक्त होता है किन्तु प्रत्येक बार नूतन सन्दर्भ देकर।

उदाहरण के लिए—

''आजि कोन सुदूरर
नुशुना बाँहीर सुर
बाजे मोर निफुट वीणत''

अथवा—

''ओ मोर चेनेही वीण।
तोर ताँरे ताँरे मइ
गाइ याम मोर यत गीत''

हिन्दी कवयित्री महादेवी वर्मा के काव्य में प्रतीक उनकी शिल्पगत साधना की श्रेष्ठता का प्रतीक है। डॉ. नगेन्द्र ने उनकी प्रतीक योजना का विश्लेषण करते हुए लिखा—''उपमानों के प्रतीकों में अधिक वैचित्र्य तथा वैविध्य नहीं है—जीवन और जगत के अत्यन्त सीमित क्षेत्र से इनका चयन हुआ है। परन्तु संयोजना में वैचित्र्य है, कहीं महादेवी चित्र की पुनरावृत्ति नहीं करती। उपकरण प्रायः वे ही हैं, किन्तु उनकी संयोजना सर्वथा भिन्न है। इसीलिए उनकी कला में विस्तार नहीं परन्तु सूक्ष्म विन्यास है।''[4] प्रतीक विधान का समायोजन उनकी कृति में अनेक स्थलों पर व्यक्त हुआ है। उनकी कृति में प्रतीकों की उत्तम व्यवस्था है। कई कृतियों उनकी ऐसी भी हैं, जिनके नाम भी प्रतीकात्मक ही हैं। शलभ, दीपक, कमल, महादेवी वर्मा के प्रिय प्रतीक हैं। 'बीन' प्रतीक का प्रयोग देखिए—

बीन भी हूँ मैं, तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
दूर तुमसे हूँ अखंड सुहागिनी भी हूँ।

उन्होंने दीपक का अंकन बार-बार नूतन सन्दर्भ देकर अनेक रूपों में किया है—

''मधुर मधुर मेरे दीपक जल।''

(नीरजा, पृ. 26)

अथवा

''उर का दीपक शिर स्नेह अतल
सुधि लो शत झंझा में निश्चल
सुख से भीनी, दुःख से गीली
बर्ती से साँस अशेष रही।''

(नीहार, पृ. 53)

इस प्रकार दोनों कवयित्रियों ने प्रतीकों के माध्यम से अप्रत्यक्ष, असीम, अनन्त, चिरसुन्दर से मिलन, मिलने की आकांक्षा आदि की व्यंजना करती है।

तुलनात्मक दृष्टियों से देखने पर शिल्प के क्षेत्र में दोनों का प्रभेद इतना ही है कि नये उपमान के प्रयोग के क्षेत्र में महादेवी वर्मा का स्थान नलिनीवाला देवी से कुछ आगे है। दूसरी ओर चित्रकला के क्षेत्र में नलिनीवाला देवी का चित्रण महादेवी वर्मा की तुलना में अधिक सहज है। वक्रोक्ति, विरोधाभास आदि के क्षेत्र में भी सहज-सरल शब्दावली के सुप्रयोग के मनोहारीत्व ने नलिनीवाला देवी की कविताओं को अधिक महत्त्व प्रदान किया। इसके विपरीत वक्रोक्ति, विरोधाभास आदि के प्रयोग ने महादेवी वर्मा की कविता को बीच-बीच में दुर्बाध्य किया—

''मैं नीर भरी दुःख की बदली
स्पन्दन में चिर निस्पंद बसा।
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा।''

(सान्ध्यगीत, पृ. 233)

काव्यभारती नलिनीवाला देवी प्रसिद्ध कवयित्री के साथ-साथ कुशल गद्य लेखिका भी है। **'एरि अहा दिनबोर'**, **'शांतिपथ'**, **'मानस-तीर्थ'**, **'विश्वदीपा'**, **'सरदार बल्लभ भाई पटेल'** आदि उनका आज भी प्रासंगिक है। कवयित्री के अलावा गद्य लेखिका के रूप में भी उनके व्यक्तित्व का एक दूसरा रूप सामने आता है। नलिनीवाला की तरह कवयित्री महादेवी वर्मा का साहित्यिक व्यक्तित्व कविता और गद्य दोनों रूपों में अभिव्यक्त हुआ है। दोनों कवयित्रियों का गद्य अद्वितीय तथा अनुपम हैं। महादेवी वर्मा की गद्य कृतियाँ हैं—**अतीत के चलचित्र** (1941 ई.), **शृंखला की कड़ियाँ** (1942 ई.) **स्मृति की रेखाएँ** (1952 ई.), **पथ के साथी** (1956 ई.), **क्षणदा** (1956 ई.), **साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध** (1962 ई.) **संकल्पिता** (1968 ई.), **स्मारिका** (1971 ई.), **मेरा परिवार** (1972 ई.) **संभाषण** (1978 ई.) आदि। उनके गद्य कृतियों में विचार की प्रौढ़ता, व्यवस्था तथा गाम्भीर्य है। उनका गद्य बाल विधवाओं, गरीब विमाताओं, विपन्न लोगों तथा पुनर्विवाहिताओं का अत्यधिक करुण चित्रों से भरा हुआ गद्य है। सामाजिक यथार्थ दृष्टि एवं सामाजिक चिंतन धाराओं से पूर्ण है उनका साहित्य। महादेवी वर्मा स्वयं स्वीकार करती हैं—**''विचारों के क्षणों में मुझे गद्य लिखना ही अच्छा लगता रहा है, क्योंकि उसमें अपनी अनुभूति ही नहीं, बाह्य परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए भी पर्याप्त अवकाश रहता है।''**[5]

संस्कृति, भाषा, साहित्य, समाज, नारी-जीवन, राष्ट्रीयता सब कुछ पर दोनों लेखिकाओं ने लेखनी चलाई है। नारी जीवन की करुण अभिव्यक्ति और उनके सर्वांगीण विकास के लिए दोनों लेखिकाओं का सुझाव इनकी रचनाओं का केन्द्रीय भाव है। दोनों ने विधवाओं तथा सामान्य नारी उपेक्षिताओं पर बहुत गहराई से चिन्तन प्रस्तुत किया है। वे दोनों सिर्फ कवयित्री ही नहीं नारी स्वतंत्रता का प्रतीक हैं। कवयित्री नलिनीवाला देवी ने अपनी लेखनी के जरिए नारी मुक्ति संघर्ष को विचारोत्तेजक धारा दी है। आधुनिक युग की नारियों को सम्बोधन करते हुए उन्होंने कहा कि वर्तमान युग की जो अभिसम्पात है, उसे दूर करके आधुनिक नारी प्राचीन भारतीय नारियों की तरह जाग्रत होना चाहिए।

''जागा देवी, जागा नारी
आना तुमि तीर्योदक
भरोवा मंगल घट
प्राणर माधुरीके जर्जरित भारतक
आकौ शोधन करा-त्यागर शाश्वत मंत्र
तपस्या तेजेरे।''

'विश्वदीप' नलिनीवाला देवी को ओजस्वी भाषा में रचित विश्व की नहीं महीयसी नारियों का जीवन कहानी सम्बलित प्रसिद्ध ग्रन्थ है। उसी तरह महादेवी वर्मा की **'शृंखला की कड़ियाँ'** शीर्षक ग्रन्थ में भी अभिशप्त नारी जीवन का ज्वलंत समस्याओं का स्वर अत्यंत तीव्र रूप से गुंजारित हुआ है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि

आज आजादी माँगने से मिलती कहाँ है। आजादी तो हम औरतों को छीनकर लेनी होगी। भारतीय नारी की सामाजिक परिस्थिति के यथार्थ को भी व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है—

''स्त्री पुरुष के वैभव की प्रदर्शनी मात्र समझी जाती है और बालक के न रहने पर जैसे उसके खिलौने निर्दिष्ट स्थानों से उठाकर फेंक दिए जाते हैं, उसी प्रकार एक पुरुष के न होने पर न स्त्री जीवन का उपयोग ही रह जाता है, न समाज या गृह में उसको कहीं निश्चित स्थान ही मिल सकता है।''[6]

नारी को उचित और प्राप्य अधिकार दिलाने के लिए वे सब प्रकार से प्रयत्नशील हैं। नारी जागरण और नारी मुक्ति के लिए वे यथेष्ट काम करती थी। उन्होंने भारतीय समाज को सचेत करते हुए कहा है—**''आदरहीन मातृत्व, अधिकार शून्य पत्नीत्व का स्वीकार भारतीय नारी का अपनी शक्तियों का बोध न होना और जिस दिन उसे अपनी शक्तियों का बोध होगा, वह वंदिनी बनाने वाली शृंखलाओं को स्वयं तोड़ फेकेगी।''**

दोनों कवयित्रियाँ स्त्री जाति के विकास के लिए लगातार प्रयत्नशील रही। दोनों कवयित्रियों ने भारतीय आदर्श तथा मर्यादा की सीमा के अन्दर नारी मुक्ति तथा नारी स्वाधीनता की आकांक्षा की थी अवश्य पर पाश्चात्य आदर्श से नहीं। महादेवी वर्मा ने तो स्पष्ट रूप में कहा भी है कि **''समता के नाम पर पश्चिम से उधार ली हुई समता की बात से मैं सहमत नहीं हूँ। समता की बात करके औरत मर्द बन जाना चाहती है, जबकि उसे मर्द नहीं, विवेकशील विचारवान औरत बनना है।''** उन दोनों की नारी सम्बन्धी विचार आज भी अत्यन्त प्रासंगिक है।

दोनों कवयित्रियों ने बच्चों के लिए भी लिखा है। सदौ असम **'मइना परिजात'** से लेकर विभिन्न शिशु अनुष्ठान से जड़ित होकर असमिया की शीर्ष कवयित्री नलिनीवाला देवी ने एक से एक सुन्दर नाटक लिखा- **'पारिजात', 'अभिषेक', 'शेषपूजा', 'प्रह्लाद'** आदि शिशु नाटक विशेष प्रसिद्ध है। उधर हिन्दी कवयित्री महादेवी वर्मा ने **'ठाकुरजी भोले हैं', 'आज खरीदेंगे हम ज्वाला'** आदि ऐसी चंचल और भोली बाल कविताएँ भी लिखी हैं। इन कविताओं में नन्हे-मुन्ने की छोटी अबोध इच्छाओं, नटखटपन आदि के चित्र हैं। एक उदाहरण देखिए—

''ठंडे पानी से नहला के
ठंडा चन्दन इन्हें लगाती,
इनका भोग हमें दे जाती
फिर भी कभी नहीं बोले हैं
माँ के ठाकुर जी भोजे हैं।''

दोनों कवयित्रियों की जीवन यात्रा एवं काव्ययात्रा में कुछ अद्‌भुत समानताएँ इस तुलनात्मक अध्ययन की प्रमुख स्थापना को पुष्ट करती है कि दोनों का साहित्यिक जीवन लगभग समान स्थितियों में विकसित हुआ है। प्रायः अस्सी वर्ष की आयु में दोनों ने एक-सी भावधारा पाई। व्यक्तिगत जीवन में इतनी समानता होने पर भी दोनों के जीवन में विषमताएँ भी हैं।

अकाल वैधव्य और निदारुण पुत्र शोक से जर्जरित नलिनीवाला देवी का जीवन तथा कविता से यह अनुमान कर सकते हैं कि तृष्णा तथा अभाव सम्बन्धी अभिज्ञता उनकी है। यही तृष्णा परम सत्ता के साथ मिलन की तृष्णा है। मृत्यु के बाद ही यही तृष्णा पूर्ण होगी यही उनका विश्वास है—

''चिन्ताग्नि होमाग्नि ह 'ब,
समीरण मलय चन्दन,
सिदिना सार्थक ह' ब
पूर्ण अर्घ्य पूर्ण इ जीवन।''

(शेष अर्घ्य)

लेकिन महादेवी वर्मा की अभाव या तृष्णा सम्बन्धी कोई अभिज्ञता नहीं है। वेदनाप्रिय कवयित्री महादेवी वर्मा ने कभी-भी दुःख पीड़ा से परित्राण माना नहीं चाहा है। इसके विपरीत दुःख-दर्द की अन्तहीन यातना को वे

अक्षय सम्बल मानकर मिलन से दूर रहना चाहती थी। शायद इसलिए वे उच्च स्वर से चिल्लाती हैं—

'मिलन का नाम मत ले।'

महादेवी वर्मा ने कहा है—

''संसार जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता हे वह मेरे पास नहीं है।''[7]

नलिनीवाला देवी की कविता में जन्मान्तरवाद, कर्मफलवाद, स्वदेश प्रेम का जो स्पष्ट अनुरक्षण सुनने को मिलता है वह महादेवी की कविता में कम गुंजरित होता है। चिरसुन्दर की पुजारिणी नलिनीवाला देवी की कविता में तुलनात्मक दृष्टि से महादेवी वर्मा से सामाजिक दिशा में अधिक प्रबल है। लेकिन ज्ञानपीठ पुरस्कार विजयिनी महादेवी वर्मा राष्ट्रभाषा हिन्दी में काव्य रचना करने के कारण शायद सर्वभारतीय पर्याय में उनकी चर्चा प्रादेशिक भाषा में काव्य लिखने वाला साहित्य अकादमी पुरस्कार विजयिनी नलिनीवाला देवी से कुछ आगे हैं।

उपसंहार—

निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि दोनों कवयित्रियों ने जीवन के घात-प्रतिघात, संघात सब साहस और संयम से ग्रहण करके अपने-अपने जीवन को महाजीवन की ओर अग्रसर किया। काव्य जगत के अलावा भारतीय महीयसी नारियों की सूची में भी दोनोां का नाम स्वर्ण अक्षर से अंकित। अपने-अपने साहित्य के क्षितिज में इन दोनों का स्थान देदीप्यमान नक्षत्र की भाँति कान्तिमान है। ये दोनों हमारे बीच-अपनी-अपनी कृतियों के माध्यम से आज भी अमर हैं। अपनी-अपनी भाषा तथा साहित्य को पुष्ट करने में दोनों महीयसी कवयित्रियों ने जो योगदान दिया है, वह सराहनीय है और असमिया तथा हिन्दी जगत आपके द्वारा कही गयी सेवा के लिए सदैव ऋणी रहेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ—

1. नलिनीवाला देवी, संपादक डॉ. हेमन्त कुमार शर्मा, प्रथम संस्करण, 1979।
2. महादेवी के काव्य के विविध आयाम-असीम मधुपुरी-प्रथम संस्करण, 1910।
3. शृंखला की कड़ियाँ-महादेवी वर्मा, प्रथम संस्करण, 1942।
4. महीयसी महादेवी-गंगा प्रसाद पाण्डेय, प्रथम संस्करण-1962।
5. पटभूमिका तुलनात्मक साहित्य-डॉ. नीरांजना महंत बेजबरुवा, प्रथम संस्करण, 2002।
6. एरि अहा दिनबोर, नलिनिवाला देवी, द्वितीय संस्करण, 1998।
7. महादेवी के काव्य सौष्ठव, डॉ. कुमार विमल, प्रथम संस्करण, 1983।
8. यामा, महादेवी वर्मा, 1940
9. सन्धियार सुर, नलिनीवाला देवी, 1928।
10. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा।

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

संवेदना का यथार्थ स्वरूप एवं प्रासंगिकता

❒ डॉ. उमाकान्त मिश्र

शोध सारांश

ईर्ष्या, द्वेष आदि विकारों से ग्रस्त मानव आज संवेदना शून्य होता जा रहा है। आज हमें किसी प्राणी के सुख-दुःख से कोई सरोकार नहीं है, मानवीय मूल्यों का हमारे लिए कोई अर्थ नहीं है। अतः संवेदना की व्याप्ति पर पुनर्विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। वस्तुतः संवेदना हृदयस्वरूप है, सुख-दुःख कातरता है, लोकव्यथा है, आत्मोत्सर्ग है, प्रणय की अनन्त वेदना है, अनपायिनी भक्ति और अनन्य प्रेम है, महाकरुणा और सम्यज्ञान है।

ईष्या, द्वेष आदि विकारों से ग्रस्त मानव आज संवेदना शून्य होता जा रहा है। आज हमें किसी जीव के सुख-दुःख से सरोकार नहीं है। मानवीय मूल्यों का हमारे लिए कोई अर्थ नहीं है। अतः संवेदना की व्याप्ति पर पुनर्विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

सम - विद् + ल्युट् = संवेदन (नपुं.)

सम् - विद् + युच-टाप् = संवेदना (स्त्रीलिङ्)

इन दोनों पदों का अर्थ है— प्रतीति, बोध, अनुभव करना, प्रकट करना आदि

'उत्तररामचरितम्' नाटक में भवभूति ने इस शब्द का प्रयोग किया है—

'दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमर्पितम्'

(अर्थात कष्ट भोगने के लिए ही राम में चेतना आई है)

यहां 'संवेदना' शब्द को हम सामान्य रूप से अनुभव करने, सहन करने या भोगने के अर्थ में ही ले लेते हैं और इतने अर्थ से ही संतुष्ट हो जाते हैं, हम इस शब्द की अर्थ गहनता, अर्थ-व्याप्ति और उसकी अभिव्यंजना पर विचार करने की चेष्टा नहीं करते। यदि गम्भीरतापूर्वक हम विचार करें तो 'संवेदनायें' शब्द राम की सम्पूर्ण व्यथा, पीड़ा, वेदना, परवशता, आश्रयहीनता और शोकसन्तप्तता आदि भावों को एक साथ ही अच्छी तरह प्रतिबिम्बित करता है। दुर्मुख का वचन सुनते ही उन्हें मूर्च्छा आ जाती है, चैतन्य चला जाता है। कितना अच्छा होता यदि वह लौटकर पुनः न आता किन्तु किसी ने राम में चैतन्य का आधान कर ही दिया। ऐसा क्यों किया? उत्तर है— ''दुःख संवेदनायैव'' (अर्थात दुःख को अच्छी तरह भोगने के लिए हीलकष्ट को पूरी तरह सहने के लिए ही।) सीता के वियोग की कल्पनामात्र से वे कांप उठते हैं, अधीर हो जाते हैं। सीता के बिना उनके जीवन की आशा समाप्त हो जाती है, संसार सारहीन हो जाता है, शरीर शुष्ककाष्ठ हो जाता है, अब उनका आश्रय नहीं रहता। वाह रे प्रजा की निष्ठुरता? अग्नि परीक्षा से बढ़कर संसार की कोई परीक्षा नहीं होती। सीता जीते जी धधकती आग में प्रवेश

* प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (संस्कृत), शा.टी.आर.एस. कालेज, रीवा (म.प्र.)

कर गई, उन्हें कुछ नहीं हुआ, उनकी परिशुद्धता को लोगों ने अपनी आंखों से प्रमाणित देखा, फिर भी उनके चरित्र के प्रति जनपद के लोगों के मन में संदेह बना रहा। सती साध्वी सीता जैसी प्राणोपमा पत्नी को राम से छीनकर संसार राम के लिए किस सुख की कामना करता है? 'संवेदना' शब्द ऐसा है जिसके प्रयोग से राम के हृदय के अनेक मनोभावों का प्रकाशन होता है। बड़ी कुशलत से भवभूति ने 'संवेदनायें' का प्रयोग किया है। 'संवेदना' के किसी अन्य पर्याय यथा—अनुभव प्रतीति, बोध आदि का प्रयोग कवि नहीं करता। इन पर्यायों में वह गहराई और व्यंजना कहां?

संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी (वी.एस. आप्टे) में संवेदना के अधोलिखित अर्थ में किये गये हैं—

1. Perception, knowledge

2. Sensation, feeling, experience, suffering

3. Giving, surrendering

'संवेदना' के लिए अंग्रेजी के दो शब्दों पर भी हम विचार कर सकते हैं—

(i) Sensibility

(ii) Sensitivity

डॉ. हरदेव बाहरी के अंग्रेजी-हिन्दी-शब्दकोश में इनके अर्थ इस प्रकार दिये हैं—

Sensibility = संवेदन शक्ति, संवेदनग्राहिता, संवेदनशीलता।

Sensitivity = सूक्ष्मग्राहिता, अतिसंवेदनशीलता।

मनोविज्ञान ने 'संवेदना' के लिए अंग्रेजी के Sensitivity शब्द को ही अपनाया है Sensibility को नहीं। Sensibility हमारे साहित्य का, भाव-जगत का शब्द हो सकता है। यद्यपि Sensibility हमारे 'संवेदना' शब्द के समान व्यापक अर्थ नहीं देता है, संवेदना के समान वह अनन्त भावों (स्थायीत्वसंचारी) को द्योतित नहीं करता तथापि 'संवेदना' के कुछ निकट अंग्रेजी का यदि कोई शब्द है तो वह Sensibility ही है। मनोविज्ञान में संवेदना को अत्यन्त सीमित अर्थों में लिया गया है। मनोविज्ञान के अनुसार बाह्यजगत की वस्तुओं तथा अपने विषय का सम्पूर्ण ज्ञान हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त करते हैं। इनके द्वारा ही हम अपने चारों ओर की वस्तुओं में दृष्टि, ध्वनि, स्पर्श, स्वाद तथा गन्ध का अनुभव करते हैं। ज्ञानेन्द्रियों से जो प्रभाव हम प्राप्त करते हैं, उसे 'संवेदना' कहते हैं।

इन्द्रियों द्वारा विषयों का या जगत का हम जो ज्ञान प्राप्त करते हैं, वह तो दर्शन की भाषा में इन्द्रियजन्य ज्ञान है, स्थूल ज्ञान है। ज्ञान-इन्द्रियाँ पाँच प्रकार की होती हैं— श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण। इन ज्ञानेन्द्रियों के विषय भी पाँच होते हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। इन्द्रियाँ सूक्ष्म होती हैं, स्थूल नहीं। यह दिखाई देने वाले श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण इन्द्रियाँ नहीं हैं, ये तो शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध को अभिव्यक्ति करने के साधन हैं। वस्तुतः सुनने की जो शक्ति है वह 'श्रोत्रेन्द्रिय' हैं—

देखने — ''चक्षुरिन्द्रिय''
स्पर्श — ''त्वगिन्द्रिय''
चखने — ''रसनेन्द्रिय''
सूंघने — ''घ्राणेन्द्रिय'' है।

इन्द्रियाँ सीधे किसी वस्तु को प्रकाशित नहीं कर सकतीं। इन्द्रिय और विषय के सन्निकर्ष से जो प्रभाव हम प्राप्त करते हैं, वह इन्द्रियजन्य संवेदना (ज्ञान) तो हैं, किन्तु जब तक आत्मा का मन के साथ, मन का इन्द्रिय के साथ और इन्द्रियों का विषय के साथ संयोग न हो, तब तक संवेदना या ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इन्द्रिय स्वयं जड़ है, इनमें प्रकाश नहीं है, वे तो किसी के प्रकाश से प्रकाशित हैं, अतः केशव मिश्र ने ठीक ही कहा है—

आत्मा मनसा संयुज्यते, मन इन्द्रियेण, इन्द्रियमर्थेन। इन्द्रियाणां वस्तुप्राप्यप्रकाश कारित्वनियमात्।[20]

(1) आत्मा का मन के साथ संयोग—न्याय वैशेषिक के मन में आत्मा विभु (व्यापक) है अर्थात परम

महत् परिमाण वाला है, मन अणु परिमाण वाला है; अतः साधारणतया सदा ही आत्मा का मन के साथ संयोग रहता है; फिर आत्मा और मन के संयोग का क्या अभिप्राय है? न्याय वैशेषिक के मतानुसार सुषुप्ति दशा में मन 'पुरीतत्' नाम की नाड़ी में प्रविष्ट हो जाता है और ज्ञान नहीं उत्पन्न हुआ करता। इससे विदित होता है कि पुरीतत् नाड़ी से अतिरिक्त प्रदेश में आत्मा और मन का संयोग होने पर ही ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है।

(2) इसके पश्चात् मन का इन्द्रिय के साथ संयोग होता है। स्वप्नावस्था में आत्मा तथा मन का संयोग होता है किन्तु मन का इन्द्रिय के साथ संयोग न होने के कारण घट आदि बाह्य विषय का प्रत्यक्ष नहीं हो पाता।

(3) तदनन्तर इन्द्रिय का अर्थ के साथ संयोग होता है। मान लीजिये, हम जाग्रतावस्था में हैं। उस समय आत्मा का मन के साथ संयोग है तथा मन का इन्द्रिय के साथ संयोग भी हो रहा है; किन्तु यदि हमारी नेत्र आदि इन्द्रिय का किसी पदार्थ के साथ सन्निकर्ष नहीं हो रहा है तो हमें उस पदार्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हुआ करता।

इन्द्रियाणां वस्तु प्राप्य प्रकाशकातित्वम्—

अर्थात इन्द्रियां वस्तु को प्राप्त करके ही प्रकाशित करती हैं। जब तक घट आदि के साथ नेत्रेन्द्रिय नहीं होता तब तक घट आदि का प्रत्यक्ष ज्ञानलप्रकाशलसंवेदन नहीं हो सकता। न्या.वै. में सभी इन्द्रियों के विषय में वस्तु प्राप्यकारित्व का नियम माना गया है। त्वक् इन्द्रिय का वस्तु के साथ सम्पर्क होने पर ही स्पर्श का ज्ञान होता है, इसी प्रकार रसना द्वारा भी सन्निकृष्ट वस्तु के रस का ही आस्वादन किया जाता है; इतना तो सभी दार्शनिक सम्प्रदाय स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार आत्मा-मन-इन्द्रिय-अर्थ इन चारों के तीन सम्बन्ध होते हैं—(1) आत्मा तथा मन, (2) मन तथा इन्द्रिय, (3) इन्द्रिय तथा अर्थ। इन तीनों सम्बन्धों के द्वारा पहले विवेकात्मक ज्ञान की उत्पत्ति होती है—

ततोऽर्थसन्निकृष्टेनेन्द्रियेण निर्विकल्पकं नामजात्यादियोजनाहीनं वस्तुमात्रावगाहि किञ्चिदिदमिति ज्ञानं जन्यते।[3]

अर्थात निर्विकल्पक वह ज्ञान है जो केवल वस्तु के स्वरूप का ग्रहण करता है। 'यह कुछ है' इस आकार में घट आदि वस्तु का स्पष्ट भास होता है, हां यह भास 'यह घट है' इस रूप में नहीं होता है। यह ज्ञान नाम, जाति आदि की योजना से रहित होता है।

प्रथमतः निर्विकल्पक ज्ञान की उत्पत्ति होती है। इसके अग्रिम क्षण में सविकल्पक ज्ञान की उत्पत्ति हो जाती है। फलतः निर्विकल्पक तथा सविकल्पक ज्ञान के मध्य में काल का व्यवधान नहीं होता।

यदा निर्विकल्पकानन्तरं सविकल्पकं नामजात्यादियोजनात्मकं डित्थोऽयं ब्राह्मणोऽयं श्यामोऽयमिति विशेषणविशेष्यावगाहि ज्ञानमुत्पद्यते[4]

अर्थात जो ज्ञान विशेषण-विशेष्य-सम्बन्ध का ग्रहण करता है, यह ज्ञान नाम, जाति आदि विशेषणों से विशिष्ट हुआ करता है।

उक्त सविकल्पकानन्तरं हानोपादानोपेक्षाबुद्धयो जायन्ते।[5]

उक्त सविकल्पक ज्ञान के पश्चात हानोपादानोपेक्षा बुद्धि उत्पन्न होती है। किसी वस्तु के त्याग का निश्चय करना हानबुद्धि है। 'उपादान' का अर्थ है वस्तु के ग्रहण का निश्चय करना। किसी वस्तु के प्रति तटस्थ भाव रखना ही 'उपेक्षा बुद्धि' है।

उदाहरणार्थ—हम नेत्रेन्द्रिय से सर्प को देखते हैं, सर्प का स्वरूप ज्ञान निर्विकल्पक ज्ञान हो जाता है। इस ज्ञान के अनन्तर 'यह सर्प है' इस प्रकार का नाम जाति आदि से विशिष्ट ज्ञान हुआ करता है, जो सविकल्पक है। तदनन्तर यह सर्प हेय है—त्यागने योग्य है, इस प्रकार की हानबुद्धि उत्पन्न होती है।

संसार की वस्तुएं या तो त्यागने योग्य हैं या ग्रहण करने योग्य या उपेक्षा के योग्य हैं अर्थात सांसारिक पदार्थों के विषय में हमारी तीन प्रकार की ही बुद्धि हो

सकती है, 'हानोपादानोपेक्षाबुद्धि'। इन तीन प्रकार की बुद्धियों की क्रिया के अन्तर्गत अनन्त प्रकार के भावों या संवेदनों का समावेश है। जैसे ही हमने जाना 'यह सर्प है' – 'डस लेगा' हम भयभीत हो गये, हम भागे या मारने दौड़े। यह सर्प त्यागने योग्य है—यह हानबुद्धि है। हृदय और बुद्धि का मार्ग कोई पृथक-पृथक मार्ग नहीं है। जहां बुद्धि है वहीं हृदय है। मोटे तौर पर हम यह कह सकते हैं कि जहां विचार या मनन बुद्धि का काम है, वहां संवेदन हृदय का काम है। बुद्धि विचारों का समुच्चय है तो हृदय भावों का। हृदय और बुद्धि का यह भेद मात्र आंशिक है, प्रकारगत नहीं। (The difference is of degree, not of kind)

शब्दों के प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि हमारा चिन्तन बुद्धि-स्तर पर चल रहा है या हृदय के धरातल पर। इसीलिए सामान्य ज्ञान विवक्षा में जहां हम त्याग बुद्धि का प्रयोग करते हैं, वहीं सामान्य भावविवक्षा में 'त्यागभावना' का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार ग्रहण बुद्धि या ग्रहणभावना। उपेक्षा बुद्धि या उपेक्षाभावना।

मनोविज्ञान के अनुसार बाह्यजगत् को वस्तुओं तथा विषयों का ज्ञानेन्द्रियों द्वारा हम जो ज्ञान प्राप्त करते हैं वह 'संवेदना' है; किन्तु साहित्य की दृष्टि से सोचें या व्यापक स्तर पर विचार करें तो 'संवेदना' एक महाभाव है, जो सहृदय-हृदय-संवेद्य है, जो अनेक स्थायी एवं संचारी भावों का स्तबक है, पुञ्ज है। मनोविज्ञान के भाव, संवेग और मनोविकार इसी में अन्तर्भूत है। इन सबके मूल में 'संवेदना' है या इसे ऐसा भी कह सकते हैं ये सब 'संवेदना' के ही विकसित या परिवर्तित रूप हैं। वस्तुतः 'संवेदना' हृदयस्वरूप है, हृदय है, सुख-दुःख कातरता है, मानवीय व्यवहार है, आत्मोत्सर्ग है, लोक-व्यथा है, प्रणय की अनन्त वेदना है, अनपायिनी भक्ति और अनन्य प्रेम है, भागवतरस का पर्याय है, मानवीय भावों का अक्षुण्य उद्गम है, महाकरुणा और सम्यज्ञान है। इस गवेषणा में संवेदना को इन्हीं व्यापक संदर्भों में समझने, समीक्षा करने और विषय को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

प्रेमी, भक्त और ज्ञानी की 'संवेदना' अनन्त होती है, वह अपनी 'संवेदना' का इतना विस्तार करता है कि अखिल ब्रह्माण्ड उसकी परिधि में आ जाता है। गोपियों को सर्वत्र उनका प्रेमास्पद ही दिखाई देता है। वह कृष्ण को एक क्षण के लिए भी भूल नहीं पातीं। प्रणय और प्रणयी के बिना इस जीवन का मूल्य ही क्या है? प्रेमी अपने प्रेम का इतना विस्तार कर लेता है कि उसका देशकाल और चेतन-अचेतन का भेद ही मिट जाता है। उसका इष्ट व्यष्टिगत न होकर समष्टिगत हो जाता है, सीमित न होकर विभु हो जाता है। यक्ष की संवेदना ऐसी ही है—'कार्माता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।'[6] सुजान घनानन्द के लिए कोई हाड़-मांस का शरीर है, वह व्यक्ति विशेष नहीं है, अपितु वह समष्टि है, विभु है, चराचर में व्याप्त है। यही संवेदना की व्याप्ति है।

इस प्रकार संवेदना वह महाभाव-दशा है जो मानव हृदय को संवेदित करती है, मानव को मानव से जोड़ती है, प्राणियों में मैत्रीभाव पैदा करती है, गुणिजन के प्रति प्रसन्नता उत्पन्न करती है, कष्टापन्न के प्रति कृपापरत्व का आधान करती है। वाणी में सत्य और संयम लाती है और मन में शुभ भावों का संचार करती है। इस संवेदना को जन-जन में गहराई से पैदा करने की आज बहुत आवश्यकता है।

सन्दर्भ सूची

1. उत्तररामचरितम् 1ल47
2. केशवमिश्र प्रणीत तर्कभाषा, पृष्ठ 3
3. तर्कभाषा, केशवमिश्र प्रणीत, पृष्ठ 3
4. तर्कभाषा, केशवमिश्र, पृष्ठ 56
5. तर्कभाषा, केशवमिश्र, पृष्ठ 57
6. मेघदूत, पूर्वमेघ, पृष्ठ 5

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

छत्तीसगढ़ राज्य में नक्सली समस्या का मूल्यांकन

❒ डॉ. बी. के. गर्ग
❒ डॉ. विनोद गर्ग

शोध सारांश

विष्व के प्राचीन राष्ट्रों में से एक भारत जितना अपनी सांस्कृतिक पहचान के लिये जाना जाता है उससे कहीं अधिक आज यह नक्सली/माओवादी/वामंपथी हिंसा और आतंक के लिये चर्चा में है। इस समस्या ने देष की आंतरिक सुरक्षा पर एक गंभीर संकट खड़ा कर दिया है।

माओवाद भारतीय राजनीति में मार्क्सवाद का नवीनतम हस्तक्षेप है। माओवाद माओ त्से तुंग द्वारा विकसित साम्यवाद का एक रूप है। माओवाद आधारभूमि बहुत ठोस है। इसकी विचारधारा मूलतः शोषण एवं भ्रष्टाचार की समाप्ति तथा आर्थिक एवं सामाजिक न्याय की स्थापना से प्रेरित है। समाज, विषेषकर बुद्धिजीवी वर्ग में माओवाद के प्रति एक अबूझ आकर्षण है।

हांलाकि वैचारिक तौर पर नक्सलवाद एक सामाजिक एवं आर्थिक समस्या है, लेकिन हिंसा के रास्ते पर चले जाने के कारण यह आंदोलन कानून–व्यवस्था की स्थिति से भी जुड़ गया है। 25 मई 1967 को पष्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले के नक्सलबाड़ी क्षेत्र से प्रारंभ हुआ यह आंदोलन आज 20 राज्यों के 223 जिलों में फैल गया है। 13 राज्यों के 90 जिलों में हिंसा की घटनाएँ लगातार हो रही हैं। यह देष का लगभग 40% भू–भाग और 45% जनसंख्या वाला क्षेत्र है।

21 सितम्बर 2004 को पीपुल्स वार ग्रुप और भारतीय माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर के आपसी समन्वय से गठित कम्युनिस्ट पार्टी आफ इण्डिया (माओवादी) संगठन सबसे महत्वपूर्ण एवं ताकतवर नक्सली संगठन के रूप में सामने आया है। यह कुल वामपंथी उग्रवादी घटनाओं के 90% से अधिक तथा परिणामी हत्याओं के 95% के लिये जिम्मेदार है। देष में गत 06 वर्षो में (2010 से 2015 तक) 2162 नागरिक और 802 सुरक्षाकर्मी एवं 597 नक्सली मारे गये हैं।

* डीन, फैकल्टी ऑफ वाणिज्य, सरगुजा विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर (छ.ग.)
** विभागाध्यक्ष, होलीक्रास वीमेन्स कालेज, अम्बिकापुर (छ.ग.)

वर्तमान में माओवादी हिंसा के संदर्भ में छत्तीसगढ़ का स्थान प्रमुख है। छत्तीसगढ़ राज्य माओवादी हिंसा का सबसे अधिक षिकार बना है।

निःसंदेह माओवादियों में अन्याय का सामना करने और न्याय के लिये संघर्ष करने की प्रेरणा और शक्ति भरी हुई है। यह विषाल आदिवासी समुदाय का शुभचिंतक और प्रवक्ता बनकर उभरा है, परन्तु हिंसा किसी सभ्य समाज में स्वीकार्य नही है, न इसके किसी तरह जायज ठहराया जा सकता है। सषस्त्र माओवाद इस लोकतंत्र का विकल्प नही हो सकता। व्यक्ति की हत्या की राजनीति द्वारा आंतकवाद, अलगाववाद एवं नक्सलवाद में अन्तर करना कठिन हो जाता है। ऐसे में उनकी देष के प्रति निष्ठा संदेहास्पद हो जाती है। दूसरी ओर सरकार को भी कानून–व्यवस्था की सोच से ऊपर उठकर इनकी मूलभूत समस्या को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। सरकार को उन लोगों को समाज और राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ने की हरसंभव कोषिष करनी चाहिये, जिसके हित में नक्सली संघर्ष करने का दावा करते हैं। सरकार को इस आत्मविष्वास के साथ इस समस्या का समाधान ढूँढना चाहिये कि यह समस्या गंभीर भले ही हो, परन्तु लाइलाज नही है।

प्रस्तावना

विष्व के प्राचीन राष्ट्रों में से एक भारत जितना अपनी सांस्कृतिक पहचान के लिये जाना जाता है उससे कहीं अधिक आज यह नक्सली/माओवादी/वामंपथी हिंसा और आतंक के लिये चर्चा में है। इस समस्या ने देष की आंतरिक सुरक्षा पर एक गंभीर संकट खड़ा कर दिया है।

भारत के संदर्भ में नक्सलवाद या माओवाद का अर्थ एक ही है। सषस्त्र संघर्ष का पहला संस्करण था नक्सलवाद, परन्तु वह पनप नही सका। माओवाद भारतीय राजनीति में मार्क्सवाद का नवीनतम हस्तक्षेप है। माओवाद माओ त्से तुंग द्वारा विकसित साम्यवाद का एक रूप है। माओवाद आधारभूमि बहुत ठोस है। इसकी विचारधारा मूलतः शोषण एवं भ्रष्टाचार की समाप्ति तथा आर्थिक एवं सामाजिक न्याय की स्थापना से प्रेरित है। यह विषाल आदिवासी समुदाय का शुभचिंतक और प्रवक्ता बनकर उभरा है। समाज, विषेषकर बुद्धिजीवी वर्ग में माओवाद के प्रति एक अबूझ आकर्षण है।

भारत में सदियो से ग्रामीण आदिवासी क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासी एवं कमजोर वर्ग के लोग अपनी पहचान स्थापित करने में असमर्थ रहे हैं। इसका मुख्य कारण उनका शोषण रहा है। आदिवासी इलाकों में षिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात के साधनों का सर्वथा अभाव रहा है, जिससे इन क्षेत्रों में निवासरत् लोग कभी भी विकास की मुख्यधारा में शामिल नही हो पाये। आदिवासी समाज, सघन वन क्षेत्र एवं खनिज संसाधनों तथा नक्सली हिंसा के मध्य गहरा रिष्ता रहा है। भारत में माओवादी गतिविधियों से प्रभावित अधिकांष राज्य वे हैं, जहॉ घने जंगल, समृद्ध खनिज एवं प्राकृतिक संसाधनों के बावजूद आर्थिक विकास की गति धीमी रही है।

हांलाकि वैचारिक तौर पर नक्सलवाद एक सामाजिक एवं आर्थिक समस्या है, लेकिन हिंसा के

रास्ते पर चले जाने के कारण यह आंदोलन कानून–व्यवस्था की स्थिति से भी जुड़ गया है। 25 मई 1967 को पष्चिम बंगाल के दार्जिलिग जिले के नक्सलबाड़ी क्षेत्र से प्रारंभ हुआ यह आंदोलन आज 20 राज्यों के 223 जिलों में फैल गया है। 13 राज्यों के 90 जिलों में हिंसा की घटनाएँ लगातार हो रही हैं।[1] यह देष का लगभग 40% भू–भाग और 45% जनसंख्या वाला क्षेत्र है।

नक्सलवाद के प्रादुर्भाव से अब तक विचारधारा और रणनीति के आपसी मतभेदों के कारण उनमें अनेक गुट बने, परन्तु 21 सितम्बर 2004 को पीपुल्स वार ग्रुप और भारतीय माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर के आपसी समन्वय से गठित कम्युनिस्ट पार्टी आफ इण्ड़िया (माओवादी) संगठन सबसे महत्वपूर्ण एवं ताकतवर नक्सली संगठन के रूप में सामने आया है। यह कुल वामपंथी उग्रवादी घटनाओं के 90% से अधिक तथा परिणामी हत्याओं के 95% के लिये जिम्मेदार है। देष में गत 06 वर्षो में (2010 से 2015 तक) 2162 नागरिक और 802 सुरक्षाकर्मी एवं 597 नक्सली मारे गये हैं।

हिंसा किसी सभ्य समाज में स्वीकार्य नही है, न इसके किसी तरह जायज ठहराया जा सकता है। सषस्त्र माओवाद इस लोकतंत्र का विकल्प नही हो सकता। सभ्य समाज की यह नैतिक जिम्मेदारी होती है कि वह उन कारकों का अध्ययन, मनन, चिंतन, विष्लेषण करे, जिनसे यह हिंसा पनपती है। माओवादियों की अनेक ऐसी गतिविधियॉ भी रहीं हैं जिनका औचित्य सिद्ध करना कठिन कार्य है। माओवाद आदिवासियों की बेहतरी के लिये संघर्ष कर रहा है या अपने राजनीतिक लक्ष्यों के लिये उनका उपयोग कर रहा है? इस विषय पर गंभीर बहस जारी है।

प्रस्तुत शोधपत्र ''**छत्तीसगढ़ राज्य में नक्सली समस्या का मूल्याकंन**'' छत्तीसगढ़ के राज्य में नक्सली समस्या का अध्ययन का एक सूक्ष्म एवं गंभीर प्रयास है।

सारणी क्रमांक – 1. वामपंथ उग्रवादी हिंसा का तुलनात्मक विवरण (वर्ष 2010 से 2015 तक)

क्र.	पैरामीटर	2010	2011	2012	2013	2014	2015
1	घटनाओं की संख्या	2213	1760	1415	1136	1091	1088
2	मारे गये नागरिक (इनमें से मारे गये पुलिस मुखबिर)	720 (323)	469 (218)	301 (134)	282 (113)	222 (91)	168 (92)
3	मारे गये सुरक्षा बल कर्मिकों की संख्या	285	142	114	115	88	58
4	पुलिस के साथ मुठभेड़ों की संख्या	272	223	216	218	221	247
5	पुलिस पर हमलों की संख्या (बारूदी सुरंगों सहित)	230	131	135	143	155	118
6	मारे गये नक्सलवादियों की संख्या (मुठभेड़ों व पुलिस पर हमलों के दौरान)	172	99	74	100	63	89
7	गिरफ्तार किये गये वामपंथी उग्रवादी काडरों की संख्या	2916	2030	1901	1397	1696	1668
8	आत्मसमर्पण करने वाले वामपंथी उग्रवादी काडरों की संख्या	266	394	445	282	676	570
9	छीने गये शस्त्रों की कुल संख्या	256	67	55	89	58	18
10	बरामद किये गये शस्त्रों की कुल संख्या	642	636	591	628	548	725

छत्तीसगढ़ राज्य एवं नक्सली समस्या

वर्तमान में माओवादी हिंसा के संदर्भ में छत्तीसगढ़ का स्थान प्रमुख है। छत्तीसगढ़ राज्य माओवादी हिंसा का सबसे अधिक षिकार बना है। भारत के 26वें राज्य छत्तीसगढ़ की स्थापना 1 नवम्बर 2000 को हुई। छत्तीसगढ़ राज्य का क्षेत्रफल 135191 वर्ग किमी. है। छत्तीसगढ़ 7 राज्यों उड़ीसा, झारखण्ड, आंध्रप्रदेष, तेलगांना, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेष एवं उत्तरप्रदेष से घिरा हुआ है। ये सभी राज्य कमोवेष नक्सल प्रभावित हैं।

छत्तीसगढ़ राज्य नक्सलियों के 'दण्डकारण्य स्पेषल जोनल कमेटी' अंतर्गत आता है। छत्तीसगढ़ राज्य में नक्सलियों का आगमन एकाएक नही हुआ है। 1967 के बाद जब आंध्रप्रदेष में नक्सलवादियों पर दबाव बढ़ा तो वे दक्षिण बस्तर के इलाकों में आने लगे। वर्ष 1969 में पहली बार नक्सलियों के समर्थन में कोटा में एक जुलूस निकाला गया, जिसका नेतृत्व आंध्रप्रदेष का मोहम्मद रईस कर रहा था। वर्ष 1970–75 के मध्य छिटपुट नक्सली घटनाओं की जानकारी मिलती है। आपातकाल के बाद मध्यप्रदेष में जनता सरकार के दौरान कोंटा एवं बीजापुर में हिंसा की घटनाएँ हुई। 1980 के आसपास पीपुल्स वार ग्रुप जो सीमावर्ती आंध्रप्रदेष में सक्रिय था, ने छत्तीसगढ़ के दक्षिण बस्तर के गंगालूर, आवापल्ली, उसूर, कोटरू, भद्रकाली, भोपालपट्टनम में अपना संगठन खड़ा करना प्रारंभ किया। गांवों में अपने संगठन को विस्तार देने के लिये माओवादियों ने संघम की स्थापना पर बल दिया। सन् 1980–84 के मध्य बस्तर से नक्सली भूमिगत हो गये। 1985 के आसपास विषेष सषस्त्र बल की 30 बटालियन के साथ पंखाजूर में मुठभेड़ के दौरान नक्सली कमांड़र गणपति मारा गया। उसकी पत्नी सुषीला ने दलम् के कुछ लोगों के साथ मिलकर नक्सल अभियान को बढ़ाने का प्रयास किया, परन्तु वह नाकाम रही। उसने महाराष्ट्र के गढ़चिरौली में आत्मसमर्पण कर दिया। सन् 1986 में रामन्ना को ग्रेनेड फेकते हुये गिरफ्तार किया गया। अगस्त 1986 में पुलिस को बीजापुर में 2 नक्सलियों को पकड़ने में सफलता मिलीं। उन्हीं दिनों कोटा के पेंटापार गॉव में नक्सली मुखिया राजेन्द्र उर्फ राजन्ना पकड़ा गया।

आंध्रप्रदेष और महाराष्ट्र के गढ़चिरौली एवं चांदा जिले से नक्सली बीजापुर और भोपालपट्टनम आते–जाते रहते थे। इनके अलावा अन्य नक्सली बालन्ना, विरन्ना और रागन्ना दलम् के नेता थे। सन् 1988 के बाद धीरे–धीरे नक्सलियों ने गॉवों में जाकर गरीब आदिवासियों को सरकार के खिलाफ आवाज उठाने के लिये तैयार करना शुरू किया। सरकार के विरूद्ध विस्फोटक घटनाओं का प्रारंभ 1990 में से हुआ। तात्कालीन नवनिर्वाचित सरकार के उदासीन रवैये से कोंटा, बीजापुर एवं दंतेवाड़ा में आदिवासी नेताओं के जन आंदोलन को ठेस पहुॅची। उसी दौरान नक्सली आदिवासी नेताओं को मारने लगे। यहीं से पुलिस पर आक्रमण भी शुरू हुआ। नक्सलियों ने ठेकेदारों, पुलिस थानों और ग्राम पंचायत स्तर के नेताओं से चंदा उगाही शुरू कर दी। वर्ष 1993 तक नक्सली बीजापुर, दंतेवाड़ा, भोपालपट्टनम और कोंटा से अबूझमाड़ के अंदर तक पहुॅच चुके थे। अबूझमाड़ वह जगह है, जिसे नक्सलियों का हेडक्वार्टर माना जाता है।[3] नक्सलियों द्वारा पहला बारूदी सुरंग विस्फोट 1997 में फरसगॉव थाना क्षेत्र के बंगोली में किया गया। इस विस्फोट में पुलिस के 5 जवान सहित 8 नागरिक मारे गये थे।[4]

वर्ष 2000 तक छत्तीसगढ़ भारत के सबसे पिछड़े राज्यों में से एक मध्यप्रदेष का एक दुर्गम और अविकसित हिस्सा था। छत्तीसगढ़ के अंदर बस्तर का पुरानी रियासत का इलाका और उसमें

भी दंतेवाड़ा सबसे पिछड़ा जिला था। पीपुल्स वार ग्रुप और एम.सी.सी. के कार्यकर्ताओं ने विलय से पूर्व आंध्रप्रदेष, बिहार और झारखण्ड में दबाव पड़ने पर इन्हीं दंतेवाड़ा–अबूझमाड़ के जंगलों में शरण ली थी। यह उनका पहला स्वतंत्र क्रांतिकारी जोन और सुरक्षित गढ़ था, जहॉ से उन्होंने अपना विस्तार किया।[5]

नवम्बर 2000 को जब पृथक छत्तीसगढ़ राज्य का निर्माण हुआ, बस्तर संभाग नक्सलियों के प्रभाव वाला इलाका बन गया। इसमें राजनांदगांव जिले के मानपुर और मोहल्ला इलाका भी नक्सलियों की गिरफ्त में आ गये। जहां वे दो दषक से भी ज्यादा समय से अपनी गतिविधियॉ जारी रखे हुये हैं।[6] वर्ष 2004 में जब कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्ड़िया (माओवादी) की स्थापना हुई तो छत्तीसगढ़ राज्य को 'दण्ड़कारण्य स्पेषल जोनल कमेटी' अंतर्गत रखा गया। इस जोनल कमेटी का विस्तार छत्तीसगढ़ के बस्तर, कांकेर एवं दंतेवाड़ा, महाराष्ट्र के चंद्रपुर, गढ़चिरौली एवं भण्डारा, मध्यप्रदेष के बालाघाट एवं आंध्रप्रदेष के उत्तरी भाग तक है।

वर्ष 2012 की स्थिति में छत्तीसगढ़ के कुल 19 जिले नक्सल प्रभावित हैं। छत्तीसगढ़ राज्य में गत 11 वर्षों में (2005 से 11 सितम्बर 2016 तक) नक्सली वारदातों में कुल 2468 लोग मारे जा चुके हैं, जिनमें 732 नागरिक, 896 सुरक्षाकर्मी एवं 840 नक्सली हैं। (सारणी क्रमांक 2.)

सारणी क्रमांक – 2
छत्तीसगढ़ राज्य में वामपंथ उग्रवाद[7]
(2005 से 11 सितम्बर 2016 तक)

वर्ष	मृत नागरिक	मृत सुरक्षाकर्मी	मृत नक्सली	योग
2005	52	48	26	126
2006	189	55	117	361
2007	95	182	73	350
2008	35	67	66	168
2009	87	121	137	345
2010	72	153	102	327
2011	39	67	70	176
2012	26	36	46	108
2013	48	45	35	128
2014	25	55	33	113
2015	34	41	45	120
2016	30	26	90	146
योग	**732**	**896**	**840**	**2468**

छत्तीसगढ़ राज्य में नक्सली समस्या के कारण

- छत्तीसगढ़ में व्याप्त भष्ट्राचार,
- अषिक्षा, गरीबी एवं बेरोजगारी
- आदिवासियों की समस्याओं के प्रति असंवेदनषील प्रषासन
- शासन की योजनाओं के लाभ से वंचित आदिवासी
- जल, जंगल, जमीन पर अधिकार संबंधी समीक्षाओं और निर्णयों में विलंब
- विस्थापितों के पुनर्वास के प्रति उपेक्षा
- विकास के नाम पर उर्वरा कृषि भूमि उद्योगपतियों को कौड़ियों के भाव सौंप देना
- अधिग्रहित भूमि का ठीक से मुआवजा न दिया जाना और भूमिपुत्र का भूमिहीन होकर बेरोजगार बनकर दर–दर भटकना।

नक्सली समस्या के समाधान हेतु सुझाव

1. नक्सलवाद के बढ़ने के कारणों को समझकर नीति बनायी जानी चाहिये। इस संदर्भ में इसकी तह में जाने की भी आवष्यकता है कि राज्य बनने के बाद विषेषकर छत्तीसगढ़ में ही नक्सलवाद इतना व्यापक क्यों हो रहा है?

2. नक्सली समस्या केवल कानूनी समस्या नही है, इसे केवल हथियारों से नहीं निपटा जा सकता। यह एक सामाजिक समस्या है। आदिवासियों को विकास के माध्यम से की मुख्यधारा में लाया जाना चाहिये।

3. सरकार को जमीन और जंगल से संबंधित उन मुख्य मुद्दों की पूर्ण जानकारी होनी चाहिये, जो नक्सली आंदोलन को प्रोत्साहित करती हैं।

4. नक्सलवाद से निपटने के लिये पिछड़े क्षेत्रों का विकास, बेरोजगारी दूर करना तथा भूमि सुधार अति आवष्यक है।

5. '**विकास**' शब्द को समझना आवष्यक है। विकास का आषय बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा दी गयी विकास की परिभाषा के अनुसार नही होनी चाहिये, बल्कि विकास का आषय ऐसे दृष्टिकोण से होना चाहिये जो लोगों के जीवन स्तर और विकास के अवसरो में वृद्धि कर सके।

6. नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में अच्छे सुषासन की आवष्यकता है जिसके लिये सरकारी नीतियों एवं योजनाओं का समुचित कार्यान्वयन होना चाहिये।

7. खनिज उत्खनन के माध्यम से प्राप्त राजस्व को वापस उन्ही क्षेत्रों के विकासात्मक गतिविधियों में लगाया जाना चाहिये।

8. वन कानून में संषोधन करते हुये भूमि का पुनः वितरण किया जाना चाहिये।

9. नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में रोजगार के नये अवसरों में वृद्धि की जानी चाहिये।

10. नक्सलियों से लड़ते समय जनजातीय जीवन और संस्कृति को खण्ड़ित होने से बचाने के लिये सावधानी बरतना और संवेदनषीलता से काम लेना चाहिये।

11. जनजातियों के बीच जागरूकता अभियान भी चलाया जाना चाहिये।

12. अस्थायी राहत षिविरों को समाप्त करना, उनमें रहने वाले ग्रामीणों उनके मूल गॉव में वापस पहॅुचाना और उन्हें पूर्ण सुरक्षा प्रदान करना।

13. सलवा जुडुम के कारण विस्थापित हुये लोगों के संबंध में उनके विस्थापन की व्यवस्था करना।

14. 'ग्रे–हाउस' एवं 'कोबरा' जैसे नामों से लोगों में भ्रम उत्पन्न होता है और इनसे लोगों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

15. लोगों को न्याय उपलब्ध कराया जाना चाहिये और उनके अधिकारों की रक्षा की जानी चाहिये।

16. सरकार को मध्यस्थता के लिये गृह मंत्रालय से कहना चाहिये कि वे जेल में बंद माओवादी नेताओं से बात करें। राज्य में भी ऐसे विषेषज्ञों की समिति बनायी जानी चाहिये जो इस समस्या का हल निकाल सकते हों।

निष्कर्ष

निःसंदेह माओवादियों में अन्याय का सामना करने और न्याय के लिये संघर्ष करने की प्रेरणा और शक्ति भरी हुई है। यह विषाल आदिवासी समुदाय का शुभचिंतक और प्रवक्ता बनकर उभरा है। नक्सली आंदोलन के कारण हाषिए पर जा चुके आदिवासी, शोषित वर्ग, मजदूर, निम्न एवं मध्यम वर्ग के किसान अपने अधिकारों के प्रति जागरूक एवं सचेत हुये हैं। इस आंदोलन ने ग्रामीण एवं वनांचलों में प्राथमिकता से विकास किये जाने की आवष्यकता प्रतिपादित की है, परन्तु वर्तमान का नक्सलवाद आंदोलन अपने मूलभूत सिद्धान्त, उद्देष्य और कार्यप्रणाली से हट चुका है और हिंसक कृत्यों से देष में अषांति, असुरक्षा तथा विकास में बाधा पहुॅचाने लगा है। आदिवासियों एवं दलितों के अधिकारों के संरक्षण के मुद्दे अब गौण होते जा रहे हैं। समाज के बहुसंख्यक वर्ग की सहानुभूति एवं समर्थन हासिल करने में यह आंदोलन असफल रहा।

नक्सली गुटों का साध्य तो उचित है, लेकिन उसके लिये उन्होंने जो साधन चुने हैं, उन्हें किसी भी प्रकार से न्यायसंगत नही ठहराया जा सकता। इतिहास गवाह है कि हिंसा के बल पर हासिल की गयी सत्ता या कोई भी व्यवस्था ज्यादा दिन तक नही चल पाती और अंततः विखण्डित हो जाती है। वास्तव में नक्सलियों की हिंसा के षिकार मुख्यतः वही आम व्यक्ति होते हैं जिनके लिये वे कुछ हासिल करना चाहते हैं। इस प्रकार वे अपने सिद्धान्त की स्वयं ही अवहेलना कर रहे हैं। अलगाववादी भी हिंसा फैलाकर लोगों को आंतकित करते हैं और नक्सली भी। व्यक्ति की हत्या की राजनीति द्वारा आंतकवाद, अलगाववाद एवं नक्सलवाद में अन्तर करना कठिन हो जाता है। ऐसे में उनकी देष के प्रति निष्ठा संदेहास्पद हो जाती है।

दूसरी ओर सरकार को भी कानून–व्यवस्था की सोच से ऊपर उठकर इनकी मूलभूत समस्या को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। सरकार को उन लोगों को समाज और राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ने की हरसंभव कोषिष करनी चाहिये, जिसके हित में नक्सली संघर्ष करने का दावा करते हैं। सरकार को इस आत्मविष्वास के साथ इस समस्या का समाधान ढूॅढना चाहिये कि यह समस्या गंभीर भले ही हो, परन्तु लाइलाज नही है। नक्सलवाद के प्रणेता चारू मजूमदार का यह दावा कि – ''**जब तक असमानता की खाई विद्यमान रहेगी, नक्सलबाड़ी देष में जिन्दा रहेगा**'' से असहमत हुआ जा सकता है लेकिन क्या उसे खारिज किया जा सकता है? शायद नहीं।

संदर्भ सूची

1. आदिवासी सत्ता, दिसम्बर–जनवरी 2011, पृष्ठ 13.
2. www.mha.com
3. लोकायत, 16–31 मई, 2010, पृष्ठ 10.
4. शोध प्रकल्प, अंक 52, वर्ष 15, जुलाई– सितम्बर 2010, पृष्ठ 83.
5. श्रीवास्तव, मनोज – नक्सलवाद : कारण, समस्या एवं समाधान, 2011, शक्ति पब्लिषर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली.
6. लोकायत, 1–15 मई, 2010, पृष्ठ 10.
7. www.satp.com

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

बघेलखण्ड में पत्रकारिता का प्रादुर्भाव एवं जनजागरण में उसका योगदान

❐ डॉ. विभा श्रीवास्तव

शोध सारांश

बघेलखण्ड में प्रकाशित पत्र–पत्रिकाओं ने जनता को जागृत कर स्वतंत्रता के लिए एक सशक्त जनमत तैयार करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। शिक्षा के प्रसार तथा यातायात के साधनों के विकास ने पत्र–पत्रिकाओं के प्रसार को आसान बनाया। बघेलखण्ड की जनता को जागृति के लिए जिस वैचारिक परिवर्तन की आवश्यकता थी, उसे पत्र–पत्रिकाओं ने पूरा किया। जिसके फलस्वरूप बघेलखण्ड की जनता स्वाधीनता आंदोलन की राष्ट्रीय धारा से जुड़ सकी।

उत्तर गदर कालीन बघेलखण्ड में आधुनिक शैली की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना के बाद पत्रकारिता का प्रादुर्भाव हुआ। इस समय बघेलखण्ड में तीन प्रिटिंग प्रेस भी खोले गये– दरबार प्रेस रीवा, जगदीश प्रेस सतना तथा माया प्रेस सतना।

बघेलखण्ड में निम्नांकित समाचार पत्र–पत्रिकाओं का प्रादुर्भाव हुआ–

भारत भ्राता– भारत भ्राता बघेलखण्ड का प्रथम समाचार पत्र था। देवराज नगर के ठाकुर बलवंत सिंह ने रीवा में भारत भ्राता प्रेस की स्थापना की। इस पत्र का प्रकाशन 1 अप्रैल 1887 से प्रारंभ हुआ। ठाकुर बलवंत सिंह ने कलकत्ता विष्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। अध्ययन के दौरान वे वहॉ की पत्रकारिता से काफी प्रभावित हुए। अतः अध्ययन के बाद बलवंत सिंह ने कलकत्ता से एक छोटा सा प्रेस लाकर रीवा में स्थापित किया और इसी प्रेस से भारत भ्राता का पाक्षिक पत्र प्रकाशित करना शुरू किया। कुछ समय बाद इस पत्र का प्रकाशन साप्ताहिक हो गया। राज दरबार के सभी आदेश पत्र एवं सूचनाऍ भी भारत–भ्राता से प्रकाशित होती थी। सन् 1902 में महाराजा व्यंकट रमण ने इस प्रेस को खरीद लिया और तभी से इसका प्रकाशन भी बंद हो गया।

शुभ चिन्तक– भारत भ्राता के बंद होने के बाद बघेलखण्ड 8 वर्षों तक पत्रकारिता के लाभों से वंचित रहा। 1910 ई0 में मधुकर प्रसाद पाण्डेय ने शुभ–चिन्तक नामक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया, लेकिन इस पत्र की कोई भी प्रति तथा प्रमाणित जानकारी प्राप्त न होने के कारण स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि इस पत्र में

* प्रो. एवं विभागाध्यक्ष इतिहास, शा. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

किन विषयों से संबंधित सामग्री प्रकाशित होती थी। 1918 ई. के बाद इसका भी प्रकाशन बंद हो गया।

रीवा राज्य गजट– सन् 1929 ई. से रीवा दरबार द्वारा रीवा राज्य गजट का प्रकाशन प्रारंभ किया गया। इसका प्रकाशन पाक्षिक था। इसमें केवल राज दरबार के आदेश तथा सूचनाएँ प्रकाशित होती थी। आम जनता से इसका वार्षिक मूल्य 5 रू. लिया जाता था।

प्रकाश– सन् 1932 में विजयादशमी के पर्व पर **महाराजा गुलाब सिंह** द्वारा हिन्दी का साप्ताहिक पत्र **'प्रकाश'** निकालने का प्रबंध किया गया। इसके प्रथम संपादक उत्तर प्रदेश के नरसिंहराम शुक्ल थे। यह पत्र प्रति रविवार को दरबार प्रेस से प्रकाशित होता था। इस पत्र में प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय घटनाओं के अतिरिक्त साहित्यिक और ऐतिहासिक विषयों पर सामग्री प्रकाशित होती थी। प्रति वर्ष इसका वार्षिकांक प्रकाशित होता था, जिसका मूल्य 3 रूपये था। वार्षिकांक में प्रत्येक क्षेत्र की महत्वपूर्ण सामग्रियों का समावेश होता था। तत्कालीन बघेलखण्ड में **'प्रकाश'** सर्वाधिक लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण समाचार पत्र था।

बांधव– 1942 ई0 में विजयादशमी के दिन से रघुराज साहित्य परिषद् द्वारा बांधव नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया गया। सर्वप्रथम इस पत्र के संपादन का कार्य सूर्यबली सिंह ने किया तथा प्रकाशन का संपूर्ण व्यय कर्नल बलवंत सिंह द्वारा वहन किया जाता था। इस पत्रिका में साहित्यिक, ऐतिहासिक तथा राजनैतिक महत्व की सामग्री का प्रकाशन होता था। इसका वार्षिक मूल्य 5 रूपये था। 1944 ई. में इसका प्रकाशन बंद हो गया।

भाष्कर– सन् 1946 ई0 में विजयादशमी के दिन से पं0 शम्भूनाथ शुक्ल द्वारा 'भाष्कर' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया गया। यह पत्र पहले सतना से प्रकाशित होता था। लेकिन कुछ समय बाद ही इसका कार्यालय स्थानांतरित कर रीवा में बनाया गया। इसका स्वयं का छोटा सा प्रेस था। इस पत्र का संचालन देवी प्रसाद द्वारा किया जाता था और इसके संपादन का कार्य क्रमशः लाल यादवेन्द्र सिंह (1946–1947 ई.) तथा जगदीश चन्द्र जोशी (1947–48 ई.) द्वारा किया गया।

रीवा इन्फारमेशन– जनवरी 1947 ई0 से 'रीवा इन्फारमेशन' नामक अंग्रेजी पत्रिका का प्रकाशन रीवा के राजकीय इन्फारमेशन विभाग द्वारा किया गया। इस पत्र का संचालन गंगा प्रसाद ने किया। संपादन का कार्य शासकीय इन्फारमेशन विभाग का सचिव करता था। यह एक तिमाही पत्रिका थी, जिसमें सरकारी आदेश, सूचनाएँ तथा कुछ आवश्यक लेख प्रकाशित होते थे। यह राज्य के सहकारी विभागों को निःशुल्क उपलब्ध कराई जाती थी।

मानस मणि– ''मानस–मणि'' के प्रकाशन में शारदा प्रसाद (रामवन, सतना) की महत्वपूर्ण भूमिका थी। यह मासिक पत्रिका थी। इसका स्वयं का प्रेस नहीं था, इसलिये इसका प्रकाशन अयोध्या (उत्तर प्रदेश) से होता था। इसका सम्पादक भी अयोध्या का था। कुछ समय बाद इस पत्रिका का प्रकाशन सतना प्रेस से होने लगा। यह एक धार्मिक पत्रिका थी।

बांधव–बन्धु– 1947 ई. में प्रद्युम्न सिंह द्वारा 'बांधव–बन्धु' पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया गया। इसका स्वयं का प्रेस न होने के कारण प्रयाग से प्रकाशित होती थी। 'बांधव–बन्धु' मुख्यतः पवाईदारों व इलाकेदारों की पत्रिका थी। इसमें उन्हीं से संबंधित महत्वपूर्ण विषय–वस्तुओं का प्रकाशन होता था, लेकिन यह पत्रिका कुछ अंक प्रकाशित कर शीघ्र ही बंद हो गई।

जन–जागरण में योगदान–

1887 ई0 से 'भारत–भ्राता' के प्रकाशन के साथ ही बघेलखण्ड में जन–जागृति के क्षेत्र में पत्र–पत्रिकाओं की भूमिका प्रारंभ होती है। तत्कालीन बघेलखण्ड की जनता पिछड़ी और अशिक्षित थी। वह स्वदेशी तथा विदेशी शासन में कोई अंतर भी नहीं समझती थी। उसके लिये राजा और दरबार ही उसका सब कुछ था। इन परिस्थितियों में इस क्षेत्र में पत्र–पत्रिकाओं द्वारा जनता को जागृति करना एक चुनौती पूर्ण कार्य था, जिसे सर्वप्रथम 'भारत–भ्राता' ने स्वीकार किया। उसने 1857 के महान् विद्रोह की असफलता के बाद वैचारिक क्रान्ति की आवश्यकता महसूस की और जन–जागृति का सिलसिला शुरू किया। वह ब्रिटिश सरकार की नीतियों का विरोध करते हुए लिखता है– ''क्या हम लोग अपने देश को, अपने घर द्वार को, अपने बाल–बच्चों को धूल में मिलते देखना पसंद करते हैं? क्या हम लोग अपने देश की रक्षा कर यश और नामबारी प्राप्त नहीं करना चाहते? परंतु हमारी सरकार हमारा विष्वास नहीं करती।''

उपर्युक्त लेख द्वारा 'भारत–भ्राता' ने जनता को स्पष्ट रूप से यह बताया कि ब्रिटिश सरकार कभी भारतीयों का शुभ चिंतक नहीं बन सकती। हमारी दुर्दशा का कारण विदेशी शासन है। जब सरकार द्वारा न्यायालय में आवेदन पत्र देने के लिए अर्जी–नवीस से आवेदन पत्र लिखवाना तथा उसमें स्टाम्प टिकिट लगवाना अनिवार्य कर दिया गया तब उसके विरोध में, 'भारत–भ्राता' ने लिखा– ''स्टाम्प टिकिट लगाकर अर्जी देने की जो आज्ञा हुई है, उसमें निष्चय ही प्रजा को बड़ी भारी हानि पहुॅच रही है। बहुधा ऐसे लोग हैं, जिन्हें अवसर पर एक पैसा मिलना बहुत ही कठिन है। इसके बावजूद भी यहॉ की सरकार ने यह आज्ञा दी है कि जो अर्जी नवीसों से अपनी अर्जी लिखवाकर न्यायालय में नहीं देगें, उनकी अर्जी नहीं ली जायेगी। विचाराधीन बात है कि दीन मनुश्य अर्जी की लिखवाई फिर उसमें स्टाम्प का खर्च कैसे दे सकता है। इसका तात्पर्य उनका मुॅह बन्द करना है, जो वास्तव में उसके ऊपर अत्याचार करता है। शीघ्र ही सरकार को यह आज्ञा उठा लेनी चाहिए।''

'भारत–भ्राता' का प्रकाशन बंद होने के बाद 30 वर्शों तक जन–जागृति के क्षेत्र में पत्रकारिता के योगदान से बघेलखण्ड वंचित रहा। सन् 1910 से 1918 के बीच 'शुभचिंतक' पत्र प्रकाशित होता था, लेकिन इस क्षेत्र में उसकी कोई भूमिका दिखलाई नहीं पड़ी।

सन् 1932 से प्रकाशित पत्र 'प्रकाश' राजदरबार के अधीन था, लेकिन राज दरबार द्वारा राजनैतिक क्षेत्र में प्रकाश की गतिविधियों पर अंकुश नहीं लगाया गया, फलतः यह पत्र अपने प्रकाशन के वर्ष से ही बड़ी तेजी से ब्रिटिश सरकार की नीतियों के विरूद्ध जनमत तैयार करने में तत्पर रहा।

'प्रकाश' ने सर्वप्रथम सामाजिक समानता की स्थापना पर बल दिया, ताकि सभी वर्गों को समान रूप से जागृत करने का आधार निर्मित हो सके। उसने लिखा– ''हिन्दुओं के ऊपर यह जिम्मेदारी है कि वे अपने दलित भाइयों और बहनों को गले लगावें, अपने मन्दिरों में उन्हें निमंत्रित करें, अपने घरों एवं स्कूलों में उन्हें स्थान दें ताकि गांव में रहने वाले अछूत यह समझ जायें कि उनकी सामाजिक बेड़ियॉ कट गयीं।''

'प्रकाश'' बघेलखण्ड की जनता में राष्ट्रीयता और देश प्रेम की भावना भर देना चाहता है। उसने सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930–1934 ई.) के समर्थन में लिखा– ''स्वदेशी की महानता शब्दों में नहीं समझाई जा सकती। हम अपने शरीर पर, अपने कमरे में और अपने पास विदेशी तिनका रखते हैं, जबकि हमें उसके स्थान पर देशी तिनका

आसानी के साथ रखना चाहिए। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हम उस तिनके के बराबर अपना खून स्वयं चूस रहे हैं। अपने भाई के सामने की थाली दूसरों को दे रहे हैं।''

शिक्षा जनजागरण का आवश्यक तत्व है। इसीलिये 'प्रकाश' समाज के समस्त वर्ग को शिक्षित करने पर जोर देता है। उसने महिला–शिक्षा को प्रोत्साहित करने हेतु लिखा– ''जब तक महिलाएँ अशिक्षित एवं पुरानी रूढ़ियों से जकड़ी रहेंगी, तब तक न तो समाज की उन्नति संभव है, न देश की। हमारा देश केवल महिलाओं की संस्कृति के प्रभाव से संसार का गुरू रहा है, आज भी वह केवल महिलाओं में साहस और सुशिक्षा का अभाव होने के कारण गुलामी में जकड़ा हुआ है। जब महिलाएँ अपनी उन्नति में पड़ने वाले विघ्नों को अपने साहस से चकनाचूर करके आगे कदम बढ़ायेंगी, तब देश की गुलामी दूर होगी और तभी संसार में भारत के विजय का डंका बजेगा।'' 'प्रकाश' के इस आह्वान का प्रभाव बघेलखण्ड की महिला वर्ग पर काफी पड़ा। इसीलिए चंपा देवी और कृष्णा कुमारी जैसी महिलाएँ बघेलखण्ड में 'भारत छोड़ो आंदोलन' में काफी आगे आयीं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हीरालाल शुक्ल, ब.सं.भा., पृ. 12।
2. सत्येन्द्रशरण गोरगी की वास्तु एवं मूर्तिकला, पृ. 16
3. रा.लो. अग्निहोत्री, ब.स.का., पृ. 9
4. हीरालाल शुक्ल, ब.सं.भा., पृ. 11
5. वही, पृ. 13
6. विजयदत्त श्रीधर, मध्यप्रदेश में पत्रकारिता का इतिहास, पृ. 01.
7. डॉ. कैलाश नारद, मध्यप्रदेश में हिन्दी पत्रकारिता : एक शताब्दी, पृ. 48–57.
8. विजयदत्त श्रीधर, मध्यप्रदेश में पत्रकारिता का इतिहास, पृ. 100.
9. विजयदत्त श्रीधर, मध्यप्रदेश में पत्रकारिता का इतिहास, पृ. 101–102.
10. डॉ. वेदप्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम 1976, पृ. 20.
11. सिंह, विक्रम : बघेलखण्ड का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद 2002.
12. जड़िया मालती : रीवा जिला में स्वतंत्रता आंदोलन, अ0प्र0सिंह वि0वि0 रीवा 1999.
13. राधेशरण : विन्ध्य क्षेत्र का इतिहास, म0प्र0हि0ग्र0अका0 2001
14. व्यास, डॉ. हंसा,: मध्य प्रदेश में स्वतंत्रता संग्राम, म0प्र0हि0ग्र0अका0, 2011 पाण्डेय, सुधा : बघेलखण्ड में स्वाधीनता आंदोलन, अ0प्र0सिंह वि0वि0 रीवा 2008.

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

मध्यप्रदेश में घटता लिंगानुपात प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन

❒ डॉ. एम.एल. तिवारी*
❒ सीमा दुबे**

शोध सारांश

1981 से भारतीय जनगणनाओं में 0–6 की आयु समूह की जनसंख्या के आंकड़े लिंग के आधार पर भी उपलब्ध कराती रही है। यह साक्षरता दर की सूचना के सह– उत्पाद के रूप में एकत्रित की जाती रही है। साक्षरता दर की गणना 7.1 की आयु से की जाती है। 0–6 आयु समूह के बच्चों की गणना में लिंगानुपात की गणना दी जाती है। आमतौर पर आयु संबंधी आंकड़े पाँच वर्ष की आयु समूह के एकत्रित किए जाते हैं इसलिए अधिकांश जनसंख्याओं में बच्चों संबंधी आंकड़े 0.4 के आयु समूह के मिलते हैं, 0.6 आयु वर्ग के नहीं। जनगणना आयुक्त कार्यालय ने 0.6 आयु वर्ग के बच्चों के लिंगानुपात की गणना के साथ–साथ 1961 तथा 1971 से लेकर 50 वर्षों की प्रवृत्ति को भी विवेचना की है।

बाल लिंगानुपात में 1961 से ही क्रमिक रूप से गिरावट दर्ज की जा रही है। 1961 में जहाँ 1000 बालकों के पीछे 976 बालिकाएँ थीं वहीं उनके अनुपात में और कमी आते हुए 2001 तक 927 तथा 2011 में तो 914 लड़कियाँ ही प्रति 1000 बालकों में रह गई। इस स्थिति में वे पूरे विश्व का ध्यान आकर्षित किया है और इसके पीछे जो कारण मुख्य रूप से बताया जा रहा है भ्रूण लिंग परीक्षण की बढ़ती प्रवृत्ति और बालिका भ्रूणों का चुनिंदा तौर पर गर्भपात। 2001 से 2011 के बीच लगभग पूरे देश में ही बाल लिंगानुपात में गिरावट की प्रवृत्ति रही जिससे इस विश्वास की पुष्टि होती है कि बालिका–भ्रूण का चुनिंदा तौर पर गर्भपात करवाने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। यह प्रवृत्ति उन क्षेत्रों में भी फैल रही है जहाँ पहले नहीं पाई जाती थी। हिमाचल प्रदेश, हरियाणा और पंजाब में 2001 की तुलना में 2011 में बाल लिंगानुपात में कुछ सुधार हुआ है।

इन राज्यों में बाल लिंगानुपात 850 से भी कम था। इन राज्यों में अभी भी 2011 में प्रति 1000 बालकों की तुलना में 900 से कम महिलाएँ हैं। पुरुष प्रधान भारतीय समाज में सदियों से बेटे को वरीयता दी जाती रही है और यह प्रवृत्ति अभी भी बनी हुई है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के 2005–06 के

* प्राध्यापक, सेवानिवृत्त, जनता महाविद्यालय रीवा
** शोधार्थी ,शास. टी.आर.एस. महाविद्यालय रीवा

सर्वेक्षण के अनुसार लगभग एक चौथाई महिलाएँ बेटियों की अपेक्षा बेटों को पसंद करेंगी, परंतु ऐसी शायद ही कोई महिला होगी जो बेटों की अपेक्षा बेटियों को पसंद करे। इसके अतिरिक्त एनएफएचएस के गहन विश्लेषण से पता चलता है कि जब कोई दंपत्ति केवल दो या तीन बच्चों तक अपना परिवार सीमित करना चाहता है और यदि उसका पहला बच्चा बेटी है तो दूसरे बच्चे का भ्रूण परीक्षण कराने और यदि भ्रूण में लड़की पाई गई तो गर्भपात की संभावना बढ़ जाती है।

इस प्रकार छोटे परिवार की स्वीकार्यता में वृद्धि के बावजूद बेटे की वरीयता बनी रहती है। लिंग परीक्षण के लिए प्रसवपूर्व जांच तकनीक की सर्वत्र उपलब्धता को देखते हुए उस पर नियंत्रण लगाने के आशय से 1994 में पीएनडीटी अधिनियम पारित किया गया। इसके तहत भ्रूण के लिंग परीक्षण और उसे माता–पिता के बताने पर रोक लगा दी गई। अधिनियम में 2003 में संशोधन कर उसे और सख्त बनाया गया। संशोधित प्रावधान के अनुसार किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी भी स्थान पर कराए गए चुनिंदा लिंग परीक्षण के विरुद्ध कार्रवाई के लिए जिला स्तर पर उपयुक्त अधिकारियों को अधिकार सौंपे गए है।

यह बात भी माननी होगी कि बालिका भ्रूण के चुनिंदा गर्भपात के साथ–साथ भारत में दशकों से बालकों के मुकाबले बालिकाओं की मृत्यु दर अधिक रही है। हाल के वर्षों में भी 2008 के नमूना पंजीकरण आंकड़ों के अनुसार 1–4 वर्ष की आयु की बालिकाओं की तुलना में 40 प्रतिशत अधिक थी। यदि मृत्यु दर में भी लड़कों के प्रति उदारता और लड़कियों के साथ पक्षपात होता रहेगा तो अपने आने वाले समय में लड़कियों की कमी बनी रहेगी। उच्च बालिका मृत्यु दर और बालिका भ्रूण का चुनिंदा गर्भपात का जोड़ बना रहता है तो लड़कियों की कमी की समस्या निश्चय ही और तेजी से बढ़ती रहेगी।

सारणी क्र. 1
जनसंख्या और 0–6 वर्ष के बच्चों में लिंगानुपात

जनगणना वर्ष	कुल जनसंख्या का लिंगानुपात	0–6 वर्ष के बच्चों का लिंगानुपात
1961	941	976
1971	930	964
1981	934	962
1991	937	945
2001	933	927
2011	940	914

वर्ष 2011 की जनगणना कई दशकों में ऐसी पहली जनगणना है जिसमें 0–6 आयु समूह के बच्चों की संख्या में कुछ कमी पाई गई। जनगणना 2001 में जहाँ 16 करोड़ 40 लाख बच्चों की गणना की गई थीं वहीं 2011 में 15 करोड़ 90 लाख बच्चों की स्पष्ट गणना हुई, अर्थात् भारत में 50 लाख कम बच्चे थे। यह समूची जनसंख्या में बच्चों की अंशधारिता से स्पष्ट है जो 2001 में 16 प्रतिशत से गिरकर 2011 में 13.1 प्रतिशत पर आ गई है। प्रमुख राज्यों में केवल बिहार और जम्मू–कश्मीर ही ऐसे अपवाद हैं जहाँ बच्चों की जनसंख्या में कुछ वृद्धि हुई है। केरल और तमिलनाडु में कुल जनसंख्या का 10 प्रतिशत अंश 0–6 आयु वर्ग के बच्चों का है।

परन्तु राजस्थान, जम्मू–कश्मीर, उत्तर प्रदेश, म0प्र0 और बिहार में कुल जनसंख्या में बच्चों का अंश लगभग 18 प्रतिशत है। बच्चों की संख्या में कमी से उर्वरता में आई कमी का पता चलता है। भारत में समग्र उर्वरता दर में भी कमी आई है। 2001 में जहाँ प्रति महिला बच्चों का औसत 3.1 था, वही 2009 में प्रति महिला बच्चों का औसत 2.7 रह गया। जनसंख्या विशेषज्ञों के लिए 2011 की जनगणना के अस्थायी निष्कर्ष कुछ चौंकाने वाले तथ्य लेकर आए हैं। जनसंख्या के आकार के बारे में जो ज्यादातर पूर्वानुमान लगाए गए थे, वास्तविक गणना उससे अधिक रही। इससे यह संभावना बताई जा रही है कि भारत एक दशक या उससे अधिक के पूर्वानुमान के पहले ही 2030 तक चीन को भी जनसंख्या में पीछे छोड़ देगा और इससे बचने का कोई उपाय नहीं है।

गर्भधारण आयु में प्रवेश करने वाले युवाओं की परिवार के आकार के बारे में प्राथमिकता, उत्तर भारत में भी उल्लेखनीय रूप से छोटे परिवार की ही ओर बढ़ रही है। इन युवाओं के माता–पिता जब उस अवस्था में थे तब ऐसी बात नहीं थी। परिवार के आकार के बारे में उनकी पसंद कुछ बड़े आकार की ही थी। इसलिए यदि अच्छी गुणवत्ता की निर्बाध परिवार नियोजन और प्रवचन स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान की जाती रहीं तो कोई कारण नहीं कि उनकी वरीयताएँ और अपेक्षाएँ यथार्थ में न बदले। लिंग परीक्षण पर 15 वर्षों के प्रतिबंध के बावजूद बाल लिंगानुपात गिरावट की प्रवृत्ति जारी रहने से हमें गंभीरता से यह अहसास होता है कि सामाजिक कानून केवल एक सीमा तक उद्देश्य पूरा करते हैं या यों कहा जाए कि दंड का भय भी ज्यादा काम नहीं आता। यही समय है जब हम उन सांस्कृतिक और सामाजिक कारणों पर गौर करें जो लड़कियों को कमतर बताते हैं। व्यावहारिक परिवर्तन लाना एक कठिन कार्य है परंतु है अति आवश्यक।

जनगणना के परिणाम पर आई प्रथम प्रक्रिया पर नजर डालना दिलचस्प होगा। जनसंख्या की वृद्धि दर में ह्रास और साक्षरता दर में खुशी मनाने के पर्याप्त कारण है किन्तु भारत में अभी भी कन्याओं के जन्म लेने के प्रति अनिच्छुक है। 0–6 उम्र समूह के औपबंधिक आंकड़े बताते हैं कि 2011 में लिंग अनुपात सबसे कम रहा लड़कों की तुलना में लड़कियों की संख्या में ह्रास शिशु लिंग अनुपात (सी.एस.आर.) की तरफ पिछले दो दशकों के दौरान खासकर 1991 के बाद से देश का खास ध्यान गया है जब 7 वर्ष से कम आयु समूह की जनसंख्या का आंकड़ा प्रकाशित किया गया।

तालिका क्रमांक 2
शिशु लिंगानुपात : भारत एवं मध्यप्रदेश

वर्ष	भारत	मध्यप्रदेश
1961	976	967
1971	964	972
1981	962	975
1991	945	941
2001	927	932
2011	914	912

स्रोत :– जनगणना 1961, 1971, 1981, 1991, 2001, 2011 – भारत सरकार।

तालिका में स्पष्ट गया है कि भारत में 1961 से 2011 के बीच लगातार शिशु लिंगानुपात में कमी आई है और आज के आधुनिक परिवेश में भारत के लिए महत्वपूर्ण चुनौती से कम नहीं है सबसे तीव्र गिरावट 1981 के बाद तीन दशकों में हुई है जो कि हमें सचेत होने के लिए व प्रत्येक स्थिति में जागरूक होने के संकेत प्रस्तुत कर रही है। इसके साथ–साथ मध्यप्रदेश में भी शिशु लिंगानुपात के गिरते परिदृश्य को भी चिंता का विषय माना जा सकता है क्योंकि यह राष्ट्रीय औसत में भी नीचे पहुँच चुका है। जो हमारे लिए ध्यान देने योग्य है और हमारे द्वारा ही समानता लाकर पूरा किया जा सकता है।

तालिका क्रमांक 3
मध्यप्रदेश की शहरी व ग्रामीण जनसंख्या – 1901 से 2011 तक

वर्ष	कुल जनसंख्या	ग्रामीण जनसंख्या	नगरीय जनसंख्या
1901	16860761	1502723	1458015
1911	19440965	18141958	1299007
1921	19171750	17731538	1440212
1931	21355657	1953781	1771871
1941	23990608	21637831	2352777
1951	26071637	22938700	3132937
1961	32372408	27745174	4627234
1971	41654119	34869352	6784767
1981	52178844	41592385	10586459
1991	66181170	50842333	15338837
2001	60348023	444380878	15967145
2011	72597565	52537899	20059666

स्रोत :– मध्यप्रदेश सामान्य ज्ञान; रमेश पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली

मध्यप्रदेश में ग्रामीण जनसंख्या पिछले 10 दशकों में शहरी जनसंख्या की अपेक्षा ज्यादा निवास करती है जिनका मुख्य जीवन कृषि कार्यों में बीतता है ग्रामीण व शहरी जनसंख्या का अंतर मुख्य रूप से हमेशा देखा गया है। ग्रामीणों में ज्यादातर लोग उन आधुनिक सुविधाओं के अभाव में उच्च वृद्धि नहीं कर पाते जिन्हें जनसंख्या वृद्धि से उपजी समस्याओं के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं होती है उन्हें केवल कृषि व समाज पर आधारित जीवन की रूढ़िवादिताओं के साथ–साथ जीवन जीना देखा गया है अगर मुख्य बिन्दु पर ध्यान दिया जाये तो बहुत से ग्रामीण भी बच्चों में अंतर के संबंध को नहीं जानते क्योंकि उन्हें कोई जागरूक करने वाला नहीं होता है हमारे यहाँ पुरानी प्रचलित रूढ़िवादियों में बेटी को पराया धन समझा जाता रहा है जिसका आज भी ग्रामीणों में कहीं न कहीं दिखाई देता है क्योंकि सामाजिक क्रियाओं में आज भी पुरुष प्रधान माना जाता है इसी कारण भी लिंगानुपात में कमी होने का कुछ अंश कहा जा सकता है लेकिन शहरी क्षेत्रों में भी आधुनिक की आड़ में लिंग जानकारी हासिल कर कन्या भ्रूण हत्या बढ़ती जा रही है जो देश व राज्य के लिए घातक है और समाज के लिए चुनौती है।

लिंगानुपात अर्थात् बालकों के मुकाबले बालिकाओं के अनुपात संबंधी प्रश्न और बालिकाओं की गणना के बारे में हमारा समूचा नजरिया कैसा होना चाहिए? ऐसे समय में जब बालक–बालिका का अनुपात (सीएसआर) 2001 के 927 के मुकाबले घटकर प्रति 1,000 बालक की तुलना में 914 पर आ गया है, यह प्रश्न पूछना बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाता है। जनगणना 2011 के आलोक में गृह मंत्रालय के सचिव को यहाँ तक कहना पड़ा है कि सरकार को अपनी नीतियों पर पुनर्विचार करना चाहिए। परंतु सबसे पहले यह जानना दिलचस्प होगा कि अब तक की स्थिति क्या रही है और जनगणना 2011 से हम क्या सीख सकते हैं?

भारत में बाल लिंगानुपात की पद्धति पर चर्चा शुरू करने के लिए एक तालिका तैयार की गई है जिसे पहले की जनगणना के आंकड़ों और ताजा जनगणना के प्रारंभिक आंकड़ों के आधार पर तैयार किया गया है। बाद के दशकों में जो अंतर रहा है, उसे भी इसमें शामिल किया गया है ताकि विषय को ठीक से समझा जा सके। देश को उत्तर–पश्चिम, उत्तर–केंद्र, पश्चिम, पूर्व और दक्षिण क्षेत्रों में बांट कर देखने से पिछले दो दशकों के प्रतिमानों की झलक देखने को मिलती है। इस पर विचार करते समय हमें अपने दिमाग में यह बात बनाए रखनी होगी कि यह कालखंड न केवल नवउदारवाद का युग कहा जाता रहा है बल्कि यह एक पूरी पीढ़ी की दास्तान कहती है। राष्ट्रीय स्तर पर बाल लिंगानुपात में 2001 में 18 अंकों की गिरावट आई थी जिसमें अब 13 अंकों और गिरावट आ गई है। अधिकतर परिवारों में अब कम बच्चों का जन्म हो रहा है और प्रजनन दर में कमी आ रही है। इसलिए बालकों की तुलना में बालिकाओं की संख्या में कमी का सिलसिला जारी है। संक्षेप में कहा जाए तो पिछले दशक में 0–6 आयु वर्ग में लड़कियों के अनुपात में ऋणात्मक अंतर धीरे–धीरे बढ़ता जा रहा है। यह प्रवृत्ति देश के बड़े भू–भाग में फैलती जा रही है।

1991 के आंकड़े इसलिए प्रस्तुत किए गए हैं ताकि यह पता चल सके कि एक दशक पूर्व 2001 की जनगणना क्यों सुर्खियाँ बनी हुई थी। यह उस समय हुआ था, जब बाल लिंगानुपात समग्र लिंगानुपात (पुरुषों के मुकाबले महिलाओं की संख्या) से पहली बार नीचे आया था। बालिकाओं का अनुपात जहाँ 1991 में प्रति 1,000 बालकों के मुकाबले 943 था वहीं वह 2001 में गिरकर 927 पर आ गया,

जबकि समग्र लिंगानुपात उसी समयावधि में 927 के मुकाबले बढ़कर 933 हो गया। यह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि महिलाओं की औसत आयु (जीवन प्रत्याशा) में उल्लेखनीय सुधार हो रहा है। भारत के उत्तर–पश्चिम के अनेक राज्यों में लड़कियों के अनुपात में गिरावट का भयावह दौर 2001 में शुरू हुआ। पंजाब ऐसे राज्यों में सबसे आगे था जहाँ प्रति 1,000 बालकों के पीछे बालिकाओं की संख्या 800 अंक से नीचे के स्तर पर पहुँच गई। हिमाचल प्रदेश में भी पहली बार भारी गिरावट दर्ज की गई। वर्ष 2001 में उस समय इतिहास रचा गया जब बाल लिंगानुपात 950 से भी नीचे आ गया। प्रति 1,000 बालकों पर 950 बालिकाओं का जन्म पूरे विश्व में एक मानक के रूप में स्वीकार किया जाता है। उत्तर–पश्चिम के राज्यों के अलावा गोवा, ओडिशा नगरीय इलाके के पूर्वोत्तर के कुछ चुनिंदा क्षेत्रों में भी लड़कों के मुकाबले लड़कियों की संख्या में कमी आने के संकेत दिखाई देने लगे थे। उत्तर–पश्चिम में इस प्रवृत्ति के पीछे जन्म के समय बच्चे के लिंग चुनाव करने का बढ़ता चलन जिम्मेदार माना जा रहा है। यह प्रवृत्ति उन क्षेत्रों में विशेष रूप से दिखाई दे रही है जहाँ कन्या शिशु की हत्या और उच्च महिला मृत्युदर का पूर्व इतिहास रहा है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ज्यादा ह्रास वाले राज्यों–हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, पंजाब के साथ–साथ दिल्ली एवं चंडीगढ में शिशु–लिंग अनुपात (सीएसआर) में सुधार आया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि न सिर्फ हरियाणा एवं पंजाब के अधिसंख्य जिले 850 एवं उससे नीचे के शिशु–लिंग अनुपात (सीएसआर) की श्रेणी में बने हुए हैं, बल्कि हरियाणा के शहरीकृत फरीदाबाद एवं गुडगांव जिले भी इसी श्रेणी में आ गए हैं। इससे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि आंध्र प्रदेश जम्मू–कश्मीर, महाराष्ट्र, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के अनेक जिलों में शिशु–लिंग अनुपात (सीएसआर) की बदतर स्थिति है संक्षेप में निराशाजनक शिशु–लिंग अनुपात (सीएसआर) का पुराना प्रतिमान प्रायः स्थिर है। अथवा पिछले दशकों के दौरान उसमें कुछ बदलाव आया है। परंतु कुछ नये क्षेत्र भी हैं जहां शिशु–लिंग अनुपात (सीएसआर) में चिंताजनक रूप से ह्रास हो रहा है। इनमें ऐसे विशिष्ट समुदाय अथवा क्षेत्र शामिल नहीं है। जहाँ निम्न शिशु–लिंग अनुपात (सीएसआर) की प्रवृत्ति कायम नहीं है।

संदर्भ स्रोत

.1. जन सामान्य हेतु पुस्तिका–परिवार कल्याण मंत्रालयः–सी0ई0एच0ए0टी0 यू0एन0–एफ0पी0ए0 2 मार्च, 2007

2. मंथन–घटता हुआ लिंगानुपात– म0प्र0 वालेन्ट्री हेल्थ एसोशियेशन–2007

3. श्रीवास्तव दिनेश–भारत में महिला सशक्तीकरण के प्रयास–प्रतियोगिता दपर्ण 2/11 ए0 स्वदेशी बीमा नगर आगरा, सितम्बर 2008 पेज नं0 227।

4. मंथन–घटता हुआ लिंगानुपात, म0प्र0 वालेन्ट्री हेल्थ एसोसियेशन दिसम्बर– 2009

8. मंदर हर्ष – बेदखल दोतियाँ–सतना दैनिक, 10 दिसम्बर–2010

5. अर्थव्यवस्था अवलोकन–एक अरब से ज्यादा की गिनती–धाकव पब्लिकेशन 259 प्रभात नगर मेरठ जून–2004

6. भगत चेतव–भारतीय नारी का टेंशन, सतना दैनिक भास्कर, 14 जुलाई 2011 पेज नं0 8

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

पुराण की प्राचीनता : एक अध्ययन

❐ डॉ. रमाशंकर द्विवेदी*
❐ डॉ. बुद्धिलाल प्रजापति**

शोध सारांश

भारतीय संस्कृति के स्वरूप की जानकारी के लिए पुराण के अध्ययन की महती आवश्यकता है। पुराण भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड है–वह आधारपीठ है जिस पर आधुनिक भारतीय समाज अपने नियमन को प्रतिष्ठित करता है। इस परिच्छेद में उसकी प्राचीनता का अध्ययन किया जायेगा। मन्त्र संहिता, ब्राह्मण, उपनिषदों जैसे वैदिक–साहित्य के ग्रन्थों में 'पुराण' की सत्ता है या नहीं? तदनन्तर होने वाले सूत्र ग्रन्थों में उसके श्लोक पाये जाते हैं या नहीं ? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर देने का यहाँ प्रयत्न है। तात्पर्य यह है कि पुराण की प्राचीनता जानने के लिए इस अध्याय में सामग्री एकत्र की गयी है।

'पुराण' शब्द की व्युत्पत्ति पाणिनि, यास्क तथा स्वयं पुराणों ने भी दी है। 'पुरा भवम्' इस अर्थ में 'सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युलौ तुट् च'।[1] पाणिनि के इस सूत्र से 'पुरा' शब्द से 'ट्यु' प्रत्यय करने तथा 'तुट्' के आगमन होने पर 'पुरातन' शब्द निष्पन्न होता है, परन्तु स्वयं पाणिनि ने ही अपने दो सूत्रों–'पूर्वकालैक–सर्व–जरत्पुराणनव–केवलाः समानाधिकरणेन[2] तथा 'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु'[3] में 'पुराण' शब्द का प्रयोग किया है जिससे तुडागम का अभाव निपातनात् सिद्ध होता है। तात्पर्य यह है कि पाणिनि की प्रक्रिया के अनुसार 'पुरा' शब्द से ट्यु प्रत्यय अवश्य होता है, परन्तु नियम प्राप्त 'तुट्' का आगम नहीं होता। 'पुराण' शब्द ऋग्वेद में एक दर्जन से अधिक स्थानों पर मिलता है, यह वहाँ विशेषण है तथा उसका अर्थ है प्राचीन, पूर्व काल में होने वाला। यास्क[4] के अनुसार 'पुराण' की व्युत्पत्ति है–पुरा नवं भवति (अर्थात् जो प्राचीन होकर भी नया होता है)। वायु पुराण[5] के अनुसार यह व्युत्पत्ति है–पुरा अनति अर्थात् प्राचीनकाल में जो जीवित था। पद्मपुराण[6] के अनुसार यह निरुक्ति इससे किञ्चित् भिन्न है–'पुरा परम्परां वष्टि कामयते' अर्थात् जो प्राचीनता की अर्थात् परम्परा की कामना करता है वह पुराण कहलाता है। ब्रह्माण्डपुराण की इससे भिन्न एक तृतीय व्युत्पत्ति है[7]– 'पुरा एतत् अभूत्' अर्थात् 'प्राचीन काल में ऐसा हुआ।'

* प्राध्यापक, शास. स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय, त्योंथर, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी, शास. टी.आर.एस. महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

इन समग्र व्युत्पत्तियों की मीमांसा करने से स्पष्ट है कि 'पुराण' का वर्ण्य विषय प्राचीन काल से सम्बद्ध था। प्राचीन ग्रन्थों में पुराण का संबंध 'इतिहास' से इतना घनिष्ठ है कि दोनों सम्मिलित रूप से 'इतिहास–पुराण' नाम से अनेक स्थानों पर उल्लिखित किये गये हैं। 'इतिहास' के अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित होने पर भी लोगों में यह भ्रान्त धारणा फैली हुई है कि भारतीय लोग ऐतिहासिक कल्पना से भी सर्वथा अपरिचित थे। परन्तु यह धारणा निर्मूल तथा अप्रामाणिक है। यास्क के कथनानुसार ऋग्वेद में ही त्रिविध ब्रह्म के अन्तर्गत 'इतिहास–मिश्र' मन्त्र पाये जाते हैं।[8] छान्दोग्य उपनिषद् में सनत्कुमार से ब्रह्मविद्या सीखने के अवसर पर नारद मुनि ने अपनी अधीत विद्याओं के अन्तर्गत 'इतिहास–पुराण' को पञ्चम वेद बतलाया है। इस संयुक्त नाम से स्पष्ट है कि उपनिषद् युग में दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध की भावना क्रियाशील थी। यास्क ने अपने निरुक्त में ऋचाओं के विशदीकरण के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों की कथाओं को 'इतिहासमाचक्षते' कहकर उद्धृत किया है। इतना ही नहीं निरुक्त में वेदार्थ व्याख्या[9] के अवसर पर उद्धृत अनेक विभिन्न सम्प्रदायों में ऐतिहासिकों का भी एक पृथक् स्वतंत्र सम्प्रदाय था जिसका स्पष्ट परिचय 'इति ऐतिहासिकाः' निरुक्त के इस निर्देश से मिलता है। इस सम्प्रदाय के मंतव्यानुसार अनेक मन्त्रों की व्याख्या यास्क ने स्थान–स्थान पर की है। 'इतिहास' की व्युत्पत्ति है– इति (इस प्रकार से) ह (निश्चयेन) आस (था, वर्तमान था) अर्थात् प्राचीन काल में निश्चय रूप से होने वाली घटना 'इतिहास' के द्वारा निर्दिष्ट की जाती थी।[10] 'इतिहास' का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ प्राचीन काल में वास्तव रूप में घटित होने वाली घटना का द्योतक है। अथर्ववेद तथा ब्राह्मणग्रन्थों में यह शब्द 'पुराण' से भिन्न स्वतन्त्र रूप में इसी अर्थ में प्रयुक्त प्रतीत होता है। यास्क ने निश्चित रूप से देवापि और शन्तनु की कथा को इतिहास कहा है तथा विश्वामित्र को सुदास पैजवन के पुरोहित होने की घटना को भी इतिहास कहा है।[11] पुराणों में आगे चलकर 'इतिहास' शब्द का प्रयोग निःसंशय इस 'इतिवृत्त' अर्थ में हम पाते हैं। इससे स्पष्ट है कि काल्पनिक कथा या आख्यान को 'पुराण' नाम से और वास्तविक घटना को 'इतिहास' नाम से पुकारते थे,[12] और यही दोनों के प्राचीन अर्थों में विभेद–सीमा है।

सामान्यतया आलोचकगण महाभारत को ही इतिहास कहते हैं, क्योंकि स्वयं महाभारत[13] भी अपने को इसी अभिधान से पुकारता है, परन्तु रामायण को भी इतिहास के अन्तर्गत मानना प्राचीन शास्त्रीय मर्यादा की सीमा से बाहर नहीं है। राजशेखर के अनुसार 'इतिहास' दो प्रकार का होता है[14]– (1) परिक्रिया अर्थात् एक नायक वाली कथा जैसे रामायण तथा (2) पुराकल्प अर्थात् बहुनायक वाली कथा जैस महाभारत। फलतः राजशेखर 'इतिहास' का क्षेत्र संकुचित तथा सीमित नहीं मानते। दोनों महाकाव्यों को इस शब्द के अभिधान के भीतर स्वीकार कर वे अपने व्यापक दृष्टिकोण का परिचय देते हैं।

पुराण के विषय में दो दृष्टियाँ प्राचीनकाल में देखी जाती है। एक अर्थ में तो यह प्राचीनकाल के वृत्तों के विषय में विद्या के रूप में प्रयुक्त होता था। दूसरे अर्थ में यह एक विशिष्ट साहित्य या ग्रन्थ के लिए प्रयुक्त किया गया उपलब्ध होता है। इसकी प्राचीनता खोजने के लिए वैदिक साहित्य का आलोडन आवश्यक है–संहिता, ब्राह्मण तथा उपनिषदों का।

ऋग्वेद में 'पुराण' शब्द का प्रयोग अनेक मन्त्रों में उपलब्ध होता है[15], परन्तु इन स्थलों पर 'पुराण' शब्द केवल प्राचीनता का ही बोधक है। अन्यत्र [16]'पुराणी' शब्द 'गाथा' शब्द के विशेषण

रूप में प्रयुक्त मिलता है। इससे अर्थ लगाया जा सकता है कि ऋग्वेद के युग में कुछ गाथाएँ ऐसी विद्यमान थीं जिनका उदय किसी प्राचीन काल में हुआ था। ऋग्वेद के काल में हम इससे अधिक कुछ नहीं कह सकते। अथर्ववेद में हमें 'पुराण' शब्द इतिहास, गाथा तथा नाराशंसी शब्दों के साथ प्रयुक्त मिलता है जहाँ एक विशिष्ट विद्या के रूप में ही उपलब्ध होता है। पुराण का उदय 'उच्छिष्ट' संज्ञक ब्रह्म से बतलाया गया है। अथर्व[17] मंत्र का अर्थ है– ऋक्, साम, छन्द (अथर्व) और यजुर्वेद के साथ ही पुराण भी उस उच्छिष्ट से– यज्ञ के अवशेष से अथवा जगत् पर शासन करने वाले यज्ञमय परमात्मा से– उत्पन्न हुए तथा द्युलोक में निवास करने वाले देव भी उसी उच्छिष्ट से पैदा हुए। यथा–

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः।।[18]

मन्त्र का अर्थ है उच्छिष्ट से ऋचाएँ, साम, छन्द (अथर्व) तथा पुराण यजुष् के साथ उत्पन्न हुए। इतना ही नहीं, दिव्लोक में निवास करने वाले देव भी उसी उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए। 'उच्छिष्ट' शब्द के तात्पर्य के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। कुछ लोग इसका अर्थ 'यज्ञ का अवशेष' मानते हैं सायण की दृष्टि में 'उद् ऊर्ध्वम् अर्थात् सर्वेषां भूतभौतिका– नामवसाने शिष्ट उर्वरितः परमात्मा' इस प्रकार की व्युत्पत्ति से सब पदार्थों का अवसान होने पर शेष रहने वाले परमात्मा की द्योतना इस शब्द के द्वारा होती है। उपनिषदों में प्रयुक्त 'नेति–नेति' शब्द का अभिप्राय इससे भिन्न नहीं है।

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्
न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्
निषेधशेषो जयतादशेषः।।[19]

स बृहतीं दिशमनुव्यचलत्।।
तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च
नाराशसीश्चानुव्यचलन्।।
इतिहासस्य च स वै पुराणस्य च गाथानां च
नाराशंसोनां च प्रियं धाम भवति, य एवं वेद।।[20]

व्रात्यस्तोम के अन्तर्गत पूर्वोक्त मन्त्रों की उपलब्धि होती है। व्रात्यपद से रुद्रावतार परमात्मा की यहाँ विवक्षा है। पैप्पलाद संहिता की 'व्रात्यो व इदमग्र आसीत्' यह उक्ति तथा विश्वसृष्टि की आद्यावस्था में 'व्रात्य' के सबसे अग्रिम होने का यह निर्देश उसका परमात्म तत्त्व के साथ ऐक्य स्थापित कर रहे हैं। रुद्राध्याय में 'नमो व्रात्याय' कहकर व्रात्य का रुद्र के साथ ऐक्य प्रतिपादन स्वयं ऊह्य है। इसी रुद्र के प्रतिनिधि व्रात्य के अनुगमन का विधान इस सूक्त में देवादिकों तथा वेदादिकों के द्वारा बतलाया गया है। फलतः अथर्व की दृष्टि में इतिहास और पुराण ऋग् साम तथा यजुष् के समान ही अभ्यर्हित है तथा पञ्चम वेद का प्रतिनिधित्व करते है।

''व्रात्यस्तोम के प्रसंग में इतिहास, पुराण, गाथा तथा नाराशंसी भी उसके पीछे–पीछे चलीं। जो व्यक्ति इसे जानता है वह इतिहास का, पुराण का, गाथाओं का तथा नाराशंसियों का प्रिय धाम– प्यारा घर होता है।'' यहाँ इतिहास, गाथा तथा नाराशंसी के साथ 'पुराण' शब्द का सहप्रयोग इन सबके साहित्यिक रूप में समान आकार की ओर इङ्गित करता है। मेरी दृष्टि में ये चारों शब्द वैदिक साहित्य से पृथग्भूत किसी लौकिक साहित्य को सत्ता की ओर स्पष्टतः संकेत करते हैं। वैदिकयुग में ही साहित्य की प्रवहमान दो धाराएँ प्रतीत होती हैं– एक धारा तो विशुद्ध धार्मिक है जिसमें किसी देवता की स्तुति तथा प्रार्थना ही मुख्य लक्ष्य है। दूसरी धारा विशुद्ध लौकिक है जिसमें लोक में प्रख्याति पाने वाले महनीय व्यक्तियों का तथा

लोकप्रसिद्ध वृत्त का वर्णन करना ही अभीष्ट तात्पर्य होता है। ऋग्वेद के भीतर ही अनेक दानस्तुति तथा नाराशंसी उपलब्ध होती हैं जिनसे मन्त्रद्रष्टा ऋषि प्रभूत दान देने वाले अपने किसी आश्रयदाता शासक की ऐतिहासिक वृत्त से संवलित स्तुति करता है। 'पुराण' का संबंध इसी द्वितीय धारा से मानना नितान्त उपयुक्त प्रतीत होता है।

येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धा तय इद् विदुः
यो वै तां विद्यात्रामथा स मन्येत पुराणवित्।[21]

तात्पर्य– इस (दीखती हुई भूमि) से पहले (अर्थात् पहले कल्पवाली) जो भूमि थी, उस भूमि को सत्य ज्ञानी पुरुष ही जानते हैं। जो निश्चय करके उस प्रथम कल्पवाली भूमि को नामतः– यथार्थ रूप से–जान ले वह पुराणवित् (अर्थात् पुराणों के वृत्तान्त का जानने वाला) माना जाना चाहिए। अथर्ववेद के काल में पुराण का तथा पुराणविद् व्यक्तियों का अस्तित्व अवश्यमेव विद्यमान था।

ब्राह्मण साहित्य में भी 'पुराण' का अस्तित्व प्रमाणित होता है। शतपथ तथा गोपथ ब्राह्मणों में 'पुराण' का बहुशः उल्लेख उपलब्ध होता है जिससे इसकी लोकप्रियता प्रमाणित होता है। गोपथ का कथन है कि कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषद्, इतिहास, अन्वाख्यात तथा पुराण के साथ सब वेद निर्मित हुए। यहाँ इतिहास–पुराण का संबंध वेद से जोड़ा गया है। दूसरे मन्त्र में गोपथ ब्राह्मण पाँच वेदों के निर्माण की बात कहता है और ये वेदपंचक हैं– सर्पवेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद तथा पुराणवेद।

एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्याताः सपुराणाः।[22]

पञ्चवेदान् निरमिमत सर्पवेदं पिशाचवेदमसुरवेदमिति–हासवेदं पुराणवेदम्। स खलु प्राच्या एव दिशः सर्पवेदं निरभिमत, दक्षिणस्याः पिशाचवेदं प्रतीच्या असुरवेदमुदीच्या इतिहासवेदं ध्रुवायाश्चोर्ध्वायाश्च पुराणवेदम्।[23]

स तान् पञ्चवेदानभ्यश्राम्यदभ्यतपत् समतपत्। तेभ्यः श्रान्तेभ्यस्तप्तेभ्यः संतप्तेभ्यः पञ्चमहाव्याहृती– र्निरभिमत वृधत् करत् गुहत् महत् तदिति। वृधदिति सर्पवेदात्, करदिति पिशाचवेदात् गुहदित्यसुरवेदात् महदितीतिहासवेदात् तदिति पुराणवेदात्।[24]

इन वेदों के निर्माण के विषय में कहा गया है कि प्राची दिशा से सर्पवेद का निर्माण हुआ, दक्षिण दिशा से पिशाचवेद का, पश्चिम दिशा से असुरवेद का, उत्तर दिशा से इतिहास वेद का तथा ध्रुवा (पैरों से ठीक नीचे होने वाली दिशा) और ऊर्ध्वा (सिर के ठीक ऊपर की दिशा) से पुराण का निर्माण हुआ। ये उस युग में स्वतन्त्र वेद या वेद के समान ही मान्य शास्त्र थे। ये पाँचों ही स्वतन्त्र थे; इसकी सूचना मिलती है व्याहृतियों की उत्पत्ति से। इसी सन्दर्भ में पाँच महाव्याहृतियों– वृधत्, करत्, गुहत्, महत् तथा तत् की उत्पत्ति निर्दिष्ट पाँचों वेदों से क्रमशः वर्णित है। भिन्न दिशाओं से उत्पन्न होने के कारण तथा भिन्न व्याहृतियों के उद्गमस्थल होने के हेतु गोपथ ब्राह्मण इतिहास और पुराण को भिन्न–भिन्न विद्याओं के रूप में ग्रहण करता है। उस युग में दोनों का पार्थक्य निश्चित हो चुका था।

शतपथ ब्राह्मण अपने विशाल क्षेत्र में इतिहास पुराण के उदय की बड़ी ही महत्त्वपूर्ण गाथा सुरक्षित रखे हुए है जिसका अनुशीलन अनेक नवीन उपलब्धियों को प्राप्त करने में सर्वथा समर्थ है इस ब्राह्मण के उद्धरण बड़े ही महत्त्व के हैं मध्वाहुतयो ह वा एता देवानाम्। यदनुशासनानि विद्या वाकोवाक्यमितिहासपुराणं गाथा नाराशंस्यः। य एवं विद्वान् अनुशासनानि विद्या वाकोवाक्यमितिहासपुराणं गाथा नाराशंसीरित्यहरहः स्वाध्यायमधीते।। मध्वाहुतिभिरेव तद्देवांस्तर्पयति।[25]

क्षीरौदनमांसौदनाभ्यां ह वा एष देवाँस्तर्पयति य एवं विद्वान् वाकोवाक्यमितिहास–पुराणमित्यहरहः स्वाध्यायमधीते।[26]

ऋग्वेदो यजुर्वेदो सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासपुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राणि अनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि वाचैव सम्राट् प्रजायते।[27]

अथाष्टमेऽहन्. मत्स्याश्च मत्स्यहनश्चोपसमेता भवन्ति। तानुपदिशतोतिहासो वेदः सोऽयमिति किञ्चिदितिहासमाचक्षीत। अथ तवमेऽहन्.. तानुपदिशति पुराणं वेदः सोऽयमिति किञ्चित् पुराणमाचक्षीत।[28]

इन उद्धरणों का तात्पर्य ब्रह्मयज्ञ के प्रसंग से यह सम्बन्ध रखता है। विभिन्न वेदों का स्वाध्याय विभिन्न फल प्रदान करता है। अनुशासन, विद्या, वाकोवाक्य, इतिहास–पुराण गाथा तथा नाराशंसी के स्वाध्याय करने से वेदों को मधु से पूर्ण आहुतियाँ प्राप्त होती हैं। ध्यान देने की बात है कि शतपथ प्रथम तीनों उद्धरणों में 'इतिहासपुराण' समस्तपद के रूप में उल्लेख पा रहा है, परन्तु पारिप्लवाख्यान से संबद्ध अन्तिम उद्धरण में इतिहास तथा पुराण का पार्थक्य स्पष्टतः निर्दिष्ट किया गया है। इतिहास का प्रवचन होता है अष्टम रात्रि में और पुराण का नवम रात्रि में इस प्रकार उस युग में दोनों प्रकार की भावनाएँ क्रियाशील थीं– सम्मिलित भावना।

'यही जानकर विद्वान अनुशासन, विद्या, वाकोवाक्य, इतिहास पुराण, गाथा, नाराशंसी के साथ प्रतिदिन स्वाध्याय (वेद) का अध्ययन करता है।' इस स्वाध्याय के फल का भी यथोचित उल्लेख मिलता है। जो विद्वान् पूर्वोक्त अनुशासन आदि का नित्य स्वाध्याय का अध्ययन करता है, वह देवों को तृप्त करता है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस, इतिहास पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, अनुव्याख्यान तथा व्याख्यान सब वाङ्मय हैं। वाणी से ही सम्राट् होता है।

शतपथ का कथन है कि यज्ञानुष्ठाता उन्हें उपदेश करे कि पुराण ही वेद है (तान् उपदिशति पुराणं वेदः, 29 तथा परिप्लव के नवम दिन में कुछ पुराण का पाठ करना चाहिए (अथ नवमेऽहनि किञ्चित् पुराणमाचक्षीत)।

इस प्रकार ब्राह्मण काल में पुराण की महत्ता का परिचय भली भाँति मिलता है। ब्राह्मणग्रन्थों के अनुशीलन से एक विशिष्ट तथ्य का उद्भव होता है। शतपथ ब्राह्मण में 'इतिहासपुराणं' सम्मिलित रूप से एक ही समस्त पद द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। प्रतीत होता है कि दोनों में विषय का सादृश्य था। आगे चलकर दोनों पृथक् ग्रन्थ के रूप में विभक्त हो गये। इसीलिए गोपथ पुराणवेद को इतिहासवेद से पृथक् निर्दिष्ट करता है। ऐसे विकास की सम्पत्ति ब्राह्मणयुग में ही पुराण के गाढ़ अनुशीलन तथा आलोडन व विलोडन का तथ्य द्योतित करती प्रतीत होती है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति के स्वरूप की जानकारी के लिए पुराण के अध्ययन की महती आवश्यकता है। पुराण भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड है–वह आधारपीठ है जिस पर आधुनिक भारतीय समाज अपने नियमन को प्रतिष्ठित करता है और समाज में होने वाली गतिविधियों को साकार रूप देने के साथ ही समाज में उत्पन्न भ्रांतियों को दूर करने में सहायक होगा।

संदर्भ स्रोत

1. पाणिनिसूत्र 4/3/23
2. पाणिनिसूत्र 2/1/49

3. पाणिनिसूत्र 4/3/105
4. निरुक्त (3/19)
5. यस्मात् पुरा ह्यनक्तीनं पुराणं तेन तत् स्मृतम्। निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।। –वायु 1/203

   6. पुरा परम्परां वष्टि पुराणं तेन तत् स्मृतम्।। पद्म. 5/2/53
7. यस्मात् पुरा ह्यभूच्चैतत् पुराणं तेन तत् स्मृतम्। निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।। –ब्रह्माण्ड 1/1/173
8. त्रितं कूपेऽवहितमेतत् सूक्तं प्रतिबभौ। तत्र ब्रह्मेतिहास–मिश्रमिङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति।।– निरुक्त 4/6
9. ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वण–मितिहासपुराणं पंचम वेदानां वेदम्।। छान्दोग्या 7/1
10. तुलना कीजिए – निदानभूतः 'इति ह एवमासीत्' इति य उच्चते स इतिहासः (निरुक्त 2/3/1 पर दुर्गाचार्य की वृत्ति)
11. तत्रेतिहासमाचक्षते– देवपिश्चार्ष्टिषेणः शन्तनुश्च कौरव्यौ भ्रातरौ बभूवतुः (निरुक्त 2/3/1) तथा

    तत्रेतिहासमाचक्षते– विश्वामित्र ऋषिः सुदासः पैजवनस्य पुरोहितो बभूव। (निरुक्त 2/7/2)
12. अत्राप्युदाहरताममितिहासं पुरातनम्। मत्स्य. 72/6

    जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा। उद्योग. 136/18
13. इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः। आदि. 2/385
14. परिक्रया पुराकल्प इतिहासगतिर्द्विधा। स्यादेकनायका पूर्वा द्वितीया बहुनायका।। काव्यमीमांसा
15. ऋ.वे. 3/54/9; 3/58/6, 10/130/6
16. ऋ.वे. 9/99/4)
17. अथर्व (11/7/24)
18. अथर्व. 11/7/4
19. भाग. 8/3/24
20. अर्थ, 15 काण्ड, 1 अनुवाक, 6 सूक्त
21. अथर्व 11/8/7
22. गोपथ, पूर्वभाग 2/10
23. गोपथ,1/10
24. गोपथ, 1/10
25. शतपथ 11/5/6/8
26. गोपथ, 11/5/7/9
27. गोपथ, 14/6/10/6
28. तत्रैव 13/4/3/12–13
29. शतपथ 13/4/3/13)

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

डॉ. मोहम्मद इकबाल का आध्यात्मिक दर्शन

❒ डॉ. सुधा सोनी

शोध सारांश

समता स्वतंत्रता और सहकारिता के सर्वमान्य सिद्धांतों पर आधारित जनहितकारी व्यवस्था को 'वसुधैव कुटुम्बकम' कहा गया है। गांधी जी ने इसे 'रामराज्य' कहा है। दुनिया के महान् दार्शनिक विद्वान उसे 'नैतिक राज्य' कहते हैं। डॉ. इकबाल ने इसे 'धर्मतंत्र' कहा है। इन्सानियत या मनुष्यता मनुष्य का प्राकृतिक गुण है।

सूफी संतों ने ऐसे समय में सामाजिक समन्वय का कार्य किया जब धर्म के धार्मिक अन्धविश्वास में जकड़ा समाज मनुष्यता के प्राकृतिक गुणों को भूल चुका था। सूफी साधकों ने हिन्दु–मुस्लिम समुदायों के इन्हीं प्राकृतिक गुणों को जागृत कर समाज में सामाजिक समरसता को गतिशील बनाया।

सूफी साधकों में मो. इकबाल एक बड़े सूफी साधक थे। उनका जन्म पंजाब के शियालकोट में 1873 में हुआ था। उनके पूर्वज कश्मीरी ब्राह्मण थे। वह पेशे से दर्जी थे। उनकी रुचि धर्म एवं दर्शन में थी। 1895 में वे इग्लैण्ड गये वहां उन्होंने यूरोपीय दर्शन प्रणाली के साथ इस्लामी संस्कृति का अध्ययन किया। वहां उन्होंने चिंतन किया कि यूरोपियन हाथ पर हाथ घर कर बैठने वाले नहीं है वे साहसी है और किसी भी काम को छोटा नहीं समझते। साथ ही उन्होंने ने यह चिंतन किया कि विज्ञान के जिस चमत्कार ने उनका परिचय विश्व से कराया है। उसी विज्ञान ने मानव के चक्षु खोल दिये पर उसका हृदय खोखला था, उसकी आत्मा रिक्त थी।[1]

इकबाल का आध्यात्मिक दर्शन रविन्द्रनाथ टैगोर की तरह था जैसा कि टैगोर का विश्वास था कि व्यक्ति मानव व्यक्तित्व का विकास ही जीवन का चरम लक्ष्य है। उनकी दृष्टि में व्यक्ति और समाज के बीच कोई अन्तर्विरोध नहीं था। दोनों का अर्थात व्यक्ति और समाज का सुसम्बद्ध रूप से विकास होता है। धर्म सत्य की खोज है, उसका लक्ष्य प्रेम है। सूफी साधकों का सबसे बड़ा लक्ष्य है अपने अहंकार को मिटा देना। सूफी मत में ईश्वर प्राप्ति की यही मुख्य शर्त है। सूफियों के अनुसार जब तक मनुष्य ईश्वर से दूर रहता है तब तक इसकी दशा ..... मानी जाती है, परन्तु जब वह मोक्ष या ब्रम्हमिलन (वस्मल) की स्थिति में पहुंच जाता है तब वह फना की दशा में पहुंच जाता है।

* प्राध्यापक इतिहास, शासकीय कन्या महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

इकबाल ने अपने आत्मसमर्पण के दर्शन को 'फलसफायें बेखुदी' में कहते हैं अर्थात–अपने अहं को मार कर किसी बड़े अहं में मिला देना। मनुष्य अपने राष्ट्र अपने देश की भलाई और कल्याण के लिए अपने शरीर, अपनी बुद्धि बल और अपने ज्ञान विद्या का उपयोग करके ही प्राप्त कर सकता है। इनसे अलग रहकर व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं।[2]

इकबाल फरमाते हैं कि :

''कौन गोया जिस्म है अराद है आजाय कौम''

अर्थात् समाज शरीर के समान और व्यक्ति उसकी इन्द्रियों के समान है। कौमों की तकदीर व्यक्तियों के हाथों में है, व्यक्ति ही समाज के भाग्य का सितारा है।

डॉ. इकबाल व्यक्तित्व की चेतना शक्ति पर जोर देते थे और व्यक्तित्व के पूर्व विकास को मानव प्रयत्नों का लक्ष्य मानते थे।

फर्द। 'कायम रब्ते' मिल्लत[3] से है तनहा कुछ नहीं मौज है

दरिया में और बेरूने दरिया कुछ नहीं।

अर्थात् व्यक्ति का व्यक्तित्व राष्ट्र से संबंध रखने से सुरक्षित रह सकता है। लहर उसी समय तक जीवित रह सकती है जब तक वह दरिया में है। दरिया से बाहर उसका कोई व्यक्तित्व नहीं है।

सूफी संतों की दृष्टि समदृष्टि है। वे संसार के सभी मनुष्यों को समदृष्टि से देखने का आदर्श स्थापित करते हैं। डॉ. इकबाल के अनुसार स्वर्ग और नर्क जो कुछ भी है कर्म पर निर्भर है। कर्म से ही मनुष्य स्वर्ग का अधिकारी बनता है कर्म ही उसको नर्क का भागी बनाता है। मिट्टी का बना हुआ मनुष्य अपनी प्रकृति में मिट्टी ही है। वह प्रकाश और अग्नि का भागी तो अपने कर्म से ही बनता है। मिसाल के तौर पर इकबाल की राय के अनुसार बहिश्त (स्वर्ग) और दोजख (नरक) स्थान नहीं बल्कि स्थितियां है। कुरान में उनका वर्णन आन्तरिक स्थिति अर्थात चरित्र का प्रदर्शन है। कुरान के अनुसार–दोजख (नरक) खुदा की जलाई आग है जो हृदय के ऊपर चढ़ती है, उसकी विलुप्ता का दुखद बोध है। बहिश्त विघटनकारी शक्तियों पर विजय का आनन्द है। इस्लाम में अनन्त नरकवास जैसी चीज नहीं है।[4]

धर्म जीवन के किसी एक विभाग तक सीमित नहीं है वह तो सम्पूर्ण मानव की अभिव्यंजना है।

इकबाल फारसी और उर्दू के बहुत ही प्रतिष्ठित कवि थे। अपने जीवन के प्रारंभिक काल में सच्चे और पक्के राष्ट्रवादी थे। इस काल में जो नज्में उन्होंने लिखी वे भारतीय राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत थी।

वे कहते है–तकलीद से नकारा[5] न कर अपनी खुदी को कर इसकी हिफाजत–हिफाजत कि यह गौहर[6] है यगानौ[7] वे जोश में आकर कहते थे।

खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर से पहले खुदा बन्दे से खुद पूछे बता तेरी रजा क्या है।[8]

इकबाल की खुदी आत्मा नहीं मनुष्य के व्यक्तित्व का पर्याय है। इकबाल आत्मा और शरीर को दो नहीं मानते। अतएव आत्मा और शरीर का गुण एक ही होना चाहिए। कुरान में भी यही लिखा है कि अपने भीतर उन गुणों का विकास करो जो ईश्वरीय हैं। इसलिए जब ईश्वर के समान बनने की कोशिश करता है तभी उसका व्यक्तित्व औरों के व्यक्तित्व से अधिक भिन्न होने लगता है। खुदी इसी व्यक्तित्व के विकास से अधिक भिन्न होने लगता है। खुदी इसी व्यक्तित्व के विकास का चरम बिन्दु है। ईश्वर के जो अधिक से अधिक समीप है। मनुष्यों में वही अधिक श्रेष्ठ और महान् है। और ऐसा नहीं, नहीं होता है कि एक नि वह ईश्वर में समा जाता है। प्रत्युतकाल पाकर ही वही ईश्वर को अपने भीतर लीन कर लेता है।

इकबाल खुदा की उपासना को मानव का कर्तव्य समझते हुए भी मानव को अपने अस्तित्व को खुदा में गुम कर देने की बात स्वीकार नहीं करते थे, वे अस्तित्व को फना (ईश्वर में लीन) करने के बजाय उकसी बका (अस्तित्व) को बनाये रखने पर जोर देते थे।

उन्होंने एक प्रकार की रहस्यवादिता निष्क्रियता, मौन अर्कमण्यता, सक्रियता से पलायन तथा जीवन के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण का विरोध करते थे। वे उन हिन्दुओं और मुसलमान सूफियों की बात नहीं मानते थे जो मनुष्य को दुनिया छोड़ देने और अपने अस्तित्व को खुदा में डुबोने या गुम कर देने की सलाह देते है। वे शंकराचार्य जी के ज्ञान योग और कर्म सन्याल के सिद्धांत को भी ठीक नहीं समझते थे। किन्तु वे रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत और श्री कृष्ण के निष्काम कर्म के सिद्धांत को पसन्द करते थे।[9]

वे भौतिकतावादी जिन्दगी को नकारते थे किन्तु उन्हीं तत्वों को जो जीवन में रूकावट पैदा करती थी। लेकिन भौतिकता को बुरी चीज नहीं मानते थे क्योंकि उसके कारण जीवन को अपनी छिपी हुई शक्तियों को काम में लाने का अवसर मिलता है।[10]

यदि ईश्वर सृष्टि का रचयिता है तो मनुष्य भी एक सृष्ट है क्योंकि यदि ईश्वर ने रात बनाई तो मनुष्य ने रात के अंधकार को दूर करने के लिए दीपक बना लिया। भगवान ने मिट्टी बनाई तो उस मिटटी से मनुष्य ने बर्तन बना लिये। उनकी यही क्रियाशीलता उनके कविताओं की सांस बन गई। उनकी धारणा थी कि आध्यात्मिक जीवन में राजनीति की जड़े हैं। लौकिक कार्य का लक्षणकर्ता के दृष्टिकोण से निश्चित होता है। यदि वह सद्भावना से जीवन आदर्शों को ध्यान में रखकर किया जाय तो वह आध्यात्मिक है, वरना नहीं।

जीवन क्या है, आगे बढ़ने की ओर उन्मुख आत्मसात् करने की गति है। अपने प्राण में वह सभी बाधाओं को उन्हें आत्मसात् करके मार्ग से हटा देता है। उसका सारतत्व इच्छाओं और आदर्शों का निरंतर सृजन है। अपने मार्ग से सभी बाधाओं को हटाकर अहा (खुदी) स्वतंत्रता प्राप्त करता है। यह अंशतः स्वतंत्र होता है, अंशतः परिमित होता है और उस व्यक्ति के निकटतर पहुंचकर जो पूर्णतः स्वतंत्र है अर्थात् ईश्वर वह पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कर लेता है।[11]

प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक व्यक्तित्व होता है किसी व्यक्ति का अपनापन निजी व्यक्तित्व होता है वही उसकी (खुदी कहलाता है) 'जिसमें व्यक्ति स्वयं में पूर्ण एक अनूठा केन्द्र बन जाता है। इसलिए जरूरी नहीं कि व्यक्ति का व्यक्तित्व एकांत में विकसित होता है समाज में रहकर ही व्यक्ति पूर्णता को प्राप्त करता है। ईश्वर मनुष्यों की परिस्थिति में तब तक परिवर्तन नहीं करेगा जब तक वे जो कुछ उनके अंदर है, उसमें परिवर्तन नहीं करते।

इकबाल का कथन था कि प्रेम, कर्मफल की उपेक्षा (फक्र) साहस, सहनशीलता, अपनी वैध कमाई पर जीवन निर्वाह करना तथा सृजनात्मक–क्रिया कलापों में भाग लेना ये कार्य मनुष्य को अपना व्यक्तित्व सुदृढ़ करने में सहायक होते हैं।[12] इकबाल ने प्रेम की तुलना में बुद्धि को गौण समझा। इकबाल कहते हैं। बुद्धि मार्ग का चिराग (दीपक) है वह मंजिल (गंतव्य स्थान, लक्ष्य) नहीं है। जब कि इश्क (प्रेम) वर्ग की तरह शुद्ध और रंगीन है।[13]

इकबाल ने धर्म को राष्ट्रीयता का आधार माना तथा साम्प्रदायिकता के समक्ष अपने को समर्पित कर दिया राष्ट्रवादिता से धर्मवादिता में परिवर्तन का कारण भारतीय मुसलमानों की सक्रियता को बढ़ावा देना था। वे भारतीय मुसलमानों की

उदारवादिता को धर्म के पलड़े में कमजोर समझते थे। इकबाल द्वारा मनुष्य की महिमा और उनका ईश्वर को मनुष्य के एक सहचरी के रूप में चित्रित करना वास्तव में एक ईश्वरपरक क्रान्ति का निरूपण है।

भारतीय चिंतन प्रणाली और साहित्य में मुस्लिम जन समुदाय को जगाने में जो भूमिका अदा की वह उनके कृतित्व एवं व्यक्तित्व का दर्शन कराता है। वे सूफी साधक थे उनका दर्शन भी सूफियाना था किन्तु काल की लहर ने उन्हें पूर्ण सूफी साधक से वंचित कर दिया।

दिसम्बर 1930 ई. के मुस्लिम लोग के प्रयाग अधिवेशन में उन्होंने अध्यक्षता की अपने अध्यक्षीय भाषण में पंजाब, उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत, सिंध औ बलूचिस्तान को एक राज्य में शामिल किये जाने की मांग की। यहां तक कि मो. अली जिन्ना के प्रेरणा स्रोत भी बने। बी.ए. स्मिथ का कथन है कि ''इकबाल का ऐतिहासिक प्रभाव भारतीय मुसलमानों में उदारतावाद को कमजोर करना था।[14]

सन्दर्भ

1. कुलयात इकबाल, पृ. 130 कनीज फातिमा पुस्तकालय बिछिया, रीवा
2. आर.आर. यादव, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास, पृ. 130, 2005 शेखर पब्लिकेशन इलाहाबाद.
3. इकबाल–रिकान्स्ट्रक्शन ऑफ रिलीजियस थाट इन इस्लाम, पृ. 170
4. (1) मूर्तिगृहों, (2) लड़ाई झगड़ा (3) उपदेशक (4) मन्दिर–मस्जिद, कुलयात, इकबाल, पृ. 302.
5. इकबाल–रिकान्स्ट्रक्शन ऑफ रिलीजियस थाट इन इस्लाम, पृ. 353 (बन्दा–सेवक) रज–सम्मति, खुदी–अहाम्, बुलन्द–ऊंचा।
6. युसुफ हसन खां–रूहे इकबाल, पृ. 302
7. शामलू–स्वीचेंज एण्ड स्टेटमेन्ट ऑफ इकबाल, पृ. 38
8. इकबाल–दि सीक्रेट्स आफ दि सेल्फ पंक्तियां, 1019–30, 1033.
9. अनवार–इकबाल.
10. कुलयात–इकबाल, पृ. 375.
11. के. दामोदरन–भारतीय चिंतन परम्परा, पृ. 486, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली.
12. W.C. Smith : Islam In Modern History, za (1957), Page 54

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

भारत में रोजगार की संभावनाएँ

❐ डॉ. हरिओम शुक्ल

शोध सारांश

''आज सूचना–तंत्र के प्रयास से गाँव में रोजगार की विपुल संभावनाएँ प्रकट हो रही हैं। प्रशासन ग्रामीणों के द्वार तक पहुँच चुका है और भू–अभिलेख, रजिस्ट्रेशन दस्तावेज, दिन–प्रतिदिन के बाजार भाव आदि बड़ी संख्या में पी.सी. अर्थात् पर्सनल कम्प्यूटर के माध्यम से उन्हें प्राप्त होने लगे हैं। अर्थव्यवस्था के तीसरे सेक्टर सेवा–सेक्टर में रोजगार की संभावनाएँ बढ़ाकर ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि उत्पादन पर निर्भरता कम ही की जा सकती है एवं परस्पर सहायता के लिए नये आयाम विकसित कर ग्रामीण विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।''

प्रस्तावना

भारतीय कृषि में व्यापक आधार पर प्रच्छन्न बेरोजगारी विद्यमान है। 20 दिसम्बर 1954 को देश के तत्कालीन वित्तमंत्री सी.डी. देशमुख ने लोकसभा में अपने वक्तव्य के दौरान कहा था कि कृषि में लगभग डेढ़ करोड़ लोग फालतू हैं। इस वक्तव्य का सांख्यिकीय या सैद्धान्तिक आधार क्या था, यह कोई नहीं जानता परन्तु इस पर विश्वास कर लिया जाए तो कहा जायेगा कि छठें दशक के दौरान कृषि जनसंख्या का लगभग 10 प्रतिशत प्रच्छन्न रूप से बेरोजगार था।

पिछले दो दशकों में कुछ अर्थशास्त्रियों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भारत के कृषि क्षेत्र में फालतू श्रम की अवधारणा निर्मूल है अर्थात् कृषि में प्रच्छन्न बेरोजगारी नहीं है। इस विचारधारा की पहली बार अभिव्यक्ति टी.डब्ल्यू. शुल्ज के एक अध्ययन से हुआ। शुल्ज इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि यदि कृषि में से कुछ श्रम को हटा लिया जाए तो उत्पादन में गिरावट आयेगी।[1] शुल्ज के इस अध्ययन का आलोचनात्मक मूल्यांकन करते हुए ए.के. सेन ने यह सिद्ध किया है कि शुल्ज के निष्कर्षों को अधिक गंभीरता से नहीं लिया जा सकता।[2] परन्तु फिर भी कुछ अर्थशास्त्री आज भी ऐसे हैं जो प्रच्छन्न बेरोजगारी के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते हैं कि सीमान्त उत्पादकता बाजार में प्रचलित मजदूरी दर से भी अधिक हैं।

योजना आयोग और अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रकाशित आंकड़ों से इसके विपरीत जानकारी मिलती है जिसके अनुसार अर्थव्यवस्था के तृतीय सेक्टर यानी विभिन्न सेवाओं में 50 प्रतिशत से अधिक संख्या में लोग रोजगार पा रहे हैं, प्राथमिक सेक्टर यानी कृषि एवं सहायक कार्यों में 30 प्रतिशत और

* अतिथि विद्वान (वाणिज्य), शा0 महावि0 व्यौहारी जिला शहडोल (म0प्र0)–484774

उत्पादक द्वितीय सेक्टर में केवल 15 से 20 प्रतिशत लोग कार्यरत हैं। इसका अर्थ है कि देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए पर्याप्त 208 मिलियन टन (वर्ष 2000–2001) वार्षिक खाद्य उत्पादन में मात्र 30 प्रतिशत सक्षम हैं शेष लोग जो ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं, वे बेरोजगार हैं या पूर्णकालिक कार्य में नहीं लगे हैं अथवा निर्माण एवं सेवा सेक्टर से जुड़कर रोजगार पा रहे हैं, यानी रोजी–रोटी का अपना जुगाड़ करने से स्वरोजगारो की श्रेणी में गिने जा सकते हैं। निःसंदेह कृषि को छोड़कर रोजी–रोटी के सीमित संसाधन ही ग्रामीण लोग अपने लिए खोज सके या जुटा सके हैं।

लघु एवं कुटीर उद्योग में रोजगार के अवसरों की पर्याप्त संभावनाएँ हैं। रोजगार के अवसरों की संभावनाओं को एक सारणी के माध्यम से भी प्रदर्शित किया गया है, जो इस प्रकार अंकित हैं।

क्र.	वर्ष	कुल इकाईयां लाख में (31 दिसम्बर तक)	चालू कीमतो पर उत्पादन (करोड़ रू.)	स्थिर कीमतों पर उत्पादन (करोड़ रू.)	रोजगार (लाखों में)	निर्यात (बिलयन अमरीकी डालर)
1.	1993–94	23.9 (6.2)	2,41,648 (15.5)	2,41,648 (7.5)	139.4 (4.0)	8.07 (.....)
2.	1994–95	25.7 (7.5)	2,98,886 (23.7)	2,66,054 (10.1)	146.6 (5.2)	9.26 (14.8)
3.	1995–96	26.5 (3.5)	3,62,656 (21.3)	2,96,385 (11.4)	152.6 (4.1)	10.9 (17.7)
4.	1996–97	28.0 (5.3)	4,11,858 (13.6)	3,29,935 (11.3)	160.0 (8.4)	11.06 (1.5)
5.	1997–98	29.4 (5.0)	4,62,641 (12.3)	3,57,749 (8.4)	167.2 (4.5)	11.96 (8.1)
6.	1998–99	30.8 (4.8)	5,20,650 (12.5)	3,85,296 (7.7)	171.6 (2.6)	11.64 (–2.7)
7.	1999–00	32.1 (4.2)	5,27,887 (10.0)	4,16,736 (8.2)	178.5 (4.0)	12.51 (7.5)
8.	2000–01	33.7 (5.0)	6,45,496 (12.7)	4,50,450 (8.1)	185.5 (4.0)	13.13 (5.0)

टिप्पणी :– 1. स्थिर कीमतों पर उत्पादन से यहां तात्पर्य 1993–94 की कीमतों पर उत्पादन से हैं, 2. कोष्ठक में दिए आंकड़े पिछले वर्ष की तुलना में प्रतिशत वृद्धि दर्शाते हैं।

स्त्रोत :– Government of India, Economic Survey, 2001-02, Table - 7.15, p - 181

लघु इकाईयों की संख्या – 1993–94 में 23.9 लाख थी जो 2000–01 में बढ़कर 33.7 लाख हो गई। जहां तक लघु क्षेत्र के उत्पादन का प्रश्न है, यह 1993–94 में 241,648 करोड़ रूपए था जो 2000–01 में बढ़कर 6,45,496 करोड़ रूपए हो गया (चालू कीमतों पर)। स्थिर कीमतों पर (1993–94 की कीमतों पर) उत्पादन 1993–94 में 2,41,648 करोड़ से बढ़कर 2000–01 में 4,50,450 करोड़ रूपए हो गया।

रोजगार अवसरों का सृजन (Employment Generation) :

जैसा कि सारणी – 1 से स्पष्ट है लघु और कुटीर उद्योगों में 1993–94 में 139.4 लाख लोग कार्यरत थे। 2000–01 में इनकी संख्या बढ़कर 185.6 लाख हो गई। वस्तुतः भारत में कृषि के बाद रोजगार प्रदान करने वाला दूसरा सबसे बड़ा क्षेत्र लघु एवं कुटीर उद्योगों का है।

भारत की गंभीर बेरोजगारी की समस्या को देखते हुए लघु व कुटीर उद्योगों का महत्व स्वतः सिद्ध है। यह इसी बात से सिद्ध होता है कि जहाँ 1972 से 1987–88 के बीच सारे फैक्ट्री क्षेत्र (जिसमें बड़े आकार, मझौले आकार तथा लघु आकार की इकाईयाँ शामिल हैं) में रोजगार वृद्धि की दर 2.21 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी वहाँ लघु क्षेत्र की इकाईयों मे रोजगार वृद्धि की दर 5.45 प्रतिशत प्रति वर्ष थी।[5] यदि फैक्ट्री क्षेत्र से लघु क्षेत्र को अलग कर दिया जाए तो बांकी के फैक्ट्री क्षेत्र में 1972 से 1987–88 के दौरान रोजगार वृद्धि की 2.21 प्रतिशत प्रतिवर्ष से भी बहुत कम रह जाती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि बड़ी औद्योगिकी इकाईयाँ की तुलना में लघु इकाईयाँ में रोजगार वृद्धि की दर कहीं अधिक है। 1972 से 1987–88 के दौरान लघु क्षेत्र 20 लाख लोगों के लिए अतिरिक्त रोजगार प्रदान करने में सफल रहा। जहां तक भविष्य में रोजगार संभावनाओं का प्रश्न है, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार अवसरों और विस्तार बहुत कुछ ग्रामीण गैर–कृषि क्षेत्र में रोजगार प्रसार पर निर्भर करेगा। (ग्रामीण गैर–कृषि क्षेत्र फिलहाल 22 प्रतिशत ग्रामीण रोजगार उपलब्ध कराता है।) इस गैर–कृषि क्षेत्र का एक प्रमुख अंश विनिर्माण क्षेत्र है जिसमें कृषि पर आधारित उद्योग, वस्त्र तथा निर्माण–पदार्थों (Construction Material) में लगे उद्योग शामिल क्षेत्रों में बड़े पैमाने के उद्योगों में अधिक रोजगार प्रसार की संभावनाएँ नजर नहीं आती परन्तु लघु क्षेत्र में रोजगार अवसर पैदा करने की बहुत संभावनाएँ हैं।

1960, 1963, 1964 के उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षण से आंकड़े लेकर राम सिंह के अशर ने यह सिद्ध किया है कि लघु क्षेत्र अधिक कार्यकुशल है। उनके अध्ययन से स्पष्ट होता है कि स्थिर पूंजी के एक रूपया के निवेश के बदले लघु क्षेत्र में बड़े क्षेत्र की तुलना में ''सात गुणा'' उत्पादन होता है तथा लघु डद्योगों में एक रूपये निवेश बड़े उद्योगों की तुलना में 'तीन गुणा' से अधिक वर्धित मूल्य (Value added) का सृजन करता है।[6] इस विषय पर सबसे नया अध्ययन भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक द्वारा नेशनल कौसिल ऑफ अप्लाईड इकोनॉमिक रिसर्च की सहायता से किया गया है।[7] जहां तक रोजगार का संबंध है, लघु उद्योग पूरे औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार का लगभग 35 से 40 प्रतिशत प्रदान करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आजादी के बाद लघु व कुटीर उद्योगों का अभूतपूर्व विकास हुआ है, विशेष रूप से पिछले पन्द्रह वर्षों में इन उद्योगों ने तेज प्रगति की है। सरकार का दावा है कि ऐसा उसके प्रयासों के कारण संभव हुआ है और बहुत से अर्थशास्त्री इस दावे को स्वीकार करते हैं। परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस दावे का खण्डन

किया है। बम्बई, हैदराबाद तथा जयपुर की लघु इकाईयों का अध्ययन करने के बाद सांडेसरा कुछ निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जिन लघु उद्योगों को सहायता प्रदान की गई उनकी निष्पति बिना सहायता प्राप्त उद्योगों को सहायता प्रदान की गई उनकी निष्पत्ति बिना सहायता प्राप्त उद्योगों से बेहतर नही थी।[8] उनके अनुसार क्योंकि सहायता प्राप्त उद्योगों को सस्ती कीमतों पर पूंजी उपलब्ध कराई गई इसलिए इस पूंजी का 'अपव्यय' किया गया और कई बार श्रम के स्थान पर इसका प्रतिस्थापन किया गया, जो रोजगार उपलब्ध कराने के उद्देश्य के अनुकूल नहीं था।

सरकारी नीतियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करते हुए अरूण घोष पर पहुंचते हैं कि इन नीतियों के परिणामस्वरूप लघु उद्योगों को तो लाभ हुआ है परन्तु कुटीर उद्योगों को खास फायदा नहीं हुआ है।

अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष इस प्रकार है :–

1. बड़े शहरों और नगरों में स्थापित लघु उद्योगों को सरकारी नीति से अधिक लाभ हुआ है और इन इकाईयों का कुछ उत्पादन में हिस्सा बड़ा है।

2. वित्तीय सहायता का लाभ अधिकतर लघु उद्योगों के एक छोटे से अंश को ही हुआ है।

3. लघु उद्योगों में व्यापक पैमाने पर क्षमता का अल्प प्रयोग और औद्योगिक रूग्णता व्याप्त है।

4. आधुनिक लघु उद्योग क्षेत्र में प्रगति की दर काफी अच्छी रही है परन्तु परम्परागत हस्तशिल्प तथा ग्राम उद्योगों के लिए यह बात नहीं कही जा सकती (कच्चे माल, साख तथा विपणन इत्यादि के रूप में सहायता लघु उद्योगों की तुलना में ग्रामोद्योगों को बहुत कम प्राप्त हुई है) तथा

5. इस सबके परिणामस्वरूप, यद्यपि लघु औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार अवसरों का प्रसार हुआ है। तथापि ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त बेरोजगारी के पैमाने को देखते हुए यह नितान्त अपर्याप्त है। शहरी क्षेत्रों में भी लघु उद्योगों में रोजगार अधिकतर बड़े शहरों व बड़े नगरों में ही बढ़ पाया है।[9]

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने भी देश में रोजगार नियोजन हेतु कुछ उपायों का सुझाव दिया हैं, जो इस प्रकार है :–

1. कृषि का तीव्र एवं भौगोलिक विविधीकरण किया जाए। कृषि में आधुनिक यंत्रों, उपकरणों, विविधों का प्रयोग किया जाए। कृषि क्षेत्र में सिंचित क्षेत्र बढ़ाकर सूखाग्रस्त क्षेत्र में कृषि की उपयुक्त तकनीक अपनाकर पशुपालन और दुग्ध व्यवसाय विकसित कर कुक्कुट पालन, मत्स्य पालन को व्यापक संभावनाओं को विदोहन कर और वृक्षारोपण के सघन प्रयास द्वारा कृषिगत रोजगार में वृद्धि की जा सकती है।

2. ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत संसाधनों का विकास किया जाए। ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क, शिक्षा, स्वास्थ्य, विद्युत, पेयजल की बुनियादी सुविधाओं का विकास कर गांव में लघु–कुटीर एवं परंपरागत उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन दिया जाए, जिससे रोजगार के अवसरों में वृद्धि हो सके।

3. वर्तमान शैक्षिक पाठ्यक्रमों में उद्यमिता तत्व का नितान्त आभाव है। वर्तमान शिक्षा–प्रणाली रोजगार सृजनात्मक नहीं है। आवश्यकता है उच्चतर, माध्यमिक तथा कॉलेज और विश्वविद्यालय स्तर पर छात्रों को तकनीकी, व्यवसाय प्रबंध उद्यमिता की अवधारणा, जोखिम उठाने की क्षमता, अवसरों की पहचान, उपक्रमों की स्थापना एवं संचालन विपणन–विक्रम कला तथा कार्मिक प्रबंध जैसे रोजगारमूलक पाठ्यक्रमों के प्रशिक्षण की शिक्षित नवयुवक शिक्षा को केवल नौकरी प्राप्त करने का माध्यम न मानें, बल्कि शारीरिक श्रम करने को सदैव तैयार रहें। वे प्रधानमंत्री रोजगार आरंभ करने के लिए आर्थिक सहायता पाने का प्रयास करें।

4. सरकार को देश में प्राकृतिक संसाधनों का विस्तृत सर्वेक्षण करके उन संसाधनों का पता लगाना चाहिए जिन पर आधारित नए–नए उद्योग स्थापित किए जा सकते है। यह विदित है कि भारत में प्राकृतिक संसाधन कृषि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

5. भारत सरकार की 1991 की आर्थिक उदारीकरण की नीति के बाद देश की विदेशी कंपनियों की भरमार हो गई हैं। इन कम्पनियों द्वारा वृहद पैमाने के उद्योगों की स्थापना का काम जारी है। इन उद्योगों में आधुनिक मशीनों के माध्यम से उत्पादन किया जाता है। जिससे मानवीय श्रम का उपयोग कम होता जा रहा है जबकि देश में मानव शक्ति की कमी नहीं है। यद्यपि उदारीकरण की यह नीति जारी रहनी उचित है, किन्तु इस नीति के माध्यम से ऐसे उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए जो श्रम प्रधान हों। अनुमान है कि उतनी ही पूंजी लगाने पर लघु उद्योग वृहद उद्योग की तुलना में पांच गुना अधिक व्यक्तियों को रोजगार के अवसर प्रदान कर सकते हैं।

6. देश में सामान्य शिक्षा प्रदान करने के लिए तो शिक्षण संस्थाओं का विस्तार हुआ है लेकिन स्वरोजगार मूलक तकनीकी शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थाओं के विकास की गति धीमी रही है। आई. टी.आई. तथा टी.सी.पी.सी. जैसी प्रशिक्षण प्राप्त कर स्वरोजगार/व्यवसाय/उद्योग प्रारंभ कर सके। साथ ही जिला–स्तर पर उद्यमिता विकास कार्यक्रम (6–6 माह की अवधि के) संचालित किए जाने चाहिए।

7. बेरोजगारी उन्मूलन तथा रोजगार सृजन के लिए सरकार द्वारा संचालित कार्यक्रमों की समुचित जानकारी उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

8. स्थानीय रोजगार का दायित्व ग्राम–पंचायतों पर छोड़ दिया जाना चाहिए। ग्रामीण रोजगार योजनाओं के प्रबंधकर्ताओं को विकास का दायित्व दिया जाए तथा कार्यक्रमों की समयबद्धता सुनिश्चित की जाए।

9. बेरोजगारी भी पनपती है जब जनसंख्या आर्थिक संसाधनों की तुलना में बढ़ जाती है। हर परिवार को आज राष्ट्रीय कल्याण अपनाने की आवश्यकता है।

10. प्रारंभ से ही छात्र–छात्राओं में उद्यमिता के गुणों का विकास कर उन्हे स्वरोजगार के लिए तैयार किया जाए। स्व–रोजगार के लिए कई बार प्रेरित होने के बाद व्यक्ति सरकारी अथवा निजी नौकरी की ओर नहीं भागता, बल्कि वह उपलब्ध साधनों की ओर कदम बढ़ाता है आवश्यकता उद्यमिता तत्व के विकास एवं प्रशिक्षण की है। विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रम जैसे– स्कूटर, मोटर साइकिल मरम्मत, टी.वी., रेडियो मैकेनिक, मोटर वाइंडिग, मोबाइल लेबोरेट्री, टेलरिंग वर्कशॉप, इलेक्ट्रीशियन इत्यादि के कोर्स निश्चित रूप से स्वरोजगार के अवसरों में वृद्धि करते हैं। आवश्यकता है उद्यमिता और स्वरोजगार विकास को जनान्दोलन को रूप देने की।

11. राष्ट्रीय स्तर पर एक ठोस रोजगार नीति की आवश्यकता है, जिसके तहत् एक स्वशासित संगठन बनाया जाए जो बेरोजगारी की समस्या पर सतत् निगाह रखकर रोजगार के संबंध में विभिन्न सरकारी एवं निजी संस्थाओं का मार्गदर्शन करता रहे।

निष्कर्ष :–

आज के बदलते प्रौद्योगिकी युग में किसी देश में अर्थव्यवस्था को गतिशील एवं विकास पथ पर अग्रणी बनाए रखने के लिए मानव संसाधन पर आधारित विकास एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। मानव संसाधन विकास का सारतत्व है – मनुष्य के सर्वोत्तम को उजागर करना। यह सब उनके

ज्ञान–कौशल, क्षमता, सकारात्मक कार्य मनोवृत्ति एवं मूल्यों पर निर्भर करता है। भारत में हाल ही में मानव संसाधन विकास पर ध्यान दिया गया है। एक प्रभावी मानव संसाधन विकास कार्यक्रम का उद्देश्य एक ऐसी उपर्युक्त व्यूह रचना का प्रभावी मानव संसाधन विकास कार्यक्रम का उद्देश्य एक ऐसी उपयुक्त व्यूहरचना की निर्माण करना है जो मानवीय संसाधनों के ज्ञान–कौशल एवं क्षमताओं के स्तर को ऊँचा उठाकर उनके सहयोग को अधिकतम बढ़ा सके जिससे कि विद्यमान समस्याओं का समाधन हो तथा भावी समस्याओं का निराकरण किया जा सके।

संदर्भ सूची

1. T.W., Schulz, Transforming Traditions Agricultural (Yale University Press 1964), pp 65-70
2. A.K. Sen, "Peasants and Dualism with or without Surplus Labour", in Charan D. Wadhva (ed.), Some Problems of India's Economic Policy (New Delhi, 1977), p - 418.
3. योजना, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली। मई–2001, पेज 39–40
4. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, वाई. सुन्दर राजन– ''महाशक्ति भारत'' – 2005, प्रभात प्रकाशन (नई दिल्ली) पेज 84–86
5. Bishwanath Goldar, "Employment Growth in Modern Small Scale Industry in India". Journal of Indian School of political Economy, Vol. V.No 4, 1993, Table-5, P-658
6. Ram Singh K. Ashaer, "Small Scale Cottage Industries in India" in J.S. Uppal (ed.) India's Economic Problems (New Delhi 1987)
7. Small Industries Development Bank of India, SIDBI Report on Small Industries Sector, 1999 (Lucknow, 1999)
8. J.C. Sandesara, "Small Industry Development Programmes in India - Efficancy, Explanations and Lesson" in K.B. Suri (ed.), Small Scale Enteprises in Industrial Development: The Indian Experience (New Delhi, 1988) and J.C. Sandesara, "Small-Scale Industriasation- The Indian Eperience", Economic and Political Weekly, March 26, 1988.
9. Arun Ghosh, "Government Policies Concerning Small Scale Industries - An Appraisal", in K.B. Suri (ed.) Ibid., pp - 318-19.
10. कुरूक्षेत्र, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली, जून 2000, पेज – 43

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दर्शन की उपादेयता

❐ डॉ. रमाशंकर द्विवेदी*
❐ अंजू सिंह**

शोध सारांश

दर्शन का मूल तत्व ईश्वर की सत्ता को स्थापित करना है। सभी दर्शन प्रायः ईश्वर की सत्ता को किसी न किसी रूप में स्वीकार करते हैं। परवर्ती अवधारणा को संक्षेप में सभी दर्शनों के मत को स्थापित करते हुए आचार्य रामानुज इत्यादि के मतों को यहाँ पर दिया जा रहा है। जिससे परवर्ती अवधारणा पर प्रकाश पड़ेगा। ईश्वर का भारतीय दर्शन में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है। इसका कारण यह है कि भारतीय दर्शन पर धर्म की अमिट छाप है। ईश्वर में विश्वास को ही साधारणतया धर्म कहा जाता है। धर्म से प्रभावित रहने के कारण भारतीय दर्शन में ईश्वर के सम्बन्ध में अत्यधिक चर्चा है। ईश्वर सम्बन्धी विभिन्न मत भारतीय विचारधारा में व्याप्त हैं। ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए अनेक युक्तियों का भारतीय दर्शन में समावेश हुआ है। भारतीय दर्शन का प्रारम्भ बिन्दु ''वेद'' है। इसलिये ईश्वर सम्बन्धी विचार की व्याख्या के लिये सर्वप्रथम हमें वेद–दर्शन पर दृष्टिपात करना होगा।

वेद–दर्शन में अनेक देवताओं के विचार निहित हैं। वैदिक काल के ऋषियों ने अग्नि, सूर्य चन्द्रमा, उषा, पृथ्वी, मरुत, वायु, वरुण, इन्द्र, सोम आदि देवताओं को आराधना का विषय माना। इन देवताओं की उपासना के लिए गीतों की रचना हुई। वैदिक देवगणों का कोई स्पष्ट व्यक्तित्व नहीं है। अनेकेश्वरवाद के समान वैदिक देवगण अपनी–अपनी पृथक् सत्ता नहीं रखते। इस प्रकार वेद में अनेकेश्वरवाद के उदाहरण मिलते हैं। अनेकेश्वरवाद का अर्थ अनेक ईश्वरों में विश्वास है। अनेकेश्वरवाद वेद का स्थाई धर्म नही रह पाता है। अनेकेश्वरवाद से वैदिक धर्म का मात्र प्रारम्भ होता है।[1]

देवताओं की संख्या अनेक रहने के फलस्वरूप वैदिक काल के लोगों के सम्मुख यह प्रश्न उठता है कि देवताओं में किसको श्रेष्ठ मानकर आराधना की जाय? अनेकेश्वरवाद धार्मिक चेतना की मांग को पूरा करने में असमर्थ है। धार्मिक चेतना हमें एक ही देवता को श्रेष्ठ तथा उपास्य मानने के

* प्राध्यापक संस्कृत, शास. स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय, त्योंथर, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी, एम.ए. संस्कृत, शास. स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय, त्योंथर, रीवा (म.प्र.)

लिए बाध्य करती है। वैदिक काल में उपासना के समय अनेक देवताओं में कोई एक ही जो उपास्य बनाता है, सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। जब इन्द्र की पूजा होती है तब उसे ही महान् तथा शक्तिशाली समझा जाता है। प्रो. मैक्समूलर ने वैदिक धर्म को हीनोथीज्म कहा है। इसे अवसरवादी एकेश्वरवाद भी कहा गया है। इसके अनुसार उपासना के समय एक देवता को सबसे बड़ा देवता माना जाता है। हीनोथीज्म का रूपान्तर एकेश्वरवाद में हो जाता है। इसके अनुसार विभिन्न देवता एक ही ईश्वर के अलग–अलग नाम है। अतः वेद में अनेकेश्वरवाद, हीनोथीज्म तथा एकेश्वरवाद के उदाहरण मिलते हैं।

वेद के पश्चात् उपनिषद् दर्शन में ईश्वर का स्थान गौण प्रतीत होता है। उपनिषद् में ब्रह्म को चरम तत्व के रूप में स्वीकारा गया है। वेद के विभिन्न देवतागण पृष्ठभूमि में विलीन हो जाते हैं तथा ब्रह्म एवं आत्मा उपनिषद्–दर्शन में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करते हैं। देवताओं को यहाँ ब्रह्म का प्रकाशित रूप माना गया है। देवतागण अपनी सत्ता के लिए ब्रह्म पर निर्भर करते हैं। ईश्वर का स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अनेक देवताओं को उपनिषद् दर्शन में द्वारपाल के रूप में चित्रित किया गया है। इसमें देवताओं की तुच्छता प्रमाणित होती है।

उपनिषद् दर्शन में ईश्वर के वस्तुनिष्ठ विचार का जिसमें उपासक तथा उपास्य के बीच भेद वर्तमान रहता है, खंडन हुआ है। वृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि जो व्यक्ति ईश्वर की उपासना यह सोचकर करता है कि वह तथा ईश्वर भिन्न हैं, ज्ञान से शून्य है। यद्यपि ईश्वरवाद उपनिषद् की विचारधारा से संगति नहीं रखता है फिर भी श्वेताश्वतर तथा कठ उपनिषदों में ईश्वरवाद की झलक मिलती है। यहाँ ईश्वर को मनुष्य से पृथक् माना गया है तथा ईश्वर की भक्ति को मोक्ष–प्राप्ति का मूल साधन माना गया है।[2]

उपनिषदों में ब्रह्म के दो रूप मिलते हैं– (1) पर ब्रह्म (2) अपर–ब्रह्म । पर–ब्रह्म को ब्रह्म तथा अपर–ब्रह्म को ईश्वर कहा गया है। पर–ब्रह्म, असीम, निर्गुण, निष्प्रपंच है। अपर–ब्रह्म, इसके विपरीत, सीमित, सगुण तथा सप्रपंच है। ईश्वर को उपनिषदों में सबको प्रकाश देने वाला तथा कर्मों का अधिष्ठाता माना गया है। वह स्वयंभू तथा जगत् का कारण है। माया उसकी शक्ति है। उपनिषदों में ईश्वर को विश्वव्यापी तथा विश्वातीत दोनों माना गया है। उपनिषद् के ईश्वर विचार को जान लेने के बाद भगवद्गीता के ईश्वर विचार की जानकारी आवश्यक है। भगवद्गीता में ईश्वरवाद तथा सर्वेश्वरवाद का संयोजन पाते हैं। गीता में ईश्वरवाद तथा सर्वेश्वरवाद में वस्तुतः कोई विरोध नहीं दीखता है। गीता में विशेष रूप से 'विश्व रूप दर्शन' नामक अध्याय में सर्वेश्वरवाद का चित्र मिलता है। ईश्वर को, अक्षर, परम ज्ञानी, जगत् का परम निधान तथा सनातन पुरुष कहा गया है। ईश्वर विश्व में पूर्णतः व्याप्त है। जिस प्रकार दूध में उज्ज्वलता व्याप्त है, उसी प्रकार ईश्वर विश्व में निहित है। यद्यपि गीता में सर्वेश्वरवाद मिलता है फिर भी गीता की मुख्य प्रवृत्ति ईश्वरवाद है। ईश्वरवाद को गीता का केन्द्र बिन्दु माना गया है।

ईश्वर परम सत्य है। वह विश्व की नैतिक व्यवस्था को कायम रखता है तथा जीवों को उनके कर्मों के अनुसार सुख, दुःख प्रदान करता है। ईश्वर कर्मफल दाता है। वह सबका पिता, माता, मित्र तथा स्वामी है। वह सुन्दर तथा भयानक है। गीता के कुछ श्लोकों में ईश्वर को विश्व में व्याप्त तथा कुछ में विश्व से परे माना गया है। गीता के अनुसार ईश्वर व्यक्तित्वपूर्ण है। यद्यपि ईश्वर व्यक्तित्वपूर्ण है फिर भी वह असीम है। गीता में

ईश्वर का व्यक्तित्व एवं असीमता के बीच समन्वय हुआ है। ईश्वर उपासना का विषय है। भक्तों के प्रति ईश्वर की विशेष कृपा रहती है। वह उनके अपराधों को भी क्षमा कर सकता है। भगवान् भक्तों को समस्त धर्मों को छोड़कर अपनी शरण में जाने का उपदेश देते हैं। गीता अवतारवाद को सत्य मानती है। जब विश्व में नैतिक और धार्मिक पतन होता है तब ईश्वर विश्व में उपस्थित होता है और विश्व में सुधार लाता है। अवतारवाद गीता की अनुपम देन है।

गीता में ईश्वर को 'पुरुषोत्तम' कहा गया है। वह परम–ब्रह्म है। ईश्वर को प्रकृति और पुरुष से परे माना गया है। परम–ब्रह्म के दो स्वरूपों–व्यक्त और अव्यक्त का गीता में वर्णन किया गया है। परमात्मा के व्यक्त स्वरूप का वर्णन निम्नलिखित उद्धरणों में दीखता है। ''प्रकृति मेरा स्वरूप है।' (9/18) 'जीवात्मा मेरा ही सनातन अंग है'। (14/7) गीता में परमात्मा के अव्यक्त स्वरूप का वर्णन निम्नलिखित उद्धरण में दीखता है ''यह परमात्मा अनादि, निर्गुण और अव्यक्त है, इसलिए शरीर में स्थित रहकर भी न तो वह कुछ करता है और न लिपायमान होता है।''[3]

यद्यपि गीता में परमात्मा के दोनों स्वरूपों का वर्णन मिलता है फिर भी गीता में व्यक्त स्वरूप की अपेक्षा अव्यक्त स्वरूप को महत्त्वपूर्ण माना गया है। गीता में भगवान् ने स्पष्ट रूप में कहा है कि मेरा व्यक्त स्वरूप मायिक है तथा अव्यक्त रूप जो इन्द्रियों के अगोचर है, वही मेरा सच्चा स्वरूप है। महाभारत जिसका गीता अंश है में भी अव्यक्त ब्रह्म की अपेक्षा श्रेष्ठ माना गया है ''मेरा सच्चा स्वरूप सर्वव्यापी, अव्यक्त और नित्य है। उसे सिद्ध पुरुष पहचानते हैं''।[4]

गीता के पश्चात् भारतीय दर्शन की रूपरेखा में परिवर्तन होता है। दर्शन–सम्प्रदाय का विभाजन आस्तिक तथा नास्तिक वर्गों में होता है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त आस्तिक दर्शन तथा चार्वक, जैन, बौद्ध नास्तिक दर्शन के वर्गों में रखे गये हैं। आस्तिक–दर्शनों के ईश्वर विचार जानने के पूर्व नास्तिक–दर्शनों का ईश्वर सम्बन्धी विचार जानना आवश्यक होगा।

चार्वाक–दर्शन में ईश्वर का कोई स्थान नहीं है। वह ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करता है क्योंकि ईश्वर का कोई प्रत्यक्षीकरण नहीं होता है। ईश्वर प्रत्यक्ष से परे होने के कारण असत् है क्योंकि प्रत्यक्ष ही ज्ञान का एकमात्र साधन है। चार्वाक ईश्वर के प्रति निर्मम शब्दों का प्रयोग करता है। जब ईश्वर नहीं है तब हर बात के पीछे ईश्वर को घसीट लाना अमान्य है। ईश्वर से प्रेम करना एक काल्पनिक वस्तु से प्रेम करना है। ईश्वर से डरना भ्रम है। अतः चार्वाक अनीश्वरवाद का जोरदार समर्थन करता है।

बौद्ध–दर्शन और जैन–दर्शन में सैद्धान्तिक रूप से अनीश्वरवाद को अपनाया गया है। दोनों दर्शनों में ईश्वर के अस्तित्व का निषेध हुआ है। बुद्ध ने अपने अनुयायियों को ईश्वर के सम्बन्ध में जानने से अनुत्साहित किया है। ईश्वर से प्रेम करना एक ऐसी रमणी से प्रेम करने के तुल्य है जिसका अस्तित्व ही नहीं है। ईश्वर को विश्व का कारण मानना भ्रामक है। संसार प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम से संचालित होता है। बुद्ध ने अपने शिष्यों को ईश्वर पर नहीं निर्भर रहने का आदेश दिया। उन्होंने 'आत्मदीपो भव' का उपदेश देकर शिष्यों को आत्म–निर्भर रहने को प्रोत्साहित किया।[5]

बौद्ध–दर्शन की तरह जैन–दर्शन में भी अनीश्वरवाद पर बल दिया गया है। ईश्वरवादियों के द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए अनेक युक्तियों का आश्रय लिया गया है। जैन उन युक्तियों की त्रुटियों की ओर संकेत करता हुआ ईश्वर

के अस्तित्व को अप्रमाणित करता है। जैन –दर्शन के अनुसार ईश्वर को विश्व का स्रष्टा मानना भ्रान्तिमूलक है। ईश्वर को स्रष्टा मान लेने से सृष्टि के प्रयोजन की व्याख्या नहीं हो पाती है। साधारणतः चेतन प्राणी जो कुछ भी करता है वह स्वार्थ से प्रेरित होकर करता है। या दूसरों पर करुणा के लिए करता है। अतः ईश्वर को भी स्वार्थ या करुणा से प्रेरित होना चाहिए। ईश्वर स्वार्थ से प्रेरित होकर सृष्टि नहीं कर सकता क्योंकि वह पूर्ण है। इसके विपरीत वह करुणा से प्रभावित होकर संसार का निर्माण नही कर सकता है, क्योंकि सृष्टि के पूर्व करुणा का भाव उदय ही नहीं हो सकता। अतः ईश्वर विश्व का निर्माता नहीं है।

यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से बौद्ध–दर्शन में ईश्वर का खंडन हुआ है फिर भी व्यावहारिक रूप में ईश्वर का विचार किया गया है। महायान धर्म में बुद्ध को ईश्वर के रूप में माना गया है। बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् उन्हें ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठित पाते हैं। हीनयान धर्म अनीश्वरवादी धर्म होने के कारण लोकप्रिय नहीं हो सका। महायान धर्म ने ईश्वर के विचार को प्रस्तुत कर लोकप्रिय धर्म होने का गौरव प्राप्त किया है।

जैन–दर्शन में भी प्रत्यक्ष रूप से ईश्वर का निषेध हुआ है। फिर भी परोक्ष रूप में ईश्वर का विचार किया गया है। जैन–दर्शन में ईश्वर के स्थान पर तीर्थङ्करों को माना गया है। ये मुक्त होते हैं। जैन–दर्शन में पंच परमेष्टि को माना गया है। अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और साधु जैनों के पंचपरमेष्टि हैं। जहां तक ईश्वर विचार का सम्बन्ध है, बौद्ध और जैन दर्शनों को एक ही धरातल पर रखा जाता है। दोनों दर्शनों में अनीश्वरवाद की मीमांसा पाते हैं।

संदर्भ स्रोत

1. भारतीय दर्शन की रूपरेखा–पृष्ठ–26
2. भारतीय दर्शन की रूपरेखा–पृष्ठ–27
3. गीता 13/39
4. शा0 339, 44/48
5. भारतीय दर्शन की रूपरेखा पृष्ठ–28

अप्रकाशित मौलिक शोध-पत्र, शोध प्रबन्ध, पुस्तक समीक्षा
एवं पुस्तकों के प्रकाशन हेतु

सम्पर्क करें :

जी.एच. पब्लिकेशन

121, शहराराबाग, इलाहाबाद-211 003
e-mail : ghpublication@gmail.com
Ph. : 0532-2563028 (M) 09329225173

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

म.प्र. के डिण्डोरी एवं मण्डला जिले की बैगा जनजाति के सामाजिक एवं आर्थिक विकास का एक भौगोलिक अध्ययन

❒ डॉ. एस.पी. पाण्डेय*
❒ मनोज द्विवेदी**

शोध सारांश

निरंतर विकास किसी भी समाज के अस्तित्व हेतु एक आधारभूत आवश्यकता है जो कि सामाजिक इकाइयों के बीच स्पर्धा को जन्म देकर पारंपरिक समाज को जटिल समाज की ओर ले जाता है। कुछ समाजों में विकास की गति अति मंद होती है। कुछ में अत्याधिक तीव्र। जनजातीय समाज मंद गति से विकसित समाजों का एक स्वरूप है। जनजातीय विकास को संस्कृति के संदर्भ में देखा जाए तो जनजातीय संस्कृति समाज के लोगों के जीवन जीने का एक ढंग है और विकास इस जीवन जीने के तरीके में परिर्वतन लाने का एक प्रयास है।

अध्ययन क्षेत्र

अध्ययन क्षेत्र जिला डिण्डोरी एवं मण्डला (1998 की संयुक्त स्थिति के अनुसार) का विस्तार 22°12′ से 23°22′ उत्तरी अक्षांश तथा 79°57′ से 81°25′ पूर्वी देशांन्तर के मध्य है। इसका विस्तार उत्तर से दक्षिण 96 कि.मी. तथा पूर्व से पश्चिम 122 कि.मी. है। इसका संयुक्त रूप से कुल क्षेत्रफल 13638 वर्ग किमी. है। चित्र क्रमांक 1.1 एवं चित्र क्रमांक 1.2 के अनुसार अध्ययन क्षेत्र की सीमा क्रमशः उत्तर में जबलपुर तथा उमरिया जिला, दक्षिण में बालाघाट और छत्तीसगढ़ राज्य, पूर्व में अनूपपुर एवं पश्चिम में शिवनी तथा जबलपुर जिला स्थित है। अध्ययन क्षेत्र में अनेक धरातलीय विभिन्नतायें दृष्टिगोचर होती हैं। यहाँ पर्वत श्रेणियाँ, मैदान, घाटियाँ तथा पठार आदि सभी स्थलाकृतियों का मिश्रित स्वरूप मिलता है। परन्तु सामान्यतया विच्छेदित पठार इसकी मुख्य विशेषता है। संरचना एवं उच्चावच के आधार पर अध्ययन क्षेत्र को निम्नलिखित भौतिक इकाईयों में विभक्त किया गया है– (1) निवास का पठार, (2) पूर्व की पहाड़ियाँ, (3) रायगढ़–बिछिया का पठार, (4) हवेली का मैदान।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य मध्यप्रदेश के डिंडोरी एवं मंडला जिले की बैगा जनजाति के सामाजिक एवं आर्थिक विकास का

* प्राध्यापक–भूगोल, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म0प्र0)
** शोध अध्येता–भूगोल, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म0प्र0)

भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करना है। स्पष्ट है कि अध्ययन की प्रकृति सामाजिक एवं आर्थिक विकास से संबंधित है। चूँकि बैगा जनजाति भारत की सर्वाधिक पिछड़ी एवं समस्याग्रस्त अनुसूचित जनजातियों में से एक है। अतः बैगा क्षेत्र के अध्ययन से प्राप्त परिणामों के आधार पर वहाँ की वास्तविक स्थिति की पहचान की जा सकेगी। आवश्यकतानुसार उपाय किये जा सकेंगे जिससे व्यावहारिक विकास योजनायें बनाने में मदद मिल सकेगी। अध्ययन क्षेत्र जो की मण्डला एवं डिण्डोरी जिले के बैगा बाहुल्य क्षेत्र हैं, के बैगा जनजाति की सामाजिक तथा आर्थिक विकास से सम्बन्धित समस्याओं के बारे में जानकारी स्वयं क्षेत्रीय सर्वेक्षण एवं साक्षात्कार के माध्यम से पता करने पर वास्तविक समस्याओं का आंकलन किया जा सकेगा। वास्तविक समस्याओं की पहचान होने पर इनमें सुधार के लिये व्यावहारिक योजना बनाने तथा उन्हें सतही स्तर पर क्रियान्वित करने में मदद मिलेगी। वर्तमान समय में भी कई विकास योजनायें संचालित हैं किन्तु उनमें कमी यही रही है कि वे व्यावहारिक से कहीं अधिक सैद्धांतिक रही है तथा उनके नियोजन में भी कमी रही है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत शोध–प्रबंध से बैगा जनजाति के सामाजिक संगठन, रीति–रिवाज, मान्यताओं एवं सामाजिक मूल्यों की भी जानकारी प्राप्त होगी। जिससे उनके सामाजिक संगठन एवं सांस्कृतिक लक्षणों में हो रहे बदलावों का अध्ययन किया जा सकेगा। किसी जनजाति के लिए विकास योजना तैयार करते समय उस जनजातीय की संस्कृति को समझना बहुत आवश्यक होता है। अतः अध्ययन से नियोजन प्रक्रिया में आवश्यक सुधार किये जा सकेंगे।

परिकल्पनाएँ : प्रस्तुत अध्ययन की प्रमुख परिकल्पनाएँ निम्नानुसार हैं :–

(1) प्राथमिक परिकल्पना यह है कि अनुसूचित जनजाति का अनुपात जहाँ उच्च है, वहाँ आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता न्यून है;

(2) बैगा जनजाति की एक विशिष्ट संस्कृति है एवं यह जनजाति सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रही है;

(3) बैगा जनजाति में परिवर्तनों को पूर्णतः सकारात्मक या नकारात्मक नहीं कहा जा सकता है;

(4) भौगोलिक तत्व मानव समाज विशेषकर जनजातीय समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं;

(5) बैगा जनजाति की धार्मिक मान्यताओं में परिवर्तन हुआ है;

(6) बैगा जनजाति की आर्थिक एवं व्यावसायिक गतिशीलता में परिवर्तन हो रहा है;

(7) मण्डला एवं डिण्डोरी को अलग–अलग जिले नहीं, बल्कि एक ही भौगोलिक इकाई मानकर अध्ययन किया गया है;

(8) अंतिम परिकल्पना यह है कि क्षेत्र के लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए व्यवस्थित नियोजन द्वारा आधारभूत सुविधायें सुनिश्चित कराना है।

विधि तंत्र

प्रस्तावित शोध–प्रबंध में डिण्डोरी एवं मण्डला जिले को एकल भौगोलिक इकाई मानकर वहाँ के सर्वाधिक बैगा आबादी वाले दस प्रतिशत गाँवों से चयनित 164 परिवारों का अध्ययन किया जायेगा। बैगा जनजाति के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के भौगोलिक मूल्यांकन के लिए बैगा परिवारों के विकास के सूचकों एवं निर्धारकों से संबंधित जानकारी एवं आंकड़ों के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया जायेगा। प्राप्त आंकड़ों का

सरलीकरण सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग कर विश्लेषण एवं प्रतिवेदन तैयार किया जावेगा। तुलनात्मक अध्ययन एवं क्षेत्रीय विषमता स्पष्ट करने हेतु आंकड़ों की सहायता से मानचित्रों एवं आरेखों की रचना की जायेगी। बैगा जनजाति के विकास से संबंधित योजनाओं एवं अन्य आवश्यक जानकारियों के लिए बैगा विकास प्राधिकरण मण्डला एवं बैगा विकास प्राधिकरण डिण्डोरी से प्राप्त बुलेटिन तथा आंकड़ों का अध्ययन किया जायेगा। तथा उनकी समीक्षा के आधार पर बैगा विकास की समस्याओं तथा नियोजन प्रक्रिया में कमियों का पता लगाया जायेगा। इसके अलावा समय समय पर आदिवासी विकास संस्थान भोपाल से प्रकाशित पत्रिकाओं, लेखों एवं अन्य स्त्रोतों का अध्ययन किया जायेगा।

जनजाति अभिप्राय एवं परिभाषा

भारत के संविधान के अनुच्छेद 366 (25) के तहत अनुसूचित जनजातियों को इस प्रकार परिभाषित किया गया है– ''संविधान की धारा 342 के तहत आने वाली अनुसूचित जनजातियों के समान जनजातियाँ या जनजातीय समुदाय या ऐसी जनजातियों या जनजातीय समुदायों के समूह अनुसूचित जनजातियों की श्रेणी में आते हैं''। संसद कानून बनाकर किसी भी जनजाति या जनजातीय समुदाय या उसके किसी समूह को अनुसूचित जनजातियों की सूची में जोड़ सकती है या हटा सकती है। अनुसूचित जातियों की सूची राज्य विशेष के बारे में है। आवश्यक नहीं कि किसी एक राज्य में अनुसूचित जनजाति घोषित समुदाय दूसरे राज्य में भी अनुसूचित जनजाति मानी जाए।

जनजातीय विकास योजनायें

स्वतंत्र भारत में जनजातीय विकास कार्यक्रमों को देश की पंचवर्षीय योजना नीतियों के अनुरूप समाहित किया गया। सन् 1950 ई0 में योजना आयोग का गठन किया गया था। यह एक उच्चतम केन्द्रीय संस्था है। जिसके माध्यम से संपूर्ण देश में विकास योजनाओं का कार्यान्वयन होता है। विभिन्न राज्यों से इसका संपर्क राष्ट्रीय विकास परिषद् के द्वारा रहता है। संविधान के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुये आरम्भ से ही ग्रामीण विकास को प्रमुखता दी गयी है। इसी संदर्भ में सबसे पहले उत्तर प्रदेश के इटावा, हरियाणा के निलोखरी तथा फरीदाबाद में चलाये गए पायलट प्रोजेक्ट 1952 में स्थापित सामुदायिक विकास परियोजनाओं के आधार थे।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–56) का अभिन्न अंग सामुदायिक विकास परियोजनाएं थीं। आने वाले वर्षों में यही राष्ट्रीय प्रसार सेवा के माध्यम से सम्पूर्ण ग्रामीण भारत में फैला।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956–61) में 'विकास का समाजवादी ढाँचा' का दृष्टिकोण अपनाया गया अर्थात् विकास के एक ऐसे ढांचे को बढ़ावा देने का प्रयास किया गया जिससे निजी लाभ के वजाय सामाजिक लाभ और आय की समरूपता बनायी जा सके। वास्तव में जनजातियों समेत निर्बल वर्गों की बात इसी योजना अवधि में उठाई गयी।

उपरोक्त दृष्टिकोण का व्यावहारिक रूप तीसरी पंचवर्षीय योजना अवधि (1961–66) में दिया गया है। खाद्यान्न उत्पादन में बल देने के लिये जिला स्तर पर सघन कृषि कार्यक्रम योजना में अंगीभूत किये गये। आने वाले वर्षों में अधिकाधिक जिलों में सघन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम चलाये गये।

कतिपय कारणों से चौथी योजना वर्ष 1966 से शुरू नहीं हो पायी। इस कारण 1966–69 में तीन वार्षिक योजनायें बनीं। चौथी योजना में विकास की गति तीव्र करने का लक्ष्य था। समानता एवं सामाजिक न्याय संबंधी कार्यक्रम बनाये गये।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना अवधि (1974–1979) में विकास का मुख्य मुद्दा, 'निर्धनता निवारण' और 'आत्म निर्भरता' था। इसी के तहत अगले वर्षों में सघन कार्यक्रमों का उदय हुआ। उदाहरणार्थ वर्ष 1980 में समन्वित जनजातीय विकास परियोजना का सूत्रपात हुआ जो अभी भी क्रियाशील है।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980–1985) का मुख्य लक्ष्य गरीबी हटाना था। इसी के अनुरूप कार्यक्रम बने सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–1990) में खाद्य उत्पादन, रोजगार और उत्पादकता बढ़ाने की नीतियों एवं कार्यक्रमों पर बल दिया गया ।

देश में परिवर्तित राजनीतिक घटनाओं के कारण आठवीं पंचवर्षीय योजना वर्ष 1990 से नहीं प्रारंभ हो सकी। इसे 2 अप्रैल 1992 से लागू किया। अतएव 1990–91 और 1991–92 के लिए दो वार्षिक योजनाएं बनीं। इसी अवधि (1990–92 और 1992–97) में योजना को नयी दिशा देने की बात उठायी गयी है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में इस बात पर जोर दिया गया कि अनुसूचित जनजाति और समाज के अन्य वर्गों के विकास में जो अंतर है उसे कम किया जाय ताकि इस अविकसित वर्ग को भी बाकी वर्गों के स्तर तक विकसित किया जा सके। योजना में न सिर्फ उनके शोषण से बचाव पर ध्यान देने की बात है, बल्कि उनके अधिकारों, जमीनी और उनके भुगतान संबंधी मामलों पर भी ध्यानाकर्षण हुआ है।

नौवीं योजना में भी आठवीं योजना के कार्यों को और तीव्रता मिली। अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा के बारे में ध्यान दिया गया और शिक्षा के समानान्तर रोजगार के अवसर की उपलब्धता पर लक्ष्य किया गया। विद्यालयों का निर्माण, पानी की व्यवस्था, शौचालयों की व्यवस्था, प्रयोगशाला की व्यवस्था आदि पर ध्यान केंद्रित किया गया। घर बनाने के लिये निःशुल्क जमीन का पट्टा, विद्युत व्यवस्था, पानी की व्यवस्था, शव दफनाने के लिये जमीन, आरक्षण आदि प्रवधान किये गये।

दसवीं पंचवर्षीय योजना में नौवीं योजना के निष्कर्षों द्वारा ही दिशा मिली। इसमें कुछ शासकीय कार्यक्रमों के सहारे जनजातीय समुदाय के शोषण, उनकी गरीबी, कर्ज आदि समस्याओं के निवारण का प्रयास 9वीं योजना में किया गया था लेकिन सफलता नही मिली। अतः दसवीं योजना में मुख्य ध्यान इन्हीं समस्याओं पर था।

ग्यारहवीं योजना में जनजातियों के समग्र सशक्तीकरण पर बल दिया गया और इसके लिये पाँचवी अनुसूची के तहत जनजातीय उपयोजना 1976, जनजातीय सहभागिता जनजातीय प्रबंधित विकास प्रक्रिया और आत्मनिर्भर होने के बिंदु ध्यान में रखे गये।

बैगा जनजाति की अर्थव्यवस्था की मूल विशेषताएं :–

1. बैगा परिवार में 'मुट्ठी चावल' की परम्परा से यह ज्ञात होता है कि बैगा भविष्य के प्रति सचेत रहते हुये संचयन पर बल देते हैं।

2. बैगा जनजाति में लाभ की प्रवृत्ति का अभाव होता है।

3. बैगा जनजाति का आर्थिक स्तर जीवन निर्वाह के स्तर पर सीमित है।

4. कृषि में तकनीकी ज्ञान अत्यंत अल्प है। किन्तु बाहय जगत से मेल–जोल के कारण वे कुछ स्तर तक बेहतर कृषि के योग्य हो गये हैं।

5. आर्थिक क्रियाओं में धर्म का समावेश सीमित है।

6. आर्थिक क्रियाओं में महिलाओं की भागीदारी पुरुषों की तुलना में अधिक है।

7. बैगा जनजाति की आर्थिक क्रियाएं निश्चित भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित हैं।

8. बैगा जनजाति की आर्थिक क्रियाओं में स्थानीय बाजार का विशेष स्थान है। जलाऊ लकड़ी, शहद, रस्सी आदि का विक्रय आम तौर पर वे स्थानीय बाजार में करते हैं।

9. बैगा समाज में सामूहिकता व सहकारिता उपस्थित है।

10. बैगा समाज में व्यक्तिगत व सामूहिक दोनों ही तरह की संपत्ति पाई जाती है। बैगा समाज में कुशलता या अकुशलता का कोई विशेषीकरण नहीं है।

शासकीय योजनाओं के क्रियान्वयन से बैगा जनजातियों की आर्थिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। आर्थिक परिवर्तन के कुछ अन्य प्रमुख बिन्दु निम्न हैं:–

(1) खान–पान एवं आवास की स्थिति में सुधार :–

बैगा जनजाति के लोग घास–फूस की झोपड़ी बनाकर निवास करते थे तथा भोजन में मुख्यतः जंगली कन्दमूल, फल, महुआ, मक्का, ज्वार एवं पेज जैसी वस्तुओं का उपयोग करते थे। आज बैगा परिवार खपरैल मकानों में निवास करते हैं तथा दुर्गम स्थानों की जगह पर गाँव एवं टोला/पारों में निवास करते हैं। भोजन में चावल, गेहूँ, जैसे अनाज का सेवन करते हैं तथा आलू, टमाटर, भाटा, गोभी इत्यादि सब्जी का भी उपयोग करते हैं। स्पष्ट है कि इनकी क्रय शक्ति में वृद्धि हुई है जिसके परिणाम स्वरूप इनके द्वारा अच्छे अनाजों एवं भोजन में सब्जी का उपयोग किया जाता है। अब वे पहले से तुलनात्मक रूप से अच्छे मकानों में रहते हैं, यद्यपि इनके मकान छोटे होते हैं।

(2) वस्त्राभूषण की स्थिति में सुधारः–

बैगा जनजातियों द्वारा वस्त्र में पुरुषों द्वारा लंगोटी एवं महिलाओं द्वारा धोती का उपयोग किया जाता था। आज बैगा पुरुषों द्वारा पैंट–शर्ट एवं अन्य सिन्थेटिक वस्त्रों का उपयोग किया जाता है तथा महिलाओं द्वारा साड़ी, पेटीकोट, ब्लाउज का उपयोग किया जाता है। यद्यपि अन्दरूनी क्षेत्रों में और बूढ़ी महिलाओं द्वारा अभी भी पेटीकोट एवं ब्लाउज का उपयोग बहुत कम किया जाता है। महिलाओं द्वारा आधुनिक मेटलिक पालिश्ड आभूषणों–मंगलसूत्र, चैन, पायल, टप्स इत्यादि का उपयोग किया जाता है; जो शहरी क्षेत्रों के आस–पास के गाँवों में अधिक है। इस प्रकार बैगा महिलाओं के गोदना का स्थान अब उक्त आभूषणों ने ले लिया है तथा गोदना गोदाने का प्रचलन बहुत कम हो गया है। उक्त परिवर्तन आर्थिक स्तर में सुधार एवं आधुनिकता के बढ़ते प्रभाव के परिचायक हैं।

(3) परिसम्पत्तियों के स्वरूप में परिवर्तन :–

बैगा जनजाति के लोग मिट्टी के पात्रों में भोजन पकाते थे तथा दोना पत्तल में भोजन करते थे आज सामन्य रूप से लगभग हर घर में एल्यूमीनियम एवं स्टील के वर्तन पतीले, गंजे, थाली इत्यादि देखने को मिलते हैं। पानी के लिये घड़े का ही उपयोग करते थे। बाल्टी घरों में ढूँढ़ने से भी नहीं मिलती थी जो आज 90 प्रतिशत घरों में उपलब्ध है। कुछ घरों में टी.वी., रेडियो, साइकिल आदि भी पाये गये हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि बैगा जनजातियों की आर्थिक स्थिति में तेजी से सुधार हुआ है।

(4) प्रति व्यक्ति वार्षिक आय में वृद्धि–

बैगा जनजातियों की वार्षिक आय की स्थिति में तुलनात्मक दृष्टि से काफी सुधार हुआ है। बैगा परिवारों की आय में भी वृद्धि हुई है तथा शिक्षा के प्रति उनमें जागरुकता आई है।

बैगा जनजातियों के रहन–सहन, खान–पान एवं पहनावे में काफी परिवर्तन आया है। वर्तमान सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव उनमें स्पष्ट रूप से

परिलक्षित होता है। आज पैन्ट–शर्ट पहने बैगाओं को देखा जा सकता है। 10–15 वर्ष पहले यह दुर्लभ था। अभिकरण क्षेत्र के बैगाओं के पास कृषि भूमि का अभाव है फलस्वरूप कृषि के क्षेत्र में इनकी प्रगति अवश्य उल्लेखनीय नहीं पाई गई। भूमि समतलीकरण, डीजल पम्प वितरण एवं उद्यानिकी की योजनाओं का क्रियान्वयन वर्ष 2011–2012 से मुख्य रूप से प्रारम्भ की गई; जिसके परिणाम आगामी वर्षों में परिलक्षित होंगे।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि राज्य शासन एवं केन्द्र शासन द्वारा जनजातियों के लिये संचालित योजनओं के क्रियान्वयन से बैगा जनजातियों के रहन–सहन, खान–पान, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों में परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है। यद्यपि अभी भी यह जनजाति विकसित जातियों की तुलना में पीछे है तथा विकास के उस स्तर को वह प्राप्त करने में असमर्थ रहे जो शासन एवं शासकीय योजनाओं के क्रियान्वयन का लक्ष्य रहा। इसका प्रमुख कारण परिवार मूलक कार्यक्रमों में हितग्राहियों का चयन सही न होना। मैदानी कर्मचारियों में कार्य के प्रति समर्पण का अभाव एवं स्वयं हितग्राहियों की उदासीनता परिलक्षित हुई।

सुझाव :–

मण्डला एवं डिण्डोरी जिले में निवासरत विशेष पिछड़ी जनजाति बैगा का सर्वांगीण विकास करने तथा उन्हें जिले की अन्य विकसित जनजातियों के समकक्ष लाने हेतु निम्नानुसार सुझाव हैं–

(1) बैगा विकास अभिकरण का प्रशासनिक सुदृढ़ीकरण किया जाये,

(2) स्वसहायता समूहों के माध्यम से लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास,

(4) सिंचाई स्त्रोतों का विकास कर कृषि एवं उद्यानिकी की योजनाओं को प्राथमिकता दी जाये,

(5) बैगा महिलाओं के लिये रोजगारमूलक योजनाओं का क्रियान्वयन,

(6) बैगा जनजातियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के विपणन की समुचित व्यवस्था,

(7) बैगा विकास अभिकरण क्षेत्र की प्राथमिक–माध्यमिक शालाओं का आश्रम शालाओं में परिवर्तन,

(8) अभिकरण क्षेत्रान्तर्गत पदस्थ अधिकारियों/कर्मचारियों को प्रशिक्षित किया जाये,

(9) अभिकरण क्षेत्रान्तर्गत लैम्पस का सुदृढ़ीकरण,

(3) आय सृजनात्मक योजनाओं का क्रियान्वयन,

(10)चिकित्सा सुविधाओं का विकास,

(12) मूल्यांकन पर आधारित रोजगार सुविधाओं का विकास,

(13) बैगा साक्षरता में वृद्धि हेतु पाठ्यक्रमों में परिवर्तन,

(14) मद्यपान को नियंत्रित करने हेतु शराब बनाने की दी गई छूट को समाप्त किया जाना,

(15) भूमि सुधार योजना लागू कर कृषि तथा उद्यानिकी की आधुनिक तकनीक का विकास करना,

(16) स्वसहायता समूहों के माध्यम से लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास करना,

किसी भी लक्ष्य को पूर्ण करने के लिये जन सहयोग की नितांत आवश्यकता होती है। यदि जन सहयोग के साथ उपरोक्त सुझावों को ध्यान में रखकर विशेष पिछड़ी जनजाति बैगा के विकास की योजनायें संचालित की जायें तो इससे बैगा जनजातियों के विकास को एक नई दिशा एवं गति मिलना अवश्यंभावी है तथा इन्हें जिले के अन्य विकसित जनजातियों के समकक्ष लाया जा सकता है।

संक्षेप में कहा जाए तो जनजातीय क्षेत्रों तथा जनजातियों के विकास के प्रयास तभी सार्थक होंगे जब वे शिक्षित होंगे। सरकार को चाहिए कि

वे जनजातियों के विकास के साथ–साथ उनके ''समग्र विकास'' पर ध्यान दें और ये कार्य उनकी स्थानीय परंपरा, हस्तशिल्प और क्षेत्रीय संसाधनों को सुरक्षित रखते हुए करना होगा तभी सही मायने में हम जनजातियों के जीवन में सकारात्मक भूमिका निभा पाएंगे। विध्वंसकारी विकास से हम केवल अपनी बहुकीमती सांस्कृतिक विरासत को खो ही सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. अग्रवाल, कन्हैयालाल (1980) विन्ध्य प्रदेश का ऐतिहासिक भूगोल।
2. इग्नू, भारत में समाज भाग–6, दिल्ली।
3. उप्रेती, एच. सी., (1970) भारतीय जनजातियाँ, ओरियंटल प्रकाशन।
4. उपाध्याय, विजयशंकर एवं मिश्रा, विजय प्रकाश (1996) भारत की जनजातीय संस्कृति।
5. एल्विन वी., (1939) द बैगा, जॉन मुर्रे, लन्दन।
6. एम., अखिलेश, सामाजिक मानवशास्त्र।
7. कुरुक्षेत्र 2010।
8. गुप्ता, एम. सी. तथा शर्मा, डी.डी., समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन।
9. चौरसिया, विजय (2004) प्रकृति पुत्र बैगा– म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
10. जैन, श्रीचन्द्र (1980) आदिवासियों के बीच –म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
11. तिवारी, शिवकुमार, डॉ. शर्मा, श्रीकमल, (1994) मध्यप्रदेश की जनजातियां – समाज एवं व्यवस्था, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ आकादमी।
12. तिवारी, एस.के. एवं शर्मा, श्रीकान्त (2001) म.प्र. की जनजातियाँ, समाज एवं व्यवस्था – म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

ग्रह-गोचर-विचार

❒ डॉ. बृजेश नाथ ओझा

शोध सारांश

ग्रहों का शुभ–अशुभ दोनों फल मानव को भोगना पड़ता है। प्रकृति के द्वारा मानव के कर्मों के अनुसार उनके भोग्य फलों का विधान बनाया जाता है। ग्रहीय स्थिति यदि जन्मकालिक सही समय के अनुसार है तो उसका स्पष्ट फल मानव को यथेष्ट रूप में मिलता है। प्रकृति और मानव का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। अस्तु ग्रह और मानव जीवन भी अभिन्न है।

होरा शास्त्र में जन्मकालीन समय, नक्षत्र एवं राशि के आधार पर जन्म पत्रिका का विधान किया जाता है। जन्म कालीन राशि एवं लग्न के अनुसार जन्माङ्ग का निर्माण कर जन्म पत्रिका की राशि लग्न के आधार पर तनु, धनादि द्वादश भावों में ग्रह का स्थापन किया जाता है। राशि एवं लग्न के अनुसार भावस्थ ग्रहों के अनुसार जन्म पत्रिका का फल प्रकाशन किया जाता है। ग्रह निरन्तर गतिशील रहते हैं। वे एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर गमन करते हैं। ग्रहों के गतिशील रहने से उनकी राशियों में परिवर्तन होता रहता है। नक्षत्रों एवं राशियों में परिवर्तन होता रहता है। ग्रहों के इसी परिवर्तन को गोचर विचार की संज्ञा दी गई है। ग्रहों के नक्षत्रों एवं राशियों के परिवर्तन को ही गोचर कहा जाता है। ग्रहों के आकाशीय नक्षत्र एवं राशियों के परिवर्तन को गोचर विचार कहा जाता है। जन्म कालीन नक्षत्र एवं राशियों के आधार पर ही गोचर फल का विचार किया जाता है। भावस्थ ग्रहों की स्थिति के आधार पर भी यह विचार किया जाता है। लग्न या चन्द्र राशि के आधार पर भी गोचर फल का विचार किया जाता है। इस विचार के लिए वर्ष कुण्डली का आधार लिया जाता है।

आकाश में भ्रमण करने वाले ग्रहों के बल एवं वेध सहित गोचर बल होता है। इनके शुभ एवं अशुभ फल को जानने के लिए जन्म नक्षत्र एवं जन्म राशि का विचार आवश्यक है।[1] जन्म नक्षत्र एवं राशि के आधार पर ही गोचर का विचार किया जाता है। जन्म कालीन राशि से तीन, छः, दसवें तथा ग्यारहवें स्थान में सूर्य यदि ग्रहों से विद्ध न हो तो शुभ फल देता है। शनि से भिन्न अन्य ग्रह यदि नौ, बारह, पाँच तथा चतुर्थ स्थान में स्थित हो तो बेध होता है। यथा–

* विभागाध्यक्ष (संस्कृत), श्रीयुत् महाविद्यालय, गंगेव, जिला- रीवा (म.प्र.)

त्रिषडेकादशे सूर्यः शुभदो ग्रहैर्न विद्धश्चेत्।
नवरिःफात्मजजलगैः स्वबलोपेतैर्विसूर्यसूतैः।।[2]

जन्म राशि या लग्न से चन्द्र एकादश, दसवें, पहले, सातवें, तीसरे तथा छठवें स्थान में बली होता है। यह आठवें, चतुर्थ, पाँचवें, नौवे तथा बारहवें स्थान में स्थित ग्रहों से विद्ध होता है। किन्तु बुध से चन्द्र का वेध नहीं होता है।[3] जैसे– जन्मकालीन राशि यदि मेष है तो उससे छठें, दसवें, तीसरे तथा ग्यारहवें भाव में स्थित सूर्य गोचर में शुभ माना है किन्तु अन्य ग्रह पहले, पांचवें, नौवें एवं चतुर्थ स्थान में नहीं।

चन्द्र से आठवें, चतुर्थ, पाचवें, नवें तथा बारहवें स्थान अन्य ग्रह होने से चन्द्र विद्ध हो जाता है। अतः उक्त स्थानों में अन्य ग्रह स्थित न हो। तभी चन्द्र शुभ फलद होगा। बुध से चन्द्र विद्ध नहीं होता अतः बुध कहीं स्थित हो सकता है। भौम तथा शनि तीसरे, छठवें, ग्यारहवें, भाव से शुभ होते हैं, किन्तु सूर्य को छोड़कर अन्य ग्रह सातवें, नौवें एवं पाचवें भाव में स्थित नहीं। जैसे यदि राशि वृष है तो भौम तीसरे छवें तथा ग्यारहवें स्थान में ही शुभ फलद होगा। जैसे– भौम जन्म राशि निर्दिष्ट स्थानों में शुभ फलद होगा किन्तु सातवें, नौवें, तथा पाँचवें भाव में जब कोई अन्य ग्रह न हों। सूर्य के उक्त स्थान में स्थित रहने पर भी वेध नहीं होगा। शनि भी भौम के समान गोचर स्थान में बली होता है।

बुध पहले, चतुर्थ, छठें, दसवें, ग्यारहवें स्थान में स्थित होने पर शुभ होता है। यदि चन्द्र को छोड़कर अन्य ग्रह– आठवें, बारहवें, पाँचवें तथा तीसरे स्थान में स्थित नहीं। जैसे–यदि मिथुन राशि है तो मिथुन, कन्या, वृश्चिक, मीन तथा मेष राशियों में से किसी स्थान पर स्थित होने से शुभ फलद होगा किन्तु यदि चन्द्र को छोड़कर अन्य ग्रह– आठवें, बाहरवें, पाँचवें तथा तीसरे स्थान में स्थित न हो।

जन्म राशि से पाँचवें, नौवें, ग्यारहवें, दूसरे, तथा सातवें भाव में गुरु गोचर में शुभ होता है किन्तु चतुर्थ, दशम, तथा अष्टम, बारहवें तथा तीसरे स्थान में अन्य ग्रह स्थित न हों। जैसे यदि कर्क राशि है तो गुरु, वृश्चिक, मीन, वृष, सिंह, मकर राशि में स्थित होने पर ही गोचर में शुभ होगा किन्तु यदि चतुर्थ, दशम, आठवाँ, बारहवाँ तथा तीसरा स्थान ग्रह रहित हो।

शुक्र जन्म राशि से पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें, आठवें, नौवे, ग्यारहवें तथा बारहवें स्थानों में शुभ फल देता है। किन्तु आठ, सात, एक, दस, नौ, पाँच, छः तथा तीसरे स्थान में अन्य ग्रहों के रहने से वह विद्ध हो जाता है। जैसे–जन्म राशि यदि वृष हो तो वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, धनु, मकर, मीन, मेष राशियों में शुक्र गोचर में शुभ फल देगा। किन्तु यदि वृष, कर्क, कन्या तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ राशियों में यदि अन्य ग्रह स्थित न हों तभी शुक्र शुभ फल देगा अन्यथा इन स्थानों में ग्रहों की स्थिति से शुक्र विद्ध हो जायगा, जिससे गोचर शुभ नही होगा। गोचर विचार में ग्रहों से वेधित होने पर ग्रह कुछ भी शुभ फल नहीं देते। किन्तु व्यत्यय राशि परिवर्तन तथा विपरीत वेद्य होने पर अशुभ ग्रह भी शुभ फल देते है। गोचर बल विचार में वेध का विचार आवश्यक है। अन्यथा फल विपरीत घटित होने से ज्योतिर्विद उपहास का पात्र होगा। यथा –

गोचरबलचिन्तायां ये न विंदन्ति यथा क्रमं चेति।
गोचरबलानभिज्ञा लोके यान्ति हास्यतां सुमनाः।।[4]

गोचर में भी अशुभ ग्रहों से दृष्ट होने पर शुभ ग्रह भी अशुभ फल देते हैं। जबकि पाप ग्रह भी शुभ ग्रह दृष्ट होने पर सुन्दर फल देते हैं। किन्तु शत्रु ग्रहों के देखे जाने पर सभी ग्रहों का फल निष्फल हो जाता है। ऐसी स्थिति में गोचर में ग्रहों का शुभ फल नितान्त दुर्लभ हो जायेगा। क्योंकि

ग्रहों का वेध एवं दृष्टि विचार एवं शत्रु ग्रह तथा पाप ग्रहों आदि के दृष्टि विचार से सर्वथा गोचर शुद्ध शुभ फल देने की स्थिति ही सुलभ न होगी, यथा–

अशुभेक्षितः कष्टफलः शुभेक्षितः सत्फलः खचरः।
शत्रुविलोकनसहिताः सर्वे ते निष्फलाः खचरः।।[5]

नीच राशि में गया हुआ ग्रह, शत्रु ग्रह से पराजित ग्रह, सूर्य से तिरस्कृत (अस्त ग्रह) तथा अपने शत्रु के घर में स्थित ग्रह शुभ फल देने में या अपना कार्य करने में उसी प्रकार अक्षम होते हैं– जैसे मन्त्र हत सर्प, यथा–

नीचगता रिपुविजिता रव्यभिभूताः स्वशत्रुगेहस्थाः।
भुजगा इव मन्त्रहता न भवन्ति कार्यक्षमा लग्ने।।[6]

उक्त शर्तों के अतिरिक्त गोचर में कुछ ग्रहों का विशेष फल होता है। जैसे चन्द्रमा, शुक्ल पक्ष में दूसरे, नौवें, पाँचवें स्थान में भी गोचार में शुभ फल देने वाला होता है जबकि कृष्ण पक्ष में इन स्थानों में वह निश्चित ही निर्बल या बलहीन हो जाता है। यथा–

हिमकिरणः सितपक्षे द्वितीयनवपञ्चमगोऽपि शुभः।
गोचरबलविषये वै विबलः पक्षे सितेहरे नूनम्।।[7]

राशि अथवा नक्षत्र के अन्त में स्थित ग्रह अग्रिम राशि या नक्षत्र का फल प्रदान करते हैं और वक्री हो जाने पर वही ग्रह पूर्व वाले भाव का फल प्रदान करते हैं। यथा–

भवनान्त्यगताश्च यदा धिष्ण्यान्त्यगताश्चगगनचराः।
दद्युः परभवनफलं प्राग्भवनफलं च वक्रिता ये च।।[8]

ग्रह अतीचार या वक्री होने का फल दस दिन, पाँच दिन, या तीन पक्ष पूर्व देते हैं। भौमादि ग्रह पाँच दिन पहले से ही राशि के फल प्रदान करते हैं। शनि पाँच माह पूर्व फल देता है। रवि और मंगल राशि के आदि में फल देते हैं। गुरु तथा शुक्र राशि के मध्य में फलप्रद होते हैं। शनि और चन्द्र राशि के अन्त में फल देते हैं। किन्तु बुध सदा फल देता है। यथा–

भवनादिगतौ फलदौ रविभौमौ मध्यगौ च गुरुशुक्रौ।
अन्त्यगतौ शनिशशिनौ सदैव फलदः शशांकसुतः।।[9]

इस प्रकार गोचर फल का विचार करते समय भी ग्रहों की उक्त स्थितियों का भली भाँति निरीक्षण करना आवश्यक है। अन्यथा फल पूर्ण रूप से यथार्थ नहीं होगा। सभी ग्रह चन्द्रमा के आश्रय से ही बलवान् होते हैं। अर्थात् चन्द्र का बल प्राप्त कर अन्य ग्रह बलवान होकर अपना फल प्रदान करने में समर्थ होते हैं। जैसे–इन्द्रियाँ मन के साथ होने पर ही अपने–अपने कार्य में समर्थ होती हैं। यदि मन विपरीत होता है तो कोई इन्द्रिय अपना कार्य सम्पन्न नहीं कर पाती। यथा–

हिमकरवीर्यादवीर्यं संश्रित्यैव ग्रहाश्च साध्वसाधुफलम्।
ददतीन्द्रियाणि मनसा सहितानि यथा स्वकार्यदक्षाणि।।[10]

संदर्भ स्रोत

1. वशिष्ठ संहिता (अ0 18/1)
2. वशिष्ठ संहिता (अ0 18/2)
3. वशिष्ठ संहिता (अ0 18/3)
4. वशिष्ठ संहिता (अ0 18/9)
5. वशिष्ठ संहिता (अ0 18/10)
6. वशिष्ठ संहिता (अ0 18/11)
7. वशिष्ठ संहिता (अ0 18/12)
8. वशिष्ठ संहिता (अ0 18/13)
9. वशिष्ठ संहिता (अ0 18/15)
10. वशिष्ठ संहिता (अ0 18/18)

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

रीवा जिले में स्व-सहायता समूह हेतु लाभकारी ऋण योजनाएँ

❒ डॉ. प्रभात सिंह ठाकुर*
❒ डॉ. अश्विनी कुमार पाण्डेय**

शोध सारांश

राष्ट्रीय महिला कोष रोजमर्रा की सेवाओं सहित हर तरह के काम के लिए ऋण उपलब्ध कराता है। कोष ने अपने गठन के पहले तीन साल में ही एक लाख 36 हजार 806 महिलाओं को कर्ज स्वीकृत किया है। गरीबी रेखा के नीचे जीवन–यापन करने वाली महिलाओं के जीवन में आर्थिक बदलाव लाने के कोष के प्रयासों ने उनमें नया जोश पैदा कर दिया है। राष्ट्रीय महिला कोष आमतौर पर ऐसे गैर–सरकारी संगठनों के जरिए जरूरतमंद महिलाओं को कर्ज देता है जो ऋण प्रबंध तकनीक में माहिर होते हैं। इसके अलावा समितियों के माध्यम से भी ऋण उपलब्ध कराता है। इंदिरा महिला योजना के अंतर्गत स्व–सहाय दलों को भी कोष के जरिए कर्ज मुहैया कराया जाता है।

राष्ट्रीय महिला कोष के मुख्य उद्देश्य है–गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाली महिलाओं को आमदनी बढ़ाने वाली गतिविधियों के लिए ऋण सुलभ कराना। गरीब महिलाओं के जीवन में सामाजिक आर्थिक बदलाव लाने के लिए उन्हें ऋण के रूप में सहायता देना। ऋण उपलब्ध कराने वाली सामान्य प्रणाली के बारे में संवेदनशील बनाना। महिलाओं के स्व–सहाय दलो को बढ़ावा देकर उन्हें अधिकार संपन्न बनाने की प्रक्रिया को बढ़ावा देना।

राष्ट्रीय महिला कोष ने महिलाओं में नया जोश जगाया है और वे इसमें खूब दिलचस्पी लेने लगी है। अपने गठन के तीन साल के अंदर ही कोष 15 नवम्बर 1996 तक, 129 गैर–सरकारी संगठनों के जरिए, 136806 महिलाओं को 25.54 करोड़ रुपये के कर्ज स्वीकृत कर चुका है। यही नहीं, राष्ट्रीय महिला कोष को ऋणों के लिए बड़ी तादात से अर्जियां मिल रहीं है। सबसे अधिक उत्साहजनक बात तो यह है कि ऋण–वितरण प्रणाली के संचालन के तौर–तरीकों के बारे में देश भर के गैर सरकारी संगठनों की रूचि और दिलचस्पी बढ़ी है। सइके साथ ही विभिन्न गैर सरकारी संगठनों के सहयोग और विचारों का आदान प्रदान भी होने लगा है। उत्तर भारत के

* सहायक प्राध्यापक अर्थशास्त्र, शास. महाविद्यालय, स्लीमनाबाद
* सहायक प्राध्यापक, (अ.वि.) भूगोल, शास. महाविद्यालय, स्लीमनाबाद

गैर–सरकारी संगठनों को दक्षिण भारत के संगठनों से सहयोग मिल रहा है। कई गैर सरकारी संगठनों ने तो इस क्षेत्र में नये प्रयोग किये है और उनमें सफलता भी प्राप्त की है।

रीवा जिले में वर्ष 2010–11 के लिये संभाव्यता का आकलन–

स्वयं सहायता समूहों के गठन तथा लिंकेज स्वं. सह.स. जिनके बचत खाते खोलना हैस्वं.स. स. जिनकों लिंक करना है बैंक ऋण (रू. लाख में)

550 250 300 60.50

(स्रोत–राष्ट्रीय कृषि ग्रामीण विकास बैंक रीवा कार्यालय से)

उपरोक्त आकड़ों से स्पष्ट है कि रीवा जिले में गठित स्वयं सहायक समूहों की संख्या 250 लिकेंज है। जिनकी 250 खाते खोलने बाकी है तथा 300 खाते लिंक करना है।

आमदनी की गतिविधियाँ–

राष्ट्रीय महिला कोष कृषि कार्यों, गैर–कृषि कार्यो, मूल्य–संवर्धन गतिविधियाँ और रोजमर्रा की जरूरत की सेवाओं सहित आमदनी बढ़ाने के हर तरह के काम के लिए ऋण उपलबध कराता है। खान–पान व्यवस्था से लेकर कल–कारखाने, डेरी उद्योग, दुकानदारी, फेरी लगाने, दस्तकारी का सामान बनाने, कशीदाकारी, दर्जीगिरी, बढ़ईगिरी, सुअर–बकरी–भेड़, पालन, कम्बल–गलीचे बुनने, ऊनी वस्त्र बनाने, बागवानी, ईंट निर्माण, मिट्टी के बर्तन बनाने और पत्थर तोड़ने जैसे काम आज महिलाएं कर रही है। उनका कार्य क्षेत्र बहुत विस्तृत हो चला है।

- राष्ट्रीय महिला कोष से ऋण सहायता की पात्रता – ऐसे संगठन जिन्हे बचत कराने और कर्ज देने के काम का कम–से–कम तीन साल का अनुभव हो तथा जो अपना ऋण प्रशासन कारोबार ठीक तरीके से कर रहे हो। पिछले तीन वर्षों में जिन गैर सरकारी संगठनों/संस्थाओं का कर्ज वसूली का काम ऊंचे दर्जे का रहा हो। ग्रामीण क्षेत्रों में 11,000/–रुपये वार्षिक और शहरी इलाकों से 11,800/–वार्षिक तथा पारिवारिक आमदनी वाली महिलाएं ऋण प्राप्त करने की हकदार है।
- ऋण का उद्देश्य–आमदनी बढाने वाली गतिविधियों पर 4,000/–रुपये तक के अल्प अवधि ऋण 15 महीने में लौटाने की शर्त पर दिये जाते है।
- 6,000/–रुपये तक के माध्यम अवधि ऋण तीन से पांच साल में लौटाने की शर्ते पर दिये जाते है।
- अल्प अवधि तथा माध्यम अवधि दोनों ही तरह से ऋणों पर संगठनों से आठ प्रतिशत वार्षिक दर से व्याज लिया जाता है। ये संगठन महिलाओं अथवा उनके स्व–सहाय दलों को दिये जाने वाले कर्ज के लिए 12 प्रतिशत वार्षिक से ज्यादा ब्याज नहीं ले सकते है।
- गैर सरकारी संगठनों /स्व–सहाय दलों को कुल ऋण राशि का 10 प्रतिशत अपने स्त्रोतों से व्यय करना होगा। इसी तरह कर्ज लेने वालो को भी ऋण–राशि के 10 प्रतिशत के बराबर बचत करनी होगी।
- जमानत : गैर सरकारी संगठनों को ऋण प्रदान करने के लिए करारनामा निष्पादित करना होगा और एक गारंटी डीड भी देना होगा। अन्य किसी कोलेटरल की आवश्यकता नहीं है।
- गैर सरकारी संगठनों को दिये जाने वाले कुल ऋण का एक प्रतिशत, महिलाओं के प्रशिक्षण तथा उन्हें आमदनी बढ़ाने वाले हुनर सिखाने के लिए अनुदान के रूप में दिया जा सकेगा।

राहत–

1. कर्ज लेने वाली संस्थाएं यदि समय पर महिलाओं को राशि वितरित कर देती है तो उन्हें व्याज पर एक प्रतिशत की दर से छूट दी जायेगी।

2. गैर–सरकारी संगठनों द्वारा राष्ट्रीय महिला कोष को समय पर कर्ज की अदायगी करने पर 1/2 प्रतिशत की छूट दी जाएगी।

ऋण प्रोत्साहन योजना–छोटे–गैर–सरकारी संगठनों को बढ़ावा देने के लिए ऐसे राज्यों की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है जहाँ ऐसे संगठनों के जरिए ऋण उपलबध कराने की प्रणाली अधिक विकसित नहीं हुई है। ऐसे गैर सरकारी संगठन ऋण प्रोत्साहन योजना का लाभ उठा सकते है जिन्होने गरीब महिलाओं के आर्थिक विकास के क्षेत्र में कम–से–कम तीन साल तक अच्छा कार्य किया है और जिन्हे कर्ज तथा बचत के काम का भी एक साल का अनुभव हो। ऐसे प्रत्येक संगठन को 50000/–रुपये तक के अल्पावधि ऋण 15 महीने में लौटाने की शर्त पर दिये जाते है।

छत्र छाया योजना–पात्रता की शर्तें पूरी न करने वाले गैर सरकारी संगठनों के जरिए भी राष्ट्रीय महिला कोष द्वारा महिलाओं तक पहुंच बढ़ाने के प्रयास किये जा रहे है। पर्याप्त अनुभव न रखने वाले गैर–सरकारी संगठनों को निर्धारित मानदंडों के बारे में गैर–सरकारी संगठनों, अम्ब्रेला संस्थाओं द्वारा ऋण संचालन संबंधी मार्गदर्शन देने के आश्वासन पर ऋण उपलब्ध कराया जा सकेगा।

स्व–सहाय दलों के विकास और उन्हे सुदृढ़ करने के लिए सहायता–इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ऐसे गैर–सरकारी संगठनों को बिना व्याज के कर्ज दिये जाते है जो तीन साल से पंजीकृत है और अगले एक दो वर्ष में राष्ट्रीय महिला कोष से ऋण लेने के हकदार बन सकते हैं अथवा ऋण ले चुके है। स्व–सहाय दलों के गठन उनकों बढ़ावा देने और उनके विकास के जरिए उन्हें बिना ब्याज वाले ऋण देकर आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। शर्तें पूरी होने पर ऋणों को अनुदान में भी बदला जा सकता है।

रिसोर्स संस्था–रियोर्स संस्था अर्थात् कोष की योजना का सम्यक संचालन करने में अनुभवी संस्थाएं छोटे संगठनों की पहचान करके उन्हे राष्ट्रीय महिला कोष कार्यक्रम से जोड़ने में प्रेरक की भूमिका निभाती है। वे छोटे–गैर–सरकारी संगठनों को कर्ज और बचत कार्यक्रम निरूपित करने, प्रशिक्षण देने, उनके कर्मचारियों को आवश्यक जानकारियाँ देने और उनकी प्रगति की निगरानी का काम भी करती है।

मृत्यु सहायता और पुनर्वास कार्यक्रम–

इस कार्यक्रम के तहत राष्ट्रीय महिला कोष का ऋण लेने के बाद अगर किसी महिला की स्वाभाविक या दुर्घटना में मृत्यु हो जाती है, तो उसके बकाया कर्ज को माफ कर दिया जाता है। इसी तरह अपना व्यवसाय चलाने के लिए कर्ज से खरीदे गये साज–सामान औजार, सामग्री आदि की अपूरणीय क्षति होने पर भी कर्ज माफ किया जा सकता है।

नाभिकीय एजेंसी–

इस कार्यक्रम के अंतर्गत कुछ ऐसे प्रमुख संगठनों एजेंसियों, संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करने के प्रयास किये जा रहे है, जो हो सकता है, कोष का बचत और ऋण कार्यक्रम तो नहीं चलाते मगर इस कार्य में प्रेरक की भूमिका निभा सकते है। अपने संगठित बुनियादी ढॉचे के जरिए वे संगठनों को ऋण सहायता दिलवा सकते है। बचत और कर्ज देने का काम करने की संभावना

रखने वाले गैर–सरकारी संगठनों की वे मदद कर सकते है और उनकी कर्ज की जरूरतों को पूरा करने के लिए राष्ट्रीय महिला कोष से उनका संबंध जोड़ सकते है।

आवर्ती निधि योजना–

- सहयोगी संस्थाओं को उनके अपने संसाधनों को बढ़ाने के लिए एक मुश्त धनराशि उपलब्ध कराना।
- संस्थाओं द्वारा वापस की गयी राशि को दूसरी जरूरतमंद महिलाओं को उपलब्ध कराना।
- साझेदार गैर–सरकारी संगठनों को उनके वित्तीय प्रबंध के लिए और अधिक छूट देना।
- पहले से काम कर रहे गैर–सरकारी संगठनों को वित्तीय प्रबंध का बेहतर अवसर देना और उन्हें अपनी गतिविधियों के विस्तार (विशेष रूप से ऐसे क्षेत्रों में जहाँ बचत आधारित ऋण प्रणाली अधिक लोकप्रिय नहीं है) के लिए प्रोत्साहित देना।

प्रशिक्षण विकास और जागरूकता–गैर–सरकारी को जानकारी देने तथा ऋण प्रबंध की उनकी क्षमता के विकास के लिए कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है। लोगों को राष्ट्रीय महिला कोष कार्यक्रम के बारे में जानकारी देने के लिए नाभिकीय संगठनों को जागरूकता शिविर लगाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है।

निगरानी और समीक्षा–राष्ट्रीय महिला कोष द्वारा मंजूर विभिन्न कार्यक्रमों को ठीक तरह से लागू करने और गैर–सरकारी संगठनों/कर्ज लेने वालों द्वारा पैसे के सही–सही इस्तेमाल के लिए विभिन्न कार्यक्रमों की निगरानी पर विशेष ध्यान दिया जाता है। राष्ट्रीय महिला कोष के अधिकारी और खास तौर पर नियुक्त जांच विशेषज्ञ द्वारा संस्थाओं को दिये गये ऋण के इस्तेमाल के बारे में अध्ययन करते है।

संदर्भ स्रोत

1. प्रकाशन विभाग सूचना भवन सीजीओ काम्पलेक्स लोदी रोड़ नई दिल्ली (कुरूक्षेत्र)
2. योजना, अंक–हिन्दी मासिक पत्रिका, प्रकाशन विभाग पटियाला हाउस नई दिल्ली।
3. मध्य प्रदेश का आर्थिक सर्वेक्षण 2005–06 आर्थिक एवं सांख्यिकी संचालनालय, भोपाल (म.प्र)।
4. जिला सांख्यिकीय पुस्तिका–2000, 2008, सांख्यिकीय विभाग, जिला रीवा (म.प्र)।
5. जैन, पी.सी. एवं जैन, एन. के., व्यवसाय, सरकार एवं समाज, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर।
6. सेठी, टा.टा. एवं अग्रवाल, लक्ष्मीनारायण, मुद्रा, बैकिंग एवं अन्तराष्टीय व्यापार, आगारा 2003।
7. शर्मा एन.के., आर्थिक विश्लेषणः सिद्धान्त एवं स्वरूप, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर 1989।

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

सविनय अवज्ञा आंदोलन में महिलाओं की सहभागिता
(महाकोशल के विशेष संदर्भ में)

❐ डॉ. ममता गर्ग

शोध सारांश

भारत का मुक्ति संघर्ष और भारतीय स्त्रियों का मुक्ति आंदोलन, इसी संदर्भ में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के एक प्रमुख आंदोलन सविनय अवज्ञा आंदोलन में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी के अध्ययन का एक छोटा सा प्रयास है।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भूमिका पर कई पुस्तकें लिखीं गयी हैं, जिनमें मनमोहन कौर की 'वुमेन इन इण्डियाज फ्रीडम स्ट्रगल' नई दिल्ली, 1985 में प्रकाशित, 1988 में आशारानी व्होरा की महिलाएँ और स्वराज्य' आदि। इन विभिन्न पुस्तकों में महिला भागीदारी के तीन प्रमुख स्तरों पर इंगित किया गया है–

1. सामान्य महिलाएँ – सत्याग्रह भागीदारी सीमित.

2. गॉधीजी से प्रभावित महिलाएँ – सत्याग्रह भागीदारी.

3. कुलीन महिलाएँ – जिनके परिवार राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े हुये थे.

महाकोषल क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी से निम्न निष्कर्ष कि प्रथम नगरीय क्षेत्रों में महिलाएँ गॉधीवादी विचारों से प्रभावित होकर राजनीतिक जागरूकता तथा बैतूल व सिवनी के सुदूर अंचलों में महिलाएँ जंगल सत्याग्रह में पुरूषों की बराबरी के साथ–साथ अहिंसात्मक की जगह हिंसात्मक आंदोलन की ओर अधिक अग्रसर थीं, जिसमें कुछ महिलाओं ने अपनी शहादत भी दी हैं। महाकोषल क्षेत्र में स्वाधीनता के संदर्भ में महिलाओं की जागरूकता व सहभागिता के परस्पर विरोधी आयाम निष्चित रूप से विचारणीय हैं।

भारत का मुक्ति संघर्ष और भारतीय स्त्रियों का मुक्ति आंदोलन!

क्या ये दो अलग–अलग प्रक्रियाएँ रहीं हैं? या इन्हें अलग–अलग करके देखने का कोई औचित्य है?

19वीं शताब्दी के आरंभ से जब संपूर्ण राष्ट्र में एक वैज्ञानिक चेतना झिलमिला रही थी, उस समय नारी वर्ग भी अपने अंदर उर्जा शक्ति का अहसास कर रहा था। 1857 में पहली बार पूरे देश ने विदेशी शक्ति के विरूद्ध एकजुट होकर विरोध

* विभागाध्यक्ष इतिहास, राजीव गाँधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बिकापुर (छ.ग.)

प्रदर्शन किया। नारी वर्ग इस प्रदर्शन में पीछे नही था। इस समय से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति के संपूर्ण संघर्षकाल तक नारी पुरूषों के साथ कदम मिलाकर स्वतंत्रता आंदोलनों तथा अन्य सामाजिक एवं राजनैतिक गतिविधियों में हिस्सा लेती रही, जो आज तक जारी है।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भूमिका पर कई पुस्तकें लिखीं गयी। मनमोहन कौर की पुस्तक ''वुमेन इन इण्डियाज फ्रीडम स्ट्रगल'' नई दिल्ली, 1985 को प्रकाशित हुयी। इनमें 1857 से 1947 तक के राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने वाली महिलाओं के कार्यक्रम व उनकी सहभागिता के विभिन्न पहलुओं का वर्णन है। इसी क्रम में राधाकृष्ण शर्मा की ''नेशनलिज्म सोशल रिफार्म एण्ड इण्डियन वुमेन'' दिल्ली से 1981 को प्रकाशित पुस्तक में 1921 से 1937 तक का घटनाक्रम है। इसमें राष्ट्रवाद, राजनीति एवं महिला, महिला शिक्षा, पर्दा प्रथा के विरूद्ध आंदोलन, महिला समाज सम्मेलन, उनके संगठन व गांधीजी की महिलाओं के प्रति अवधारणा आदि की विशद् व्याख्या की गयी है। ''ऑल इण्डिया वुमेन्स कांफ्रेन्स'' (1930–1935) नई दिल्ली से 1988 में आशारानी व्होरा की प्रकाशित पुस्तक ''महिलाएँ और स्वराज्य'' में महिला सम्मेलन व उनके रचनात्मक कार्यक्रम का वर्णन मिलता है।[1]

उपरोक्त अध्ययनों के आधार पर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में महिला भागीदारी के तीन प्रमुख स्तरों पर इंगित किया गया।[2]

प्रथम : वे जो सामान्य महिलाएँ जिन्होंने सत्याग्रह में हिस्सा लिया, किन्तु जो किसी भी राजनैतिक, सामाजिक संगठन में औपचारिक रूप से संबंधित नहीं थीं।

द्वितीय : वे महिलाएँ जो गॉधीवादी राजनीति से प्रभावित हो समाज सुधार के ध्येय से सक्रिय हुईं, किन्तु इनकी भागीदारी कार्य एवं क्षेत्र की दृष्टि से सीमित थी।

तृतीय : वे कुलीन महिलाएँ जिनके परिवार राष्ट्रीय आंदोलन में प्रतिबद्ध थे एवं फलतः ऐसी महिलाओं का सार्वजनिक राजनीति में प्रवेश एवं भूमिका सरल एवं स्वाभाविक माने गये।

स्वाधीनता आंदोलन में मध्यप्रांत का महाकोषल क्षेत्र अग्रणी रहा है। यह क्षेत्र जनजातीय बहुल होने के साथ–साथ अन्य समुदायों का भी प्रमुख केन्द्र रहा है। राष्ट्रीय जागरण का प्रभाव इस क्षेत्र के पुरूषों के साथ–साथ यहॉ की महिलाओं पर पड़ना स्वाभाविक था। स्वाधीनता आंदोलन में महिलाओं में इनकी भागीदारी, कार्य एवं क्षेत्र की दृष्टि से सीमित थी। राजनीतिक जागृति एवं उनकी सक्रिय भागीदारी सविनय अवज्ञा आंदोलनों के संदर्भ में देखा जा सकता है। पूरे मध्यप्रांत में अनुसूइया बाई काले नेतृत्व संभाल रही थीं। नागपुर क्षेत्र में सुमन केसकर और बरार क्षेत्र में दुर्गा जोशी सक्रिय थीं। इनके निदेशन में जगह–जगह महिला संगठन आंदोलनरत् थे।

सन् 1930 में जबलपुर की मध्यमवर्गीय महिलाओं ने द्वारिका प्रसाद मिश्र के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लिया। परन्तु महत्वपूर्ण कांग्रेस व मारवाड़ी औरतों के बीच श्रीमती गोविन्ददास द्वारा बनाया गया संबंध था, जिनका विवाह 1909 में सेठ गोविन्द दास के साथ हुआ था, 1930 में जबलपुर में महिला समाज के एक लीडर के रूप में उभरीं। सन् 1931 में 'महाकोषल महिला सेवा संघ' की अध्यक्ष बन गयी। इस संघ ने महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने के लिये प्रोत्साहित किया। सन् 1930 में इस महिला समाज ने अपने तरीके से सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लिया। जैसा कि निम्नलिखित रिपोर्ट से प्राप्त होता है –

'महिला समाज ने कपड़ा व्यापारियों को दो माह तक विदेशी कपड़े बेचने और इसके अलावा दिसम्बर तक किसी भी तरक के विदेशी कपड़ों का आयात नहीं करने के लिये मना चुकी थीं। महिला समाज ने अपने सील द्वारा विदेशी कपड़ों को सील करना शुरू कर दिया था। इस कारण शहर में विदेशी कपड़ों की बिक्री पूरी तरह से रूक गयी।'[3]

इसी आंदोलन के समय जबलपुर की कुछ महिलाओं ने शराब एवं विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना देना प्रारंभ किया। मनोरमा बाई नावलेकर, रमाबाई गुप्ता, प्यारी बाई ठकुराइन तथा कमला बेन इसमें अग्रणी थीं। इन्हें पिकेटिंग करते हुये गिरफ्तार तो कर लिया जाता था, परन्तु पुलिस द्वारा दूर ले जाकर विभिन्न स्थानों पर छोड़ दिया जाता था।[4]

25 दिसम्बर 1930 को महिलाओं की एक सभा काशी बाई कन्या पाठशाला, हरदा में आयोजित की गयी। इस सभा में सीताचरण दीक्षित, दादाभाई नाईक, महेश दत्त मिश्रा एवं गुलजार सिंग की गिरफ्तारी की निंदा की गयी और राष्ट्रीय झण्डा हाथ में लिये व राष्ट्रीय गीत गाते हुये विद्यावती बाजपेई के नेतृत्व में महिलाओं के बड़े दल ने शहर की सड़कों पर मार्च किया। यह एक अनोखी घटना थी। वह समय आ गया जब महिलाओं ने घर की चारदिवारी से बाहर निकलकर व मंच में खुले रूप से आकर सविनय अवज्ञा आंदोलन को सफल बनाने, पुरूषों को नेतृत्व के लिये प्रोत्साहित किया। यह अपनी तरह का सचमुच बदला हुआ दृष्टिकोण था।[5]

जबलपुर में अलफ खॉ की तलैया में जवाहर दिवस मनाया गया। इस सार्वजनिक समारोह में 300 महिलाओं ने भाग लिया। इस सभा में पुलिस ने लाठी चार्ज किया, जिससे एक बालिका घायल हो गयी।[6]

जबलपुर के अतिरिक्त महाकोषल क्षेत्र के जंगल सत्याग्रह में यहॉ की महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। बैतूल जिले में सातल देही ग्राम में 20 अगस्त 1930 को ठाकुर मोहकम सिंह की पत्नि मनकी बाई ने सैकड़ों स्त्रियों एवं पुरूषों को अपने साथ लेकर जंगल सत्याग्रह किया, मोहकम सिंह गिरफ्तार कर लिया गया। पुलिस के हस्तक्षेप करने से एकत्रित जनजाति भड़क उठे थे। भीड़ को नियंत्रित न होते देखकर पुलिस को गोली चलानी पड़ी, जिसमें अनेक जनजाति स्त्री–पुरूष घायल हो गये और कोबा नामक व्यक्ति की घटना स्थल पर मृत्यु हो गयी। सातल देही में पुलिस एवं सत्याग्रहियों में संघर्ष का मूल कारण यह था कि एक अंग्रेज सिपाही ने एक जनजाति महिला के साथ दुर्व्यवहार किया था, जिससे महिलाओं का झुण्ड उस सिपाही को मारने के लिये पहुॅचा एवं हंसिये से उस सिपाही पर वार किये। इतने में वहॉ पर नागपुर से सेना पहुॅची और गोलीबारी शुरू कर दी।[7]

सिवनी जिले के जंगल सत्याग्रह में तुरिया जंगल सत्याग्रह महत्वपूर्ण घटना है। यहॉ के जनजातीय महिलाओं व पुरूषों ने मुका लुहार के नेतृत्व में 9 अक्टूबर 1930 को सरकार द्वारा आरक्षित वन में घास काटकर वन कानून तोड़ने की घोषणा की। इस घोषणा के बाद सिवनी के डिप्टी कमिश्नर सीमेन ने पुलिस इंस्पेक्टर सदरूद्दीन को तुरिया के लोगों को सबक सिखाने का आदेश दिया। पुलिस इंस्पेक्टर आदेश में निहित उद्देश्य को भली–भॉति समझकर सत्याग्रह स्थल की ओर रवाना हुआ। वह अपने साथ दो मुख्य हवलदार, दस हवलदार और वन सुरक्षाकर्मियों को लेकर 9 अक्टूबर 1930 को तुरिया से 8 मील दूर खवासा पहुॅचा। तुरिया के समीप गॉव कुरई में लगभग 500 महिलाओं व पुरूषों की भीड़ नीम पेड के नीचे गाना गा रही

थी। पुलिस को देखकर भीड़ ने 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा' के बदले 'डण्डा ऊँचा रहे हमारा' का नारा लगाया और पुलिस की तरफ लाठी आगे कर चेतावनी भरा व्यवहार दिखाने लगे। पुलिस इंस्पेक्टर खतरे का अनुभव कर मालगुजार बाड़ा लौट गया। आगे बढ़ती हुई भीड़ ने पुलिस पार्टी का पीछा किया तथा तुरिया से 4 मील दूर तुरिया खवासा जंगल में नाले के पास पुलिस पार्टी को रोक लिया।

इसी समय लगभग 4000 जनजातियों का एक जत्था भी यह जानकर कि उसके नेता मुका लोहार को पुलिस ने बंदी बना लिया है, पुलिस पार्टी की ओर बढ़ा। जत्थे में शामिल कुछ सत्याग्रहियों के पास घास काटने के हसिये थे, तथापि वे पूर्णतः अहिंसक थे और पुलिस पर आक्रमण करने का उनका कोई इरादा नही था। यह उल्लेखनीय है कि पुलिस इंस्पेक्टर सद्रूद्दीन एवं रेंजर मेहता ने सत्याग्रहियों के साथ अभद्र व्यवहार किया। वे संभवतः डिप्टी कमिश्नर सीमेन के आदेश के अनुसार चल रहे थे कि सत्याग्रहियों को सबक सिखाया जाये। इस अभद्र व्यवहार से सत्याग्रही उत्तेजित हो गये, जिन पर पुलिस ने गोली चला दी। रानो बाई, देभो बाई व मुछे बाई और एक पुरूष बिरजु भोई घटना स्थल पर ही मारे गये। 30 अन्य सत्याग्रही भी घायल हुये। 18 व्यक्तियों को गिरफ्तार कर उन पर मुकदमा चलाया गया।[8]

सागर में 21 जून 1931 को 'महाकोषल महिला संघ' की द्वितीय बैठक में सीता भावे, श्रीमती दीक्षित, ताराबाई व चिरागुद्दीन ने कहा कि वे गांधी–इरविन समझौते को उचित मानते हैं, परन्तु कांग्रेस द्वारा इसे पुनः शुरू करने की स्थिति में वे दूसरे अहिंसात्मक लड़ाई में लोगों से भाग लेने की अपील की गयी।[9]

1933 ई0 में गांधीजी हरिजन उद्धार के विषय में सिवनी पधारे। वहॉ महिलाओं की सभा आदि की व्यवस्था राधाबाई जटार ने कुछ महिलाओं के सहयोग से महाबीर व्यायामशाला में की थी। उसमें नगर की बहुत बड़ी संख्या में महिलाओं ने भाग लिया था और गॉधीजी को हरिजन उद्धार हेतु काफी धन दिया था। यहॉ तक कुछ महिलाओं ने अपने शरीर के गहने तक उतार कर गॉधीजी को दे दिये थे, जिसे गॉधीजी ने वहीं नीलाम कर दिया था।[10]

सविनय अवज्ञा आंदोलन में महाकोषल क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी में घटनाओं के उपरोक्त विश्लेषण से कुछ निष्कर्ष निकलते हैं – प्रथम, यह कि नगरीय क्षेत्रों में मध्यम वर्ग की महिलाऍ गॉधीवादी विचारधाराओं से प्रभावित होकर सत्याग्रह के माध्यम से राजनीतिक जागरूकता का प्रदर्शन कर रहीं थीं। द्वितीय, यह कि जंगल सत्याग्रह के दौरान बैतूल व सिवनी के सुदूर आदिवासी अंचलों में महिलाऍ जंगल सत्याग्रह में पुरूषों की बराबरी कर रहीं थी। यहॉ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि इन आदिवासी महिलाओं की प्रतिबद्धता अहिंसात्मक आंदोलन की अपेक्षा हिंसात्मक आंदोलन की ओर अधिक थी। इसी का उन्होंने जंगल सत्याग्रह को उग्र बनाने में सहायता की, जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश शासन को बल प्रयोग करना पड़ा, जिसमें कुछ महिलाओं ने अपनी शहादत दी। महाकोषल क्षेत्र में स्वाधीन के संदर्भ में महिलाओं की जागरूकता व सहभागिता के परस्पर विरोधी आयाम निश्चित रूप से विचारणीय हैं।

संदर्भ

1. रामलखन शुक्ल : 'आधुनिक भारत का इतिहास', दिल्ली, सन् 1998, पृष्ठ 26.

2. विजय एग्न्यू : 'इलिट विमेन इन इण्डियन पोलिटिक्स', दिल्ली, सन् 1974, पृष्ठ 4.
3. डी.ई.यू बेकर : 'चेजिंग पालिटिक्स लीडरशीप इन सेन्ट्रल प्राविसेस एण्ड बरार 1919–1939', दिल्ली, सन् 1979, पृष्ठ 137.
4. रामेश्वर गुरू : 'स्वतंत्रता संग्राम व जबलपुर नगर', जबलपुर, सन् 1985.
5. हरदा रिपोर्ट : 'रजिस्टर डी – 16. 09. 1930.
6. राधाकृष्ण शर्मा : 'नेशनलिज्म सोशल रिफार्म एण्ड इण्डियन वुमेन', नई दिल्ली, सन् 1981, पृष्ठ 75.
7. रवि किरण तायवाडे : 'बैतुल जिला में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास', अप्रकाशित शोध प्रबंध, सागर विश्वविद्यालय, सागर, सन् 1994, पृष्ठ 51.
8. फाइल नं. 357/सी.डी.एम. ऑफ 1931, गवर्नमेंट आफ द सेन्ट्रल प्राविसेस पोलिटिकल एवं मिलिट्री डिपार्टमेण्ट, पृष्ठ 82 से 85 तक.
9. फाइल नं. 60/सी.डी.एम. ऑफ 1931, पूर्वोक्त', पृष्ठ 49.
10. कुंजबिहारीलाल खरे : 'सिवनी जिले में राष्ट्रीय आंदोलन का संक्षिप्त इतिहास', मध्यप्रदेश संदेश, 15 अगस्त 1987/अ–108.
11. आशारानी व्होरा : 'महिलाएँ और स्वराज्य', पृष्ठ 214.

अप्रकाशित मौलिक शोध-पत्र, शोध प्रबन्ध, पुस्तक समीक्षा
एवं
पुस्तकों के प्रकाशन हेतु

सम्पर्क करें :

जी.एच. पब्लिकेशन
121, शहराराबाग, इलाहाबाद-211 003
e-mail : ghpublication@gmail.com
Ph. : 0532-2563028 (M) 09329225173

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

आचार्य शुक्र एवं उनके द्वारा प्रतिपादित नीतिक उपाय

❐ डॉ. संध्या कुमारी

शोध सारांश

आचार्य शुक्र शस्त्र बल की अपेक्षा बुद्धि बल के प्रयोग के समर्थक थे। इसी कारण उन्होंने साम, दान भेद उपायों की विफलता पर ही दण्ड उपाय के प्रयोग को उचित माना है। वे युद्ध के भीषण परिणामों से परिचित थे। संभवतः इसी कारण युद्ध को अनिवार्य दोष समझते हुए यथा सम्भव उसका प्रयोग न करने की सलाह उन्होंने दी है। आचार्य शुक्र द्वारा प्रतिपादित नीतिक उपाय आज के अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में उतनी ही सत्यता एवं महत्व रखते हैं। सम्भवतः इसलिए कि परिस्थितियाँ बदल जाने पर भी मानव प्रकृति प्रायः वही है जो पहले थी।

आचार्य शुक्र – आचार्य शुक्र अपने युग के एक महान ऋषि एवं नीतिज्ञ थे। उनके पर्याय शब्द उशना, काव्य, भार्गव आदि है। कौटिलीय अर्थशास्त्र के प्रारंभ में ऋषि वन्दना में शुक्र - बृहस्पति को नमन[1] स्पष्ट कर देता है। कि कौटिल्य के युग तथा शुक्र ख्यातिलब्ध आचार्य के समय देवताओं ने बृहस्पति को और दैत्यों ने उशना (शुक्र) को यज्ञ के लिए पुरोहित निश्चित किया था।[2] इस प्रकार शुक्र (उशना) दैत्यगुरू थे।

आचार्य शुक्र के ग्रन्थ शुक्रनीति में 2,200 श्लोक मौलिक और इधर-उधर के सभी श्लोकों को मिलाकर कुल 2454 श्लोक के अधिकार तथा कर्त्तव्य, मंत्रि परिषद एवं उनसे सम्बन्धित सम्पूर्ण विषय, प्रशासकीय कर्मचारियों पर निरीक्षण एवं नियंत्रण, कोष, राजकीय आय के स्रोत, सैन्य संगठन, न्याय संगठन और प्रशासकीय नियन्त्रण आदि विषयों का विशेष रूप से वर्णन किया है। राजनीतिक एवं आर्थिक विधाओं के अतिरिक्त शुक्रनीति मानव आचरण के लिए मानदण्ड भी विहित करती है।

शुक्राचार्य के स्थितिकाल एवं शुक्रनीति के रचनाकाल के सम्बन्ध में विभिन्न मत दिये गये हैं। डा0 काशी प्रसाद ने शुक्रनीति के चौथी और पाँचवीं शताब्दी के ग्रन्थों में रखा है।[3] श्री डी0 घोषाल ने इस ग्रन्थ को 1200 से 1600 ई0 तक के बीच में माना है।[4] जबकि डा0 अल्तेकर ने इस ग्रन्थ का काल 800 ई0 से 1200 ई0 के मध्य निर्धारित किया है।[5] तथापि महाभारत में प्राप्त वर्णनों के आधार पर शुक्राचार्य एवं उनकी शुक्रनीति का समय ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व मानना न्यायसंगत है।

नीतिक उपाय – प्राचीन भारत में षाड्गुण्य की ही भाँति अन्तर्राज्य सम्बन्धों के प्रमुख आधार नीति के चार मान्य उपाय - साम, दान, भेद और दण्ड थे। यही नहीं यदि हम कहें कि राज्यीय तथा अन्तर्राज्यीय क्षेत्रों में प्रयोज्य नीति की सफलता और असफलता नीति विनिश्चय के सहाय गुणों से कहीं अधिक नीतिमार्गों अर्थात उपायों पर निर्भर करती थी, तो इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं है।

* असि0 प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, सेठ पी0सी बागला (पी0जी) कॉलेज, हाथरस, उ0प्र0

आचार्य शुक्र ने राजाओं की सफलता के लिए नीतिक उपायों का प्रतिपादन किया है, जिनके माध्यम से कठोर लोहे को ही नहीं पिघलाया जा सकता है।[6] अपितु मदोन्मत्त हाथी के मस्तक पर भी पैर रखा जाता है।[7] उनके अनुसार यह सर्वमान्य तथ्य है कि पानी आग को बुझा देता है, किन्तु यदि उपाय से काम लिया जाय, तो आग सम्पूर्ण पानी को सुखा देती है।[8] इसीलिए आचार्य शुक्र ने उपायों को साम, दान, भेद और दण्ड आदि चार भागों में विभक्त करते हुए उनको प्रयोग परिस्थितियों की गम्भीरता पर विचार करने के उपरान्त ही करने का आग्रह किया है।[8]

आचार्य शुक्र के समान ही मनु, याज्ञवल्क्य तथा कौटिल्य आदि ने साम, दान भेद, दण्ड इन चार उपायों को मान्यता प्रदान की है।[10] आचार्य बृहस्पति ने इन चार उपायों के अतिरिक्त माया, उपेक्षा बध[11] तथा कामदक ने माया, उपेक्षा एवं इन्द्रजाल[12] ये तीन उपाय बताये हैं। साम, दान, भेद, दण्ड आदि इन उपायों का विवेचन इस प्रकार है–

साम – 'साम' का आशय समझौते की अथवा संधि की नीति से है। साम शब्द की परिभाषा करते हुए कौटिल्य स्थान अर्थात महत्वपूर्ण पद प्रदान करने तथा मान अर्थात विशेष समादर को महत्व प्रदान करते हैं।[13]

आचार्य शुक्र ने बताया है कि शत्रु को समझा बुझाकर तथा उसे यह विश्वास दिलाकर कि तुम्हारे समान मेरा कोई मित्र नहीं है[14] तुम्हें और हमें परस्पर एक दूसरे के अनिष्ट का विचार न करते हुए सहायता ही करनी चाहिए। इस प्रकार शत्रु के प्रति व्यवहार साम उपाय के अन्तर्गत आता है।[15]

दान – द्वितीय उपाय दान है, जिसका राजा को आश्रय लेना चाहिए। राजा जब यह समझे कि युद्ध होने पर उसकी अधिक क्षति हो सकती है तब उस समय प्रबल शत्रु राजा को धन, गज, अश्व, स्वर्ण आदि वस्तुएं देकर अपने अनुकूल बना लेना चाहिए।

आचार्य शुक्र के अनुसार अपने शत्रु के प्रति शान्तिपूर्वक बचन कहने तथा उसे आश्वासन प्रदान करते हुए कहना कि मेरे जीवन सहित मेरी सभी वस्तुएँ तुम्हारी ही है। उन्होंने शत्रु के प्रति इस प्रकार के व्यवहार को दान उपाय मानते हुए प्रबल शत्रु के सम्बन्ध में यह उपाय[16] बतलाया है कि शत्रु को उसकी योग्यतानुसार वर्ष में थोड़ी-सी मालगुजारी या छोटा सा कोई ग्राम देकर संतुष्ट कर देना चाहिए।[17] इस प्रकार आचार्य शुक्र ने शत्रु को समयानुसार दान देकर संतुष्ट करने को ही दान उपाय माना है।

भेद – भेद का तात्पर्य किसी युक्ति से संगठित शत्रु में फूट डाल देना है।

आचार्य शुक्र ने शत्रुओं में परस्पर फूट डलवाने वाले उपाय को, भेद उपाय मानते हुए स्पष्ट किया है कि एक मित्र के सामने अन्य किसी मित्र के गुणों की प्रशंसा करना भेदनीति के अन्तर्गत आता है।[18] इसके अतिरिक्त शत्रु के सम्पूर्ण साधनों को हीन बना देना, शत्रु से अधिक बलशाली का आश्रय लेना तथा शत्रु से हीन बल वालों को प्रबल बना देने इत्यादि क्रिया शत्रुभेद के अन्तर्गत आती है।[19] आचार्य शुक्र के अनुसार राजा को इस प्रकार की नीति का अनुसरण करना चाहिए, जिससे कि शत्रु के सेनापति एवं मंत्रियों में अनबन हो जाये तथा प्रजा और रनिवास की स्त्रियों के साथ शत्रु राजा का विरोध हो जाये। केवल इतना ही नहीं सेनापति और मंत्रियों का अपनी सन्तानों से परस्पर विरोध हो जाना चाहिए इस प्रकार आचार्य शुक्र ने उक्त नीति को 'भेदनीति' माना है।[20]

दण्ड – यह अंतिम उपाय है जो उपकार करने वाले शत्रु के प्रति प्रयुक्त किया जाता है। आचार्य कामंदक ने वध कर देना, धन हरण कर लेना, विशेष कार्य दण्ड देना ये दण्ड के तीन भेद माने हैं।[21]

आचार्य शुक्र ने दंड उपाय का मित्र और शत्रु आदि राजाओं के सम्बन्ध में अलग-अलग प्रकार से वर्णन किया है। उन्होंने मित्र के संबंध में स्पष्ट उल्लेख किया है कि 'यदि तुम ऐसे हो तो मैं तुम्हारे साथ मित्रता नहीं रखूँगा, यह कहना मित्र के लिए 'दण्डवाक्य' कहलाता है।[22] शत्रु के संबंध में दण्ड का प्रयोग करते हुए लिखा है कि डाकुओं से शत्रु को पीड़ा पहुँचाना, धन्य-धान्य को

क्षीण कर देना, दोष देखना, उग्र सेना तथा नीति से डराना, युद्ध में डटे रहने से त्रास पहुँचाना, शत्रु के लिए दण्ड उपाय होता है।[23] इस प्रकार आचार्य शुक्र ने स्पष्ट रूप से कहा है कि मित्र तथा शत्रु के साथ दण्ड का प्रयोग बड़े मनोयोग के साथ करना चाहिए।[24]

अन्य उपाय – आचार्य शुक्र द्वारा मान्य साम, दान, भेद, दण्ड इन चार उपायों के अतिरिक्त कामंदक ने माया, उपेक्षा एवं वध ये तीन उपाय भी माने है।[25]

माया – माया का अर्थ है - कपटपूर्ण चालाकी। कामंदक के अनुसार इच्छानुसार रूप धारण कर लेना, जल तथा शस्त्रास्ता की वर्षा करना एवं अन्धकार में विलीन हो जाना आदि को मानुषी माया कहा जा सकता है। उनके कथनानुसार मीबम ने स्त्री का रूप धारण करके कीचक का वध कर दिया। दिव्य माया से राजा नल बहुत समय तक अपना स्वरूप छिपाये हुए सारथी के रूप में राजा ऋतुपर्ण की सेना में रहा।[26]

उपेक्षा – कामन्दक के अनुसार उपेक्षा का अर्थ है अन्याय करते हुए किसी दोषयुक्त आचरण में लिप्त तथा युद्ध करते हुए शत्रु की ओर से उदासीन हो जाना जैसा कि राजा विराट ने कीचक के विषय में किया था।[27]

इन्द्रजाल – इन्द्रजाल का अर्थ है मन्त्रप्रयोग या अन्य चालाकियों से भ्रम उत्पन्न करना, यथा - ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देना कि शत्रु जान जाय कि उसके प्रतिद्वन्द्वी के पास विशाल सेना है, या उसके विरोध में देवदूत लड़ने आ रहे हैं या शत्रु-शिविरों पर रक्त की वर्षा करना आदि।[28] आचार्य बृहस्पति ने इन्द्रजाल के स्थान बध का प्रयोग किया है।[29]

साम, दान, भेद, दण्ड आदि उपायों के प्रयोग की विधि–

आचार्य शुक्र ने उक्त चारों उपायों के वर्णन के साथ-साथ कुछ विशिष्ट निर्देशों का प्रतिपादन किया है। उनका मत है कि नीतिज्ञ राजा को उक्त समस्त उपायों का पालन इस प्रकार करना चाहिए जिससे कि मित्र और शत्रु राजाओं में से कोई भी अपने से अधिक बलवान न हो पाये।[30]

आचार्य शुक्र के अनुसार इन उपायों का इस क्रम से प्रयोग करना चाहिए कि राजा का साम-उपाय का प्रयोग करने के उपरान्त सफलता प्राप्त न होने की स्थिति में दान उपाय के द्वारा कार्य सिद्ध का प्रयोग करना चाहिए। इसके उपरान्त शत्रु में भेद उपाय का प्रयोग सामान्यतः करना ही चाहिए और अन्त में तीनों उपायों की असफलता एवं प्राण संकट की स्थिति में दण्ड उपाय का आश्रय लेना ही श्रेयस्कर है।[31] शुक्राचार्य के द्वारा उन परिस्थितियों का भी विवेचन किया गया है जिनमें सामादि उपाय का प्रयोग किया जायेगा। इस संबंध में उनका मत है कि अपने से अधिक शक्तिशाली शत्रु के साथ साम और दान उपायों समान शक्ति शक्तिशाली शत्रु के साथ साम और दान उपायों समान शक्ति वाले के साथ भेद तथा दण्ड उपायों और हीन बल वाले शत्रु के साथ दण्ड का ही प्रयोग करना उचित है।[32] उन्होंने मिता के साथ भेद तथा दण्ड के प्रयोग को अनुचित मानते हुए साम और दान के प्रयोग को ही उचित माना है।[33] उनका विश्वास है कि शत्रु की प्रजा को ही उचित माना है। उनका विश्वास है कि शत्रु की प्रजा के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित करके राजा को शत्रु को कष्ट पहुंचाते हुए विजय प्राप्त करनी चाहिए।[34] इसके साथ ही नीतिज्ञ राजा को शत्रु से पीड़ित लोगों को साम तथा दान उपाय से अपने पास एकत्रित करना चाहिए।[35] महर्षि शुक्र ने ऐसे गुणवान व्यक्तियों का जो बुद्धिमान होते हुए भी दुष्ट हो देश निष्कासन उचित माना है।[36]

शान्तिपर्व में इन उपायों के प्रयोग की विधि का वर्णन करते हुए आचार्य बृहस्पति का मत उद्घृत है– युद्ध का वर्जन सदा करना चाहिए, अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए दण्ड की अपेक्षा अन्य तीन उपायों की सहायता लेनी चाहिए।[37]

सन्दर्भ ग्रन्थ—

1. कौटिलीय अर्थशास्त्र, पृ. 1 (नमः शुक्रबृहस्पतिभ्याम्)
2. महाभारत, आदिपर्व, 76, 6
3. के.पी. जायसवाल, हिन्दू पौलिटी, पृ. 5
4. अनन्त सदाशिव अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ. 5
5. वही
6. शुक्रनीति-4 (7) 294
7. वही
8. शुक्रनीति 4 (7) 295
9. सुहृत्संबन्धिस्त्रपुत्रप्रजाशत्रुषु ते पृथक्।
   सामदानभेदण्डाश्चिन्तनीयाः स्वयुक्तिः।।
   (शुक्रनीति-4 (1) 26)
10. मनुस्मृति-7/109; याज्ञवल्क्य स्मृति-1/346, कौटिलीय अर्थशास्त्र-9/5
11. बृहस्पति सूत्र-5/4-7, 5/3
12. कामन्दकीय नीतिसार 17/3
13. कौटिलीय अर्थशास्त्र-9/5
14. शुक्रनीति-4 (1) 28
15. परस्परमनिष्टं न चिन्तनीयं त्वया मया।
    सुसाहाय्यं हि कर्तव्यं रात्रौ साम प्रकीर्तितम्।।
    (शुक्र-4 (1) 31)
16. मम सर्वं तवैवास्ति दानं मित्रे सजीवितम्।। 4 (1) 28
17. करैर्वा प्रमितैर्ग्रामैर्वत्सरे प्रबलं रिपुम्।
    तोषयेत्तद्वि दानं स्याद्यथायोग्येषु शत्रुषु।।
    (शुक्र-4 (1) 32)
18. शुक्र.-4 (1) 29
19. शुक्र.-4 (1) 33
20. शुक्र.-4 (7) 298
21. काम. नीति.-17/9
22. मित्रे दण्डो न करिष्ये मैत्रीमेवंविधोऽसि चेत्।
    (शुक्र.-4 (1) 29)
23. दस्युभिः पीडनं रात्रोः कर्षणं धनधान्यतः।
    तच्छिद्रदर्शनादुग्रबलैर्नीत्या प्रभीषणम्।।
    (शुक्र.-4 (1) 34)
    प्राप्तयुद्धानिवृत्तित्वस्त्रासनं दण्ड उच्यते।
    (शुक्र.-4 (1) 35)
24. शुक्र.-4 (1) 35
25. काम. नीति. - 17/3
26. काम. नीति. - 17/54
27. काम. नीति. - 17/55
28. काम. नीति. - 17/58-59
29. बृहस्पति सूत्र - 5/4-7, 5/3
30. शुक्र. 4 (1) 36
31. सामैव प्रथमं श्रेष्ठं दानं तु तदन्तरम्।
    सर्वदा भेदनं शत्रोर्दण्डनं प्राणसंशये।।
    (शुक्र. - 4 (1) 37)
32. प्रवलेडरौ सामदाने साम भेदोऽधिके स्मृतौ।
    भेददण्डौ समे कार्यौ दण्डः पूज्यः प्रहीनके।।
    (शुक्र. - 4 (1) 38)
33. शुक्र. - 4 (1) 39
34. वही
35. शुक्र. - 4 (1) 40
36. शुक्र. - 4 (7) 299
37. महाभारत शान्तिपर्व - 6 (9) 23

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

पर्यावरण को बचाने के लिये वनों का संरक्षण

❐ डा0 एम.पी. सिंह

शोध सारांश

इस धरती पर सृष्टि निर्माता ने सभी को जीने का समान अधिकार दिया है। उसमें जीव-जन्तु व मानव के साथ-साथ वनस्पति भी आती है। अगर वनस्पति व जीव-जन्तु को मानव द्वारा कम किया जायेगा तो निश्चित ही प्राकृतिक असंतुलन होगा। विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों से जनित बीमारियों की प्राकृतिक संसाधनों द्वारा रोकथाम, दैनिक जीवन के लिए उपयोगी आवश्यक सामग्री, भूमि क्षरण, जल संसाधन ग्लोबल वार्मिंग, पर्यावरण असंतुलन आदि गम्भीर समस्याओं का एकमात्र समाधान वन संरक्षण है।

कृषि व वन सम्पदा की सुदृढ़ नींव पर ही देश व दुनियाँ के औद्योगिक, वैज्ञानिक तथा आर्थिक विकास का भवन निर्मित किया जा सकता है। प्रकृति की ओर चलकर ही हम प्रकृति के संतुलन को स्थापित कर सकते हैं।

भारत अपनी सांस्कृतिक विरासत के लिये सदियों से प्रसिद्ध रहा है। हमारा यह देश विश्व के उन गिने-चुने स्थानों में से एक है जो सभ्यता के आरम्भ से ही विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा है। शुरू से ही यहाँ की परम्पराओं, तीज-त्योहारों तथा रीति-रिवाजों में पेड़-पौधों तथा वन्य जीवों को विशिष्ट स्थान मिला है। विश्व के वैज्ञानिक एवं पर्यावरणविदों का ध्यान प्राकृतिक संतुलन, प्रदूषण तथा वन्य प्राणियों के संरक्षण की ओर इस सदी में गया है पर भारत निश्चित रूप से उन प्राचीनतम क्षेत्रों में से है जहाँ की लोक परम्पराओं तथा रीति-रिवाजों में पेड़ पौधों तथा विभिन्न जीव-जन्तुओं को महत्वपूर्ण स्थान देकर प्रकृति के संतुलन पर सदियों से विशेष बल प्रदान किया गया है। वन हमारे जन्म से लेकर मरण तक के विभिन्न क्रियाकलापों, सुख-सुविधा, भोजन-शयन, भरण-पोषण, साज-सज्जा व रहन-सहन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं। हमारे समाज में आज भी गोधन पूजन से लेकर वृक्ष-पूजन की परम्परा विद्यमान है। पारिवारिक या सामाजिक तीज-त्यौहार एवं उत्सवों में तुलसी, आम, नारियल आदि वृक्षों की बड़े आदर के साथ पूजा की जाती है। पीपल, आँवला और पलास को संस्कारों से जोड़ा गया है। इन वृक्षों को काटने या तोड़ने से मना किया गया है। वैदिक काल में वृक्षों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुये इन्हें देवी-देवताओं का निवास स्थान बतलाकर इनके रोपण और पूजन की व्यवस्था की गयी थी। पीपल के संदर्भ में कहा भी गया है—

* रीडर (रसायन शास्त्र), राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खैर (अलीगढ़) (उ.प्र.)

मूल ब्रह्मा, त्वचीय विष्णु, शाखा शंकरैव च,
पत्ते-पत्ते सर्व देवानाम इयं राजाय पीपलः

इसका प्रभाव आज भी हमारे समाज में व्याप्त है कि पीपल के वृक्ष को न कोई काटता है न जलाता है। पेड़-पौधों तथा जन्तुओं ने भारत के सामाजिक जीवन और लोकाचार को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। ऐसा लगता है कि यहाँ के पूर्वज एवं पूर्व निवासी, ग्रामीण विकास और प्राकृतिक संतुलन में पेड़-पौधों तथा जीव जन्तुओं के महत्व से परिचित थे। विभिन्न पर्वों व तीज-त्यौहारों तथा रीति-रिवाजों का गहराई से अध्ययन करने पर इस तथ्य की पुष्टि भी हो जाती है। सामान्य जीवन से लेकर शादी-विवाह और तीज-त्योहारों तक के विधि-विधानों में फल-फूल, धान-धूप, बांस-कुश, आम-बेल आदि तथा विभिन्न जीवन-जन्तुओं के चित्रों का प्रयोग काफी संख्या में होता है, जो धार्मिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उपयोगी तथा लाभप्रद है।

बढ़ती जनसंख्या, औद्योगिक वैज्ञानिक विकास एवं शहरीकरण के बढ़ते हुये प्रभाव के कारण हमारे देश में वन-वृक्षों उद्यानों, स्थायी वनस्पति, जलाशयों तथा खेतिहर पशुओं का तेजी से विनाश हुआ है। धरती के भीतर से अनन्त मात्रा में जल, खनिज तेल, कोयला, पत्थर तथा उनके खनिज निर्दयतापूर्वक बाहर फेंके जा रहे हैं। विस्फोटकों की शक्ति से चट्टानें तोड़ी जा रही हैं। धरती के ऊपर भारी भरकम निर्माण किये जा रहे हैं। धरती के प्राकृतिक संतुलन की रक्षा करने वाले बैक्टीरिया, कीट, जन्तु और वन्यप्राणी तेजी से नष्ट किये जा रहे हैं। विश्व के बचे-खुचे घने जंगलों में से 80 प्रतिशत केवल 15 देशों में स्थित है। ये देश हैं रूस, कनाडा, ब्राजील, अमेरिका, कांगो, चीन, इंडोनेशिया, मेक्सिको, पेरु, कोलम्बिया, बोलीबिया बेनेजुएला, भारत, आस्ट्रेलिया और पापुआन्यूगिनी। स्वतंत्रता के सूर्योदय के साथ हमारे देश का एक तिहाई भौगोलिक क्षेत्र वन वृक्षों तथा स्थायी वनस्पति से आच्छादित था। आजादी के छः दशक पश्चात हमारे देश के 1/4 भू-भाग पर ही लगभग वन बचे हैं। वास्तव में 10-12 प्रतिशत भूभाग पर ही सघन वन हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में वन वृक्षों तथा स्थायी वनस्पति का विनाश पर्वतीय क्षेत्रों में वन वृक्षों तथा स्थायी वनस्पति का विनाश भयावह रूप धारण कर चुका है। इससे प्राकृतिक संतुलन बिगड़ गया है। भूमि-कटाव, सूखा, बाढ़, भूकम्प, चक्रवात, अकाल, प्रदूषण और महामारी की काली छाया सारे भारत पर फैलती दिखाई देती है। प्रतिवर्ष भारत की करोड़ों टन अमूल्य मिट्टी तथा वर्षा के अमृत तुल्य जल का विशाल भाग बहकर सागर में विलीन हो जाता है। इससे धन, जन और राष्ट्रीय विकास को जो हानि पहुँचती है। उसका मूल्यांकन करना कठिन है। पिछले दस-पन्द्रह वर्षों में बाढ़ प्रभावित भूमि 2 करोड़ हेक्टेयर से बढ़कर 40 करोड़ हेक्टेयर तक पहुँच गयी है। सूखा-बाढ़, जल प्रदूषण, जल संकट और जल वितरण की समस्या राष्ट्र की एक विस्फोटक समस्या बन गयी है। इस सबका कारण वन सम्पदा का नष्ट होते जाना है।

विशाल जनसंख्या, मानवीय सुविधाओं के लिये निर्मित असंख्य औद्योगिक कल कारखाने, असीमित यातायात के साधन, धूम्रपान, व्यसन, आदि से उत्पन्न बढ़ती हुयी मुख्य ग्रीन हाउस गैस CO_2 की सान्द्रता वातावरण में तभी कम की जा सकती है जब वन सम्पदा अधिकाधिक हो क्योंकि प्रकाश संश्लेषण में पेड़-पौधे मानव व पशुओं से उत्पन्न कार्बन डाईआक्साइड को ग्रहण करके हमारी प्रत्येक साँस के लिये आवश्यक प्राणवायु आक्सीजन का निर्माण कर हमें लौटाते हैं अर्थात हमें जीवन देते हैं।

मिट्टी तथा जल के संरक्षण की समस्या के साथ ही जल प्रदूषण की समस्या की राष्ट्र के सम्मुख एक चुनौती प्रस्तुत करती है। आज भारत की अधिकांश नदियाँ, झीलें तथा जलाशय ही नहीं भूमिगत प्रदूषित जल है। जल संरक्षण, जल प्रदूषण तथा जल संकट की समस्या का स्थाई हल देश की रिक्त भूमि पर वृक्षारोपण तथा स्थाई वनस्पति के विस्तार से ही सम्भव है। देश की दस करोड़ हेक्टेयर वन विहीन की गयी भूमि, कटानयुक्त भूमि, बंजर भूमि, रोगग्रस्त भूमि तथा मरुभूमि पर वन वृक्ष,

उद्यान तथा स्थाई वनस्पति का विस्तार करने की आवश्यकता है। भविष्य में जहाँ तक सम्भव हो प्राकृतिक मिश्रित वनों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। पेड़ पौधे तथा वनस्पति जल-चक्र तथा वायु-चक्र को नियंत्रित करते हैं। मिट्टी का संरक्षण करते हैं। जल में भौतिक, रासायनिक तथा जैविक अशुद्धियों का शुद्धिकरण करते हैं। जल प्रदूषण तथा जल संकट की समस्या को हल करने में व पर्यावरण को बचाने में उनकी विशिष्ट भूमिका है। मिट्टी, पानी और वायु के बढ़ते हुये प्रदूषण के इस युग में हमें ऐसी योजनाओं तथा कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने की आवश्यकता है जिससे हमारी जनशक्ति, पशुशक्ति तथा प्राकृतिक संसाधन जैसे भूमि, वन, जल, नदी जलाशय, पर्वत, सागर सौ ऊर्जा, जल ऊर्जा, पवन ऊर्जा, खनिज ऊर्जा, तथा जैविक ऊर्जा का पूर्ण विकास एवं उपयोग किया जा सके। सारे देश में छोटे-छोटे बांध, बाढ़ की नहरें, गहरे जलाशय, प्रदूषित जल, कूड़ा-करकट तथा औद्योगिक अवशेष पदार्थ एकत्र करने के लिये विशाल जलाशय, आधुनिक सीवेज प्रणाली, जल निकासी की नदियां, सीवेज शोधन केन्द्र, बायोगैस संयंत्र, सामूहिक शौचालय वन-वृक्ष उद्यान प्राकृतिक वनस्पति का विस्तार करने की आवश्यकता है सहकारी डेयरी फार्मों, औद्योगिक बस्तियों, गौशालाओं, सड़कों, स्कूलों तथा पार्कों का निर्माण करने की आवश्यकता है।

नदियों को प्रदूषण से मुक्त रखने व उनको बचाने के लिये उनके किनारे-किनारे जहाँ तक सम्भव हो सके, हरे भरे वृक्षों तथा स्थायी वनस्पति की एक पट्टी का निर्माण किया जा सकता है। सभी किसान नदियों व नहरों से सटी हुयी अपनी भूमि पर वन वृक्षों, उद्यानों फसल वृक्षों तथा स्थायी वनस्पति का विस्तार कर सें तो इससे भूमि कटाव सूखा, बाढ़ पर नियंत्रण करने में सहायता मिलेगी। एवं नदी के जल को भी प्रदूषण से बचाया जा सकेगा। शहरों तथा उद्योगों का प्रदूषित जल, मल तथा कचरा नदियों में प्रवाहित करने से उनका प्रदूषण खतरे की सीमाओं को पार कर रहा है। उस प्रदूषित जल तथा कूड़े कचरे को गंदे नालों (सीवरेज प्रणाली) द्वारा विशाल जलाशयों, सीवेज टैंक में एकत्र किया जा सकता है। वहाँ पर उसका शोधन किया जा सकता है। वहाँ पर उसका शोधन किया जा सकता है। सीवेज शोधन केन्द्र पर ठोस अवशेष पृथक करने के उपरांत शेष द्रव से बायो गैस तथा जैविक खाद प्राप्त किये जा सकते हैं। बचे हुये द्रव को खेतों तथा वनों की सिंचाई में प्रयोग किया जा सकता है।

वन सम्पदा के नष्ट होने तथा हरे भरे पेड़ पौधों के कम होने से पर्यावरण असंतुलन का एक विकराल रूप ग्लोबाल वार्मिंग है जो कि प्रमुख विश्वव्यापी पर्यावरणीय समस्या है। जिसका प्रमुख समाधान वनों की अंधाधुंध कटाई पर रोक लगाकर वृक्षारोपण द्वारा वन क्षेत्र में विस्तार करना है। इसमें दो राय नहीं कि भारत ग्लोबल वार्मिंग की वजह से पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव के प्रति सदैव सजग और चिन्तित रहा है और उसने राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर महत्वपूर्ण पहल भी की है, उसकी इस भूमिका को वैश्विक मान्यता भी मिल गयी है। आई.पी.सी.सी. के अध्यक्ष आर.के. पचौरी को वर्ष 2007 में पर्यावरण संरक्षण में उल्लेखनीय योगदान हेतु नोबेल पुरस्कार से नवाजा गया है। पृथ्वी को माँ के रूप में मान्यता देते हुये शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व और वसुधैव कुटम्बकम की भावना से ओत-प्रोत भारत ने सदैव 'जिओ और जीने दो' की उदात्त भावना को कार्यरूप दिया है और विश्व को भी शान्ति का पाठ पढ़ाया है अब समय आ गया है कि वह ग्लोबल वार्मिंग के संकट से निपटने में भी विश्व को अपना नेतृत्व प्रदान करें यह कहने में अतिश्योक्ति नहीं कि ग्लोबल वार्मिंग मानव सभ्यता के लिये खतरा है और इसे देशों की सीमा में बाँधना बेईमानी होगी, क्योंकि कोई भी देश इसकी आँच से नहीं बच सकता, इसीलिये राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस मुद्दे को राजनीति से मुक्त रखकर सर्वजन हिताय की भावना लेकर आगे बढ़ा जाये।

पर्वतों पर वन वृक्षों का विस्तार योजनाबद्ध विधि से किया जाना चाहिये। पर्वतीय क्षेत्रों में सरकार द्वारा प्रत्येक ग्राम पंचायत के पर्याप्त वन क्षेत्र हस्तान्तरित किये जाने चाहिये। उसे क्षेत्र के वनों की रक्षा का भार उसी गाँव पर होना चाहिये। वहां पर गांव के लोग आप पशुओं को चरा सकते हैं। ईंधन, चारा तथा खाद्य पदार्थ एकत्र कर सकते हैं। किन्तु वृक्षों को काटने का अधिकार किसी को भी नहीं होना चाहिये। शेष वन क्षेत्रों को उपखण्डों में विभाजित करके तार की बाढ़ लगाकर पशुओं के चराने के लिये सीमित क्षेत्रों में विशेष लाइसेंस दिये जा सकते हैं। प्रतिबन्धित क्षेत्रों में मिश्रित वनों तथा प्राकृतिक वनस्पति का विस्तार वैज्ञानिक विधियों से योजनाबद्ध तरीके से किया जाना चाहिये। पर्वतीय क्षेत्रों में दस वर्षों के लिये हरे वृक्षों के कटान पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाना चाहिये। वृक्षों को काटना और जलाना आसान है। किन्तु उनका पालन पोषण बच्चों की तरह करना पड़ता हिमालय घायल है। देश के मध्य में फैली पर्वतश्रेणियां वीरान हैं पश्चिमी घाट उजड़े हैं। पर्वतों पर वन वृक्षों तथा वनस्पति का विस्तार करके ही हम भारत की मिट्टी और जल का संरक्षण कर सकते हैं इस दिशा में अब हमें सचेत हो जाना चाहिये। ऐसा न हो कि जल संकट के कारण देश के राज्यों के जल-विवाद और बढ़ जाये।

पर्वतीय क्षेत्रों में किसानों को ऐसा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये जिससे कि वह अपनी निजी भूमि के 60 प्रतिशत क्षेत्र पर वन वृक्ष, उद्यान तथा स्थाई वनस्पति का विस्तार कर सके। मिश्रित कृषि, डेयरी फार्मिंग, फल उद्योग, देशी जड़ी बूटी का विस्तार कर सकें। पर्वतीय क्षेत्रों में कहीं-2 छोटे जलाशयों का निर्माण किया जा सके तो वहाँ वर्षा जल का संग्रह किया जा सकेगा। इससे वनों में होने वाले अग्निकाण्ड पर नियन्त्रण करने में सहायता मिलेगी। इन अग्निकाण्डों से वन-वृक्षों, वनस्पति, अमूल्य मिट्टी तथा वन्य प्राणियों को कितना आघात पहुंचता है, इसका अनुमान कठिन है। यह एक राष्ट्रीय अभिशाप है मिट्टी तथा जल स्त्रोतों की रक्षा वन वृक्षों तथा स्थाई वनस्पति से ही की जा सकती है। बिखरे हुये पत्ते, डंठल तथा सूखी घास एकत्र करके इससे दोहरे लाभ प्राप्त किये जा सकेंगे। तराई, भाभर, मरुभूमि, कटानयुक्त भूमि, बंजर परती भूमि, रोगग्रस्त भूमि, समुद्र तटीय क्षेत्र तथा पठारी भागों में किसानों को ऐसी प्रेरणा दी जानी चाहिए जिससे कि वह अपनी निजी भूमि के 33 प्रतिशत भाग पर वन वृक्ष उद्यान तथा स्थाई वनस्पति का विस्तार कर सकें। ऐसे वृक्ष लगाये जाने चाहिये जिससे मिट्टी तथा जल के संरक्षण में सहायता मिले। ईधन, चारा तथा खाद्य पदार्थ भी प्राप्त किये जा सकें। मिट्टी तथा जल के संरक्षण की समस्या राष्ट्रीय स्तर पर हल करने के लिये कृषिवानिकी का विशेष प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। किसान अपने खेतों की मेढ़ ऊंची करके उनके दोनों ओर ऐसे वृक्ष लगा सकते हैं जिससे भूमि तथा जल के संरक्षण की समस्या स्थाई रूप से हल की जा सके। यूकेलिप्टस तथा पॉपलर के स्थान पर शीशम, नीम, जामुन, जमोमा, बेल, शहतूत इत्यादि के वृक्ष रोपे जा सकें तो खेतों के लिये स्थायी सुरक्षा कवच के निर्माण किया जा सकेगा। रेलवे लाइनों, सड़कों, नहरों, बम्बों, तालाबों, झीलों के किनारे वृक्षारोपण योजनाब तरीकों से किया जाना चाहिए ऐसे मिश्रित वृक्ष लगाये जाने चाहिए जिससे मिट्टी तथा जल के संरक्षण की समस्या स्थाई रूप से हल की जा सके। मूल्यवान लकड़ी, खाद्य पदार्थ, चारा तथा ईधन भी मिलता रहे। ग्राम पंचायतों का ध्यान जलाशयों तथा वन वृक्षों के संरक्षण की ओर आकर्षित किया जाना चाहिए। प्रत्येक गाँव का अपना पंचायती वन तथा तालाब होना चाहिये। भारत की 3 प्रतिशत भूमि पर वन वृक्षों तथा स्थायी वनस्पति से घिरे जलाशयों का निर्माण अथवा जीर्णोद्धार करने से भूमि तथा जल संरक्षण, सूखा व बाढ़, जल प्रदूषण तथा जल संकट की समस्याएं हल करने में अमूल्य योगदान मिलेगा। देश की 10 करोड़ हेक्टेयर वन विहीन भूमि, मरुभूमि, रोग ग्रस्त भूमि, कटान युक्त भूमि, बंजर भूमि पर पशु जनित खाद तथा जल पहुँचाकर वन वृक्षों, जलाशयों तथा स्थायी वनस्पति का विस्तार

करके ही हम अपने राष्ट्रीय तीर्थों (बांधों-जलाशयों पनबिजली घरों) की रक्षा कर सकते हैं।

कृषि की सुदृढ़ नींव पर ही देश के औद्योगिक वैज्ञानिक तथा आर्थिक विकास का राष्ट्रीय भवन निर्मित किया जा सकता है। ऐसे विकास का कोई औचित्य नहीं है, जिसके कारण मानव के अस्तित्व पर ही खतरा मंडराने लगे। पृथ्वी मानव के अलावा असंख्य जीव जन्तुओं एवं वनस्पतियों का भी घर है। अतः मानव को अपनी करतूतों पर लगाम लगानी चाहिये तब जीओ और जीने दो के सिद्धान्त का पालन करते हुय पर्यावरण को बचाना चाहिये।

अन्त में, प्रकृति की ओर चलकर ही हम प्रकृति के संतुलन को स्थापित कर सकते हैं। धरती के जीवन एवं पर्यावरण की रक्षा कर सकते हैं। भूमि तथा जल संरक्षण, जल प्रदूषण तथा जल संकट की समस्याएँ हल कर सकते हैं।

''नहीं होगा ये जल, तो नहीं होगी फिर ये कल।
नहीं रहेंगे तरुपल्लव, तो सांसे रहेंगी बस दो पल।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. पाण्डेय आर.एम., वानस्पतिक सम्पदा की सुरक्षा, युवा चेतना 50, 2009
2. ऋग्वेद 10/111/2
3. सक्सेना, पी., वेदों में पर्यावरण संरक्षण
4. ऋग्वेद 1/164/50, 10/90/16
5. विज्ञान प्रगति मासिक पत्रिका, वन संरक्षण, 15, 2000
6. पाण्डेय जी.एस., प्रतियोगिता मासिक पत्रिका, 1622, 2008
7. विज्ञान प्रगति मासिक पत्रिका, 26, 2002
8. विज्ञान प्रगति मासक पत्रिका 33, 2011
9. Rama Chandran M. and Bharathidhasan, A., Everyman's Science, XLIX (06), 2015
10. दैनिक जागरण समाचार पत्र 29/9/2015
11. Chatterji S., Everyman's Science, LI (01), 2016

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

''धर्म और मानवीय चेतना''

❒ घनश्याम दास साकेत

शोध सारांश

धर्म और मानव का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। मानव मात्र धर्म का अनुसरण एवं अनुकरण कर सकता है अन्य प्राणी तो धर्म के व्यतिरिक्त ही सब कुछ करते हैं। धर्म का आश्रय लेकर प्राणी इहलोक के सुखों को तो भोगता ही है, अन्त में अन्य लोकों में भी उसे सुख एवं शान्ति मिलती रहती है। सभी प्राणी धर्माचरण करके ही निःश्रेयस की प्राप्ति करते हैं। धर्मानुयायी को अन्ध लोकों में नहीं जाना पड़ता है, अस्तु सभी को धर्म का आचरण करना चाहिए। ''धर्मनुगो गच्छाति जीव एकः''।

मानव धर्म के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। धार्मिक कृत्य और उसका आचरण उसे करना ही पड़ेगा। धर्म का प्रथम वैशिष्ट्य है अधिकाधिक भेद को स्वीकार करना। मानवों के आचरण और बुद्धि आदि में अत्यधिक विभिन्नताएं हैं। इस कारण सभी मानव एक ही प्रकार के धर्मोपदेश का अनुसरण नहीं कर पाते। जो धर्म योग्यतानुसार निर्दिष्ट किया जाता है वही हमेशा हित में और श्रेयस्कर होता है। सभी मनुष्य समान योग्यता से परिपूर्ण नहीं होते क्योंकि मनुष्यगत सत्वादि गुणों के परस्पर के प्रति उपचय अपचय होते रहते हैं। जिससे उनकी मनोवृत्तियों में अनेक प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं।

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्धय सिद्धयोविकारः स्यात् कर्त्ता सात्विक उच्यते।

जिसे आसक्ति नहीं रहती, जो 'मैं' और 'मेरा' नहीं कहता, कार्य फल की चिंता नहीं करता, मन में कोई विकार नहीं लाता वही सात्विक कर्त्ता है। कुछ धनवान सुखपूर्वक जीवन-व्यापन करते हैं। लोग हीनावस्था में रहकर दुःख का सामना करते हुए समय बिताते हैं। जब व्यक्तियों के जनक रूप परमेश्वर में किसी के प्रति निर्घृणता की कल्पना नहीं की जा सकती तब यही निश्चय करना पड़ता है कि अपनी अवस्था में विपर्यय में ही प्राणियों का अपना कर्म ही कारण है। इन दो वैशिष्ट्यों का सहारा लेकर ही समस्त समस्याओं का हल विद्वान कर सकते हैं।

अन्य मत में अधिकरिकारिक भेद को स्वीकार न करने के कारण उन मतों के सभी अनुयायियों के लिए एक ही समान उपदेश दिया जाता है, ऐसा उपदेश दिया जाता है, ऐसा उपदेश अनुचित है। उन सभी मतों के अनुयायी बुद्धिवैभव युक्त नहीं होते हैं। अतः एक ही समान धर्म को मानना ठीक नहीं होता। कर्म सिद्धांत को यदि अस्वीकार किया जाय तो सभी ओर प्रतिदिन प्रतिक्षण अनुभूयमान व्यवहार भेद का समर्थन किसी भी उचित तर्क से किसी भी प्रकार से नहीं किया जा सकता इसलिए वेद प्रतिपाद्य धर्म का महत्व विद्वज्जनों को स्वीकार करना

* शोधार्थी, संस्कृत, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

ही चाहिए क्योंकि इसी मार्ग में ही धर्मोपदेश में अधिकारिक भेद और कर्म सिद्धान्त को स्वीकार किए गये हैं। वेद के वैशिष्ट्य के सम्बन्ध में प्राचीन और आधुनिक अनेक विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से विचार किया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में वेदवाणी को परमेश्वर का अविनाशी रूप, यज्ञ का प्रथम निर्माण करने वाली वेदों की माता और अमृत की नाभि कहा गया है—

वागाक्षरे प्रथमजा ऋतस्य।
वेदानां माताऽमृतस्य नाभिः॥

मनुस्मृति में वेद की तथा वेदज्ञ की भूयसी महिमा गाई गई है। मनु का यह परिनिष्ठित मत है कि वेद देव, पितन तथा मानवों के लिए मार्गदर्शक, नित्य, अपौरुषेय अप्रमेय हैं।

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अगम्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिरू॥

मनु का कथन वेद की श्रेष्ठता के विषय में अत्यन्त प्रामाणिक है वेदशास्त्र का ज्ञाता सेनापत्य, राज्य, दण्डनीतित्व तथा समस्त धरती की अधिपतित्व करेन के लिए योग्य होता है।

वेद भारतीय जीवन में सर्वश्रेष्ठ हैं। इसलिए सम्भवतः वे भारतीय संस्कृति के भी मूल स्रोत हैं। अपनी भौतिक तथा आध्यात्मिक प्रगति की दिशा में आर्य जाति ने सभ्यता के उस काल में जो कार्य किये उनका प्रौढ़ एवं प्रामाणिक इतिहास वेदों में निहित हैं। वेद ज्ञान के अथाह सागर हैं जिनसे समस्त विद्याओं, शास्त्रों और कलाओं की अनन्त धाराएं प्रवाहित होती हैं। वेद वे चक्षु है जिन्होंने मानव को अपरोक्ष, अप्रत्यक्ष तथा अलौकिक रहस्यों की जानकारी दी। वेदों के नियमित स्वाध्याय की फलोपलब्धि के सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मण (11/5/6/9) एवं मनुस्मृति में कहा गया है कि धन धान्य से परिपूर्ण पृथ्वी का दान करने से भी जिस त्रिलोक सम्पदा और अक्षय धाम की प्राप्ति नहीं हो सकती है वेदों के स्वाध्याय से वह सहज ही प्राप्त हो जाती है–

वेदशास्त्रार्थत्तत्वज्ञो यत्रकुत्राश्रमे वसन्।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

वेदाध्ययन के साथ वेदार्थ ज्ञान भी अति आवश्यक बताया गया है। जैसे यास्क ने लिखा है—

स्थाणुरयं भारहरः किलाभूत
अधीत्य वेदं न विजानातियोऽर्थम्।
अधीत्य वेदं न विजानातियोऽर्थम।
योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते
नायमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥

जो व्यक्ति पढ़कर उसके अर्थ को नहीं जानता वह भार ढोने वाले स्थाणु (ठूंठा) वृक्ष के समान है। जो अर्थ को समझ लेता है वह सभी कल्याण को प्राप्त कर लेता है और ज्ञान से अज्ञान को दूर करके स्वर्ग की प्राप्ति कर लेता है।

वेद भारत के ही नहीं, आर्य जाति के ही नहीं, बल्कि मानव जाति के भी प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। समस्त मानव जाति के इतिहास, आचार-व्यवहार, रहन-सहन, ज्ञान-विज्ञान और कला-कौशलों के भण्डार हैं। अपनी अत्यंत प्राचीनता के कारण ही नहीं, अपितु भाषा की वैज्ञानिकता, साहित्य की व्यापकता और धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अभ्युदय की दृष्टि से उनका बहुमुखी महत्व है।

वैदिक धर्म सभी मतों और सम्प्रदायों का जनक है। आधुनिक भारत में जितने भी विभिन्न मत मतान्तर प्रचलित हैं उन सभी का मूल स्रोत वेद से ही प्रवाहित होता है। इन धर्मो में सत्य अस्तेय, शौच, आदि सदाचार के अंगों की ही उपलब्धि नहीं है, प्रत्युत अन्य सम्प्रदायों में स्वीकृत परमेश्वर नाम भी वेद से ही गृहीत हुए हैं। ऐसा देखा जाता है यह तत्व तुलनात्मक भाषा विज्ञान पद्धति के अनुसार निश्चित रूप से प्रमाणित किया जा सकता है। हिब्रूमत (जिसका प्रतिपादन बाइबिल के ओल्ड टेस्टामेंट नामक) आदि भाग में मुख्य रूप से मिलता है। यह परमेश्वर के जो 'यहोवा' 'यहेह' इत्यादि अनेक नाम प्रसिद्ध हैं वे वेदवाचक वैदिक 'यद्' शब्द का ही पूर्णतः

अनुसरण करते हैं। यह भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से ही प्रतिभात होता है। ऋगवेद के कई मंत्रों में 'यव्ह' शब्द का उपयोग हुआ है। जैसे–

श्विपतिं यव्हमतिथिं नरः
प्रवो यव्ह पुरूणां विशां देवयतीनाम
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य इलते।

यह 'यव्ह' शब्द 'महत' के नामों में निघंटु में पठित हुआ है। (3/3) 'यव्ह' का अर्थ है महान। इसके व्याख्यानभूत निरुक्त 'यावश्च हूतश्च भवतीति' (8/8) से यही सिद्ध होता है। वैदिक काल से अद्यावधि किसी न किसी रूप में मानव धर्म का इसीलिए आश्रय लेता है ताकि उसे अन्त में सुख और शान्ति की प्राप्ति हो सके। उसे यम इत न ले जायं बल्कि विष्णुदूत ले जायं और स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति करा सकें।

सन्दर्भ स्त्रोत

1. धर्म और दर्शन बलदेव उपाध्याय पृ0 5
2. भारतीय दर्शन बलदेव उपाध्याय पृ. 6
3. भारतीय धर्म और दर्शन पृ. 6
4. वैदिक साहित्य और संस्कृति पृष्ठ 194
5. मनुस्मृति 12/94
6. वैदिक साहित्य और संस्कृति पृ. 88
7. मनुस्मृति 12/102
8. निरुक्तकार यास्क (1/6)
9. ऋग्वेद 3/3/80
10. ऋग्वेद 1/36/91
11. धर्म और दर्शन-8

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

प्रोत्साहन योजनाओं की आवश्यकता एवं महत्व

❒ डॉ. के.के. शर्मा*
❒ मुकेश कुमार तिवारी**

शोध सारांश

कोई भी नवाचार जिस प्रत्यक्ष कारण से किया जाता है, उसी के लिए शायद ही कभी स्वीकार किया जाता हो। लोग उस नवाचार के अनुभव का विश्लेषण करते हैं और उससे होने वाले लाभों को ऑकते हैं। साक्षरता प्राप्ति को एक शिल्प मान लिया गया, जिसकी कोई विशेष और व्यावहारिक आवश्यकता नहीं थी।यह सच है कि उससे लोगों की प्रतिष्ठा बढ़ जाती है, किंतु शिक्षा द्वारा किसी भी परिस्थिति से निपटने की क्षमता लोगों में नहीं आ पाती।

विकासशील देशों में शिक्षा का स्तर और शिक्षित लोगों का अनुपात समाज का शक्ति–समीकरण दर्शाते हैं। शिक्षा–प्रणाली का अध्ययन समाज के स्तरीकरण के स्थूल स्वरूप को समझने की कुंजी है। भारत में स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद चार दशकों में शिक्षा के क्षेत्र में कई गुना विस्तार हुआ है। यदि केवल आँकड़ों को ही आधार मान लिया जाए तो इस क्षेत्र में हुई प्रगति वास्तव में बड़ी उल्लेखनीय रही है, लेकिन इसके अधिकांश लाभ सुविधाभोगी वर्ग ने ही हथिया लिए हैं। देश की फैलती हुई शिक्षा–प्रणाली के लाभार्थियों की दूसरी श्रेणी में जो लोग आते हैं, वे हैं उभरते हुए उच्चवर्ग के लोग तथा अन्य ऊपर की ओर उठते हुए गतिशील समूह। देश की श्रेष्ठ तथा सामान्यतः अच्छी शिक्षा–संस्थाओं में, जिन्हें उनके संसाधनों, सुविधाओं और शिक्षा–स्तर की दृष्टि से इस कोटि में रखा जाता है, समाज के इसी स्तर के बच्चों को शिक्षा दी जाती है। कम सुविधा प्राप्त समूहों के लिए कुछ साधारण कोटि की संस्थाएँ हैं, जिनमें नाम मात्र की शिक्षा दी ही जाती है। स्कूल जाने योग्य आयु वर्ग के सभी बच्चों को इन निम्न कोटि के स्कूलों में भी प्रवेश नहीं मिल पाता। शिक्षा अधूरी छोड़ने वाले और अनुत्तीर्ण रहने वाले छात्रों की संख्या भयावह है। असंख्य छात्र ऐसे स्कूलों से अर्द्ध–साक्षर होकर निकल आते हैं और कुछ ही समय बाद यह अर्द्ध–साक्षरता निरक्षरता में बदल जाती है। ऐसे छात्रों की संख्या बहुत ही थोड़ी होती है जो उन अदृश्य सीमाओं को पार कर पाते

* प्राध्यापक, समाजशास्त्र, शास. ठाकुर रणमत सिंह (दरबार) महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी, एम.ए. (समाजशास्त्र)

हैं जो अल्प सुविधा–प्राप्त समूहों को सुविधा–प्राप्त वर्ग से अलग करती हैं। सार्वजनिक निरक्षरता पर आक्रमण के जो प्रयास पहले किए गए थे, उनमें संकल्प तथा संसाधन–दोनों का अभाव था। इस दिशा में कुछ दुर्बल प्रयास समय–समय पर किए जाते रहे हैं, लेकिन आरंभिक उत्साह के ठंडे पड़ने पर उन्हें जंग खाने के लिए छोड़ दिया गया।

शिक्षा संबंधी आवश्यकता को जन–स्तर पर न समझने का परिणाम यह हुआ है कि उसका विकास संकुचित और खंडित रहा। भारत में असंख्य निरक्षर और अर्द्ध–साक्षर लोग शताब्दियों तक ऐसे अल्पसंख्यकों के साथ रहते आए हैं जो बहुत सुशिक्षित, सुसंस्कृत और विचारशील थे। जीवन का यह एक ऐसा सत्य था जिसे लगता है लोगों ने सामान्य रूप से स्वीकार कर लिया था। भारत में ब्रिटिश शासनकाल में जिस प्रकार की शिक्षा विकसित हुई और जिसकी स्वतंत्र भारत में भी प्रबलता रही, उसने शिक्षा की भूमिका को एक ऐसे साधन के रूप में रेखांकित किया जिससे आर्थिक और सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकें। वास्तविक शिक्षा की अपेक्षा औपचारिक अर्हताओं–प्रमाणपत्रों, डिप्लोमाओं तथा डिग्रियों–की प्राप्ति को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। जिन लोगों का जीवन परंपरा द्वारा बनायी गयी लीक पर चलता था, उन्होंने कभी शिक्षा की आवश्यकता का तीव्रता से अनुभव नहीं किया, बल्कि इसके विपरीत एक वर्ग ऐसा भी था जो उसके समाज में अस्थिरता लाने वाले दुष्परिणामों से भयभीत रहता था। जो नए आर्थिक अवसर पा लेते थे या जिन्होंने अपारंपरिक व्यवसाय और धंधे अपना लिए थे, वे सामान्य समाज से पृथक एक विशिष्ट श्रेणी के रूप में व्यवहार करने लगे। उनका अपने पैतृक समाज से केवल औपचारिक नाता रहा गया था। इन अपवादों को छोड़कर बहुमत उन्हीं लोगों का था जो परंपरा–प्रदत्त सुरक्षा से चिपके रहे, चाहे उससे उन्हें रोटी–कपड़ा भर मिलता हो या थोड़ा–बहुत कुछ और भी मिल जाता हो। उनकी दृष्टि में शिक्षा से इस सुरक्षा को खतरा हो सकता था। इसी के फलस्वरूप इस प्रकार के घिसे–पिटे नारे उभरकर आए, जैसे– 'शिक्षा से बच्चे अवज्ञाकारी बन जाते हैं', 'यदि नारी–शिक्षा को बढ़ावा दिया गया तो स्त्रियाँ हठधर्मी बन जाएँगी', या 'शिक्षित लोग अपने परिवार और रिश्तेदारों के प्रति अपने दायित्व को भूल जाते हैं। जाहिर है, शिक्षा की आवश्यकता और उसके परिणामों के प्रति इस प्रकार की धारणा से उसका प्रचार–प्रसार अवरुद्ध होता रहा। बहुत–से लोगों को यह सुनकर ही हँसी आती थी कि कोई प्रौढ़ व्यक्ति भी पढ़ना, लिखना और हिसाब सीख सकता है। औपचारिक शिक्षा बचपन से लेकर किशोरावस्था तक की पढ़ाई समझी जाती थी और इस वयोवर्ग से ऊपर का कोई व्यक्ति यदि शिक्षा प्राप्त करने की बात करता था, तो वह उपहास का न सही, परिहास का विषय अवश्य बन जाता था।

ऊपर जिन धारणाओं की चर्चा की गयी है, यदि उनमें निहित प्रतिबंध दूर भी हो जाएँ तो जनसाधारण के पास ऐसे अवसर कहाँ हैं कि वे अपने को शिक्षित कर सकें। शिक्षा–संस्थाओं के कार्यक्रम एक विशिष्ट वयोवर्ग के साथ जोड़ दिए गऐ और उनमें एक विशेष धरातल पर ही प्रवेश संभव था। ऐसे प्रौढ़ों के लिए जो या तो स्कूल–प्रणाली का लाभ नहीं उठा सके या जिन्हें किसी–न–किसी कारण से अपेक्षित प्रवीणता प्राप्त किए बिना ही स्कूलों से संबंध तोड़ना पड़ा, शिक्षा–प्राप्ति का एकमात्र साधन साक्षरता–अभियान ही थे, परंतु ये अनमने और प्रेरणाविहीन प्रयास थे जो प्रौढ़ों से वैसी ही कवायद करना चाहते थे जो स्कूलों में छोटे बच्चों को करनी पड़ती थी। इस शिक्षण–अनुभव की अवधि बहुत ही अल्प थी और

उससे जिस मात्रा में ज्ञान तथा शिल्प–कौशल अर्जित किया जा सकता था, वह इतना कम होता था कि कोई भी व्यक्ति उसी के आधार पर आगे स्वयं कुछ नहीं सीख सकता था। यदि कोई उस दिशा में कुछ करना भी चाहता तो उसके लिए आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थीं।

इन तथ्यों को देखते हुए यह बहुत कठिन था कि जनता में शिक्षा के प्रति सच्ची रुचि जगायी जाए, चाहे वह शिक्षा स्कूलों में दी जाती हो अथवा प्रौढ़ शिक्षा–कार्यक्रमों में (पढ़ने–लिखने और सामान्य गणित की अधिकांश ग्रामीणों) यहाँ तक कि शहरी लोगों के काम और रहन–सहन में भी कोई प्रासंगिकता नहीं थी। जो प्रौढ़ इन कक्षाओं में जाते थे उन्हें केवल यही सिखाया जाता था। उन्हें अपनी प्रवेशिकाओं और अन्य साधारण–से चार्टों और पाठ्य–पुस्तकों से पढ़ना सिखाया जाता था, और कुछ सरल वाक्य लिखने का अभ्यास कराया जाता था। उन्हें अंकों से भी परिचित कराया जाता था। किंतु उनसे उन्हें गणित का जो ज्ञान प्राप्त होता था, वह गिनती और सामान्य जोड़ने–घटाने से आगे शायद ही जाता हो। इस बात का कभी प्रयास नहीं किया गया कि इस शिक्षा को उनके रोज़मर्रा की आवश्यकताओं और समस्याओं से जोड़ा जाए। प्रौढ़ शिक्षार्थी पढ़ना सीखने के बाद यह महसूस करते थे कि उनके पास पढ़ने को कुछ है ही नहीं। लिखकर अपनी बात कहने के उन्हें थोड़े ही अवसर मिलते थे। उन्हें जितना गणित सिखाया जाता था, उतना तो वह पहले भी जानते थे। अगर उनके ज्ञान में कोई वृद्धि होती भी थी तो इतनी कि वे अंकों का प्रतीकात्मक प्रदर्शन समझ जाते थे। इस बात की पुनरावृत्ति के अतिरिक्त साक्षरता का अपने–आप में बहुत महत्त्व है, लोगों को यह समझाने का कोई प्रयास नहीं किया गया कि उनके लिए साक्षर होना आवश्यक क्यों है? परिणाम यह हुआ कि साक्षर बनाने के लिए उन्हें कभी सबल अभिप्रेरणा नहीं दी जा सकी। लोग प्रायः कार्यक्रम संचालित करने वालों की इच्छाओं का पालन ही करते रहे। आगे चलकर जो शिक्षा सिद्धांत बनाए गए, उनमें इस प्रकार के कार्यक्रमों में वृत्तिमूलकता के महत्व पर बल दिया गया, लेकिन इस पक्ष को वास्तविक कार्यक्रमों में ठीक ढंग से उतारा नहीं गया। वे प्रारंभिक व्यवस्था में स्थापित घिसी–पिटी प्रक्रिया का ही अनुसरण करते रहे।

कोई भी नवाचार जिस प्रत्यक्ष कारण से किया जाता है, उसी के लिए शायद ही कभी स्वीकार किया जाता हो। लोग उस नवाचार के अनुभव का विश्लेषण करते हैं और उससे होने वाले लाभों को ऑकते हैं। साक्षरता प्राप्ति को एक शिल्प मान लिया गया, जिसकी कोई विशेष और व्यावहारिक आवश्यकता नहीं थी।यह सच है कि उससे लोगों की प्रतिष्ठा बढ़ जाती है, किंतु शिक्षा द्वारा किसी भी परिस्थिति से निपटने की क्षमता लोगों में नहीं आ पाती।

शिक्षा पर व्यय का भी अपना महत्व है। यह सच है कि प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों में फीस नाममात्र की थी, लेकिन गरीबों के पास तो उतना भी देने के लिए नहीं था। पाठ्य–पुस्तकों और लेखन–सामग्री पर अलग खर्च आता था। बच्चे को स्कूल भेजने का अक्सर यह मतलब होता था कि उसे ऐसे काम से दूर कर दिया जाए, जहां वह कुछ उत्पादन कर सकता है या कुछ कमा सकता है। इस प्रकार शिक्षा में नष्ट होने वाले समय का मतलब था रोजगार से प्राप्त आय का कम होना, चाहे वह रोजगार परिवार का परंपरागत शिल्प हो या मजदूरी का अन्य काम, इस कारण अनेक लोगों ने शिक्षा का विरोध किया। शिक्षा का लाभ बहुत देर में जाकर मिलता है और उसके अंतर्गत जीवन के वे क्षेत्र आते हैं, जिनकी माता–पिता

को न समझ है और न उनकी दृष्टि में उसकी कोई कद्र है।

सार्वजनिक शिक्षा के कार्यक्रम शिथिल रहे, क्योंकि उस दिशा में सुसंगत प्रयास नहीं किए गए। अनुकूलतम समय में भी उन प्रयासों के पीछे सबल सामाजिक इचछा शक्ति नहीं रही। जब उनका प्रारंभिक जोश ठंडा पड़ा तो वे प्रायः अनुष्ठान मात्र बनकर रह गए। इन कार्यक्रमों के सशक्त आंदोलन का रूप धारण करने के लिए कल्पनाशक्ति, नवाचार, नम्यता तथा गत्यात्मकता आवश्यक थी, उसका उनमें सामान्यतः अभाव रहा। व्यवहार में सार्वजनिक शिक्षा की इस रूप में भी कल्पना ही नहीं की गयी कि वही शिक्षा के भव्य प्रसाद की आधारशिला है। उसे तो अधिक–से–अधिक सतही दिलचस्पी का विषय या किसी मुख्य कार्य से जुड़ा हुआ एक गौण कार्य ही माना गया था। अतः यह स्वाभाविक ही था कि इस प्रकार के बेमन प्रयत्नों का अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ सका।

भारत की ही क्या, किसी भी विकासशील देश की जनता से यह अपेक्षा करना बेकार है क्योंकि उनके देश के संविधान–निर्माताओं ने अपनी विवेकशीलता का परिचय देते हुए निरक्षरता उन्मूलन और शिक्षा के कुछ निश्चित मानकों की प्राप्ति को राज्य–नीति के एक उद्देश्य के रूप में निर्धारित कर दिया है, इसलिए वह साक्षरता–कार्यक्रमों में बड़े उत्साह के साथ भाग लेंगी। लोग साक्षरता के सैद्धान्तिक महत्व को भले ही मान लें, किंन्तु यदि उन्हें साक्षर बनने और बने रहने के लिए सतत् प्रयास करने पड़ें तो उसके लिए यह आवश्यक है कि उन्हें उसमें व्यक्तिगत और सामूहिक लाभ मिलने की संभावना भी दिखे। शिक्षा–अनुभव में सामाजिक प्रतिष्ठा देने के अतिरिक्त आर्थिक लाभ, कार्यचालन में दक्षता, नीरसता में कमी और रोज़मर्रा के काम में सुगमता या निपुणता प्रदान करने का भी स्पष्ट आश्वासन होना चाहिए। इन सबसे बढ़कर जनसाधारण में इसे ऐसी क्षमता पैदा करनी चाहिए, जिससे कि वह सामाजिक पर्यावरण और उसमें अपनी स्थिति पर विचार कर सके, इस योग्य हो जाए कि अपने हितों की रक्षा स्वयं करें और अपने अधिकारों के लिए लड़ सके,यदि विकास और मुक्ति के दोहरे उद्देश्य के साथ अधिक व्यावहारिक लाभ की संभावनाओं को जोड़ दिया जाए, तो शिक्षा को सबल प्रोत्साहन मिल सकता है।

संदर्भ

1. Dipak Kumar Bhattacharyya, 2nd edition Research Methodology, Excell Books A-45, Naraina Phase-I New Delhi.
2. Davies, Banield, Sheahan : The Humane Technologist, Oxford.
3. Development of Education in India, 1993-94, Department of Education; Ministry of Human Resource Development, Govt. of India, New Delhi.
4. Dr. S.M. Shukla & Dr. S.P. Sahai Statistical analysis Sahitya Bhawan publications.
5. Dunkin, et., (1974) : ?The Study of Teaching.
6. Electronic Mail (1998) Planning Commission, National Informatics Centre, New Delhi.

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

बहिर्विवाह का विश्लेषण

❒ डॉ. राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी*
❒ डॉ. पंकजा मिश्रा**

शोध सारांश

'गोत्र' का अर्थ 'दुर्ग' अथवा पर्वत से लिया गया है। वस्तुतः गोत्र उस आदि पुरुष के लिए प्रयुक्त किया गया जिन्हें 'कुल' या 'वंश' की संज्ञा दी गयी, जो विद्या, धन, शौर्य, औदार्य आदि गुणों के लिए विख्यात हुआ और कालान्तर में जिसके नाम से वंश अथवा कुल का विकास हुआ। उपनिषदों में अनेक स्थलों पर भारद्वाज, गार्ग्य, आश्वलायन भार्गव, कात्यायन, गौतम, कश्यप आदि जैसे ऋषियों के नाम पर गोत्रों की चर्चा की गयी है। कालान्तर में इन्हीं ऋषियों के नाम पर वंशगत गोत्र का विकास हुआ। बौद्ध–युग तक आते–आते विवाह के लिए गोत्र का महत्व बढ़ चुका था। मज्झियनिकाय में उल्लिखित है कि यदि कोई पुरुष किसी स्त्री से प्यार करता है तो उसे उसका गोत्र और जाति जाननी चाहिए। प्रायः सभी धर्मशास्त्रों में समान गोत्र वाली कन्या से विवाह करना वर्जित माना गया है। ब्राह्मणों का अपना वास्तविक गोत्र होता है तथा क्षत्रियों और वैश्यों का उनके पुरोहितों पर आश्रित होता है। शूद्रों का गोत्र नहीं होता धर्म सूत्रकारों का कथन है कि द्विजातियों को अपने गोत्र के बाहर विवाह करना चाहिए।

विवाह तय करते समय उनके सामाजिक वर्ग तथा वंश का विशेष ध्यान रखा जाता था। इनमें गोत्र, प्रवर, पिण्ड प्रमुख हैं। समय–समय पर इनमें बहुत परिवर्तन भी लक्षित हुए है। विशिष्ट सामाजिक समुदाय एवं वंश गत पीढ़ीं बहिर्विवाह के निर्णायक तत्व माने जाते रहे हैं। हिन्दू समाज में सगोत्र सप्रवर और सपिण्ड विवाह निषिद्ध किए गये हैं। धर्मशास्त्रकारों ने एक ही गोत्र प्रवर और पिण्ड में परस्पर विवाह करना वर्जित किया है।[1] अपनी जाति के भीतर ही भिन्न गोत्र, प्रवर और पिण्ड में विवाह होता रहा है। प्रत्येक जाति में विभिन्न गोत्र पिण्ड और प्रवर हैं, जिनमें विवाह सम्बन्ध स्थिर होता है।

गोत्र बहिर्विवाह–

गोत्र का अर्थ साधारणतः पूर्व पुरुष को व्यक्त करता है।[2] 'गोत्र' शब्द के अनेक अर्थ मिलते हैं।

* प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष–संस्कृत, शास. टी.आर.एस. महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी, शास. टी.आर.एस. महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

'गोत्र' शब्द 'गोशाला' गायों का समूह और व्यक्तियों के समूह के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है।[3] पाणिनि ने 'गोत्र' शब्द की व्याख्या वंश या कुल के अर्थ में की है।[4] सम्भवतः एक ही स्थान अथवा क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों को एक गोत्र का सदस्य गिना गया।

'गोत्र' का अर्थ 'दुर्ग' अथवा पर्वत से लिया गया है। वस्तुतः गोत्र उस आदि पुरुष के लिए प्रयुक्त किया गया जिन्हें 'कुल' या 'वंश' की संज्ञा दी गयी, जो विद्या, धन, शौर्य, औदार्य आदि गुणों के लिए विख्यात हुआ और कालान्तर में जिसके नाम से वंश अथवा कुल का विकास हुआ।[5] उपनिषदों में अनेक स्थलों पर भारद्वाज, गार्ग्य, आश्वलायन भार्गव, कात्यायन, गौतम, कश्यप आदि जैसे ऋषियों के नाम पर गोत्रों की चर्चा की गयी है।[6] कालान्तर में इन्हीं ऋषियों के नाम पर वंशगत गोत्र का विकास हुआ। बौद्ध–युग तक आते–आते विवाह के लिए गोत्र का महत्व बढ़ चुका था।[7] मज्झियनिकाय में उल्लिखित है कि यदि कोई पुरुष किसी स्त्री से प्यार करता है तो उसे उसका गोत्र और जाति जाननी चाहिए।[8] प्रायः सभी धर्मशास्त्रों में समान गोत्र वाली कन्या से विवाह करना वर्जित माना गया है। ब्राह्मणों का अपना वास्तविक गोत्र होता है तथा क्षत्रियों और वैश्यों का उनके पुरोहितों पर आश्रित होता है। शूद्रों का गोत्र नहीं होता धर्म सूत्रकारों का कथन है कि द्विजातियों को अपने गोत्र के बाहर विवाह करना चाहिए।[9]

असम्नानप्रवरे र्विवाहःसगोत्रां चेदमत्योपयच्छेद् मातृवेदनां विभृयात्।

अलबरूनी का कथन है कि हिन्दुओं में अपनी वंशजा अर्थात् पोती या परपोती तथा अपनी पूर्वजा माताः दादी या परदादी, दोनों प्रकार की सगोत्र स्त्रियों के साथ विवाह वर्जित है।[10]

मातृवत् व्यवहार करने के लिए निर्दिष्ट किया है।[11] सगोत्र कन्या से विवाह करने पर चान्द्रायण व्रत करने की व्यवस्था की गयी है तथा समान गोत्र प्रवरा कन्या से विवाह करने वाले ब्राह्मण को चाण्डाल उत्पन्न करने वाला कहा गया है।[12] इन साक्ष्यों से स्पष्टतः प्रमाणित होता है कि सगोत्र विवाह हिन्दू–समाज में निन्द्य माना जाता था।

प्रवर–बहिर्विवाह–प्रवर कुछ ऐसे संस्कारों और ज्ञान से सम्बन्धित सम्प्रदा की ओर संकेत करता है जिनसे व्यक्ति आबद्व होता है।[13] उत्तर वैदिक काल में 'प्रवर' 'आर्षेय' के रूप में प्रारम्भ हुआ जो होता के याज्ञिक कार्य से सम्बन्धित था। प्रवर का अर्थ साधारणतः वरण करने या आवाहन करने योग्य 'प्रार्थनीय' से रहा है, जो श्रेष्ठ–पूर्वजों या ऋषियों की ओर संकेत करता है। कालान्तर में यह शब्द पूर्वज ऋषि–नामों से सम्बद्ध हो गया।[14] प्रवर का सम्बन्ध रक्त से न होकर व्यक्ति की पारम्परिक धार्मिक और सामाजिक प्रक्रियाओं से हुआ। साधारणतः प्रवर ब्राह्मण समाज में ही विकसित हो सका, क्योंकि समस्त धार्मिक याज्ञिक और आध्यात्मिक कार्य ब्राह्मण ही करते थे, अन्य वर्णो का इन कार्यो से कोई सम्बन्ध नहीं था। समाज 'प्रवर' में विवाह करना गुरुतल्पोरोहण सदृश पाप माना गया है।[15] ऐसा विवाह करने वाले ब्राह्मण को चाण्डाल उत्पन्न करने वाला कहा गया है।

समान गोत्रप्रवराम् कन्यामूढ़ोपगम्य च।
तस्यामुत्पाद्य चाण्डाल ब्राह्मण्यादेव हीयते।।

आपस्तम्ब द्वारा विवाह असमानप्रवर में ही होता था यही लोक–स्वीकृत था। समान प्रवर–विवाह निन्दनीय था।[16] प्रवर में प्रायः तीन ऋषियो के नाम आबद्ध होते थे। कभी–कभी पांच ऋषियों में प्रवर से सम्बन्धित किसी एक मत का प्रतिपादन नही प्राप्त होता है।[17]

सपिण्ड–बहिर्विवाह–सपिण्ड का तात्पर्य समान रक्त कणों से अथवा एक ही पिण्ड से अथवा एक से शरीर से है। सपिण्ड वह है जिसमें समान पिण्ड (अर्थात् एक ही शरीरांश) हो। पुत्र का पिता के साथ सपिण्ड सम्बन्ध इसलिए है कि पिता के शरीर के कण उसमें वर्तमान है। इसी प्रकार पितामह और प्रपितामह आदि से उसका सपिण्ड सम्बन्ध है। पुत्र का माता के साथ सपिण्ड सम्बन्ध इसलिए है कि उसमें माता के शरीर के अंश विद्यमान हैं। इसी प्रकार मातामह, मातुल, मातृस्वसा अदि से उसका सपिण्ड सम्बन्ध है। मिताक्षरा के अनुसार 'सपिण्ड' का अर्थ समान रक्त–कण से है जिसमें अपने पूर्वज का रक्त है, वह सपिण्ड है। ऐसे एक ही पिण्ड के लोगों का एक ही पिण्ड में विवाह नही हो सकता। दायभाग में सपिण्ड की व्याख्या दूसरे रूप में है इसके अनुसार पिण्ड के अर्थ चावल के गोलों से है जो श्राद्व के समय पितरों को अर्पित किये जाते हैं। जितने लोग एक ही पूर्वज को चावल का गोला अर्पित करते हैं वे सब सपिण्ड हैं। इनके बीच वैवाहिक सम्बन्ध नहीं स्थापित किये जा सकते हैं। अतएव शरीर के अवयवों की क्रमबद्वता समानपिण्डता से सिद्ध होती है। रक्त सम्बन्ध से आबद्व सम्बन्धी, सपिण्ड के अन्तर्गत आते हैं। प्रायः पिता से सात पीढ़ी और माता से पांच पीढ़ी के भीतर के लोग सपिण्ड कहे जाते है। वर से सात पीढ़ी और कन्या से पाँच पीढ़ी का अंतर अपेक्षित माना गया।[18]

वैदिक साहित्य में सपिण्डता पर कोई विशेष विचार नहीं किया गया परिलक्षित होता है। किन्तु उस युग में कन्या को 'दुहिता के रूप में दूर व्याहा जाता था। वैसे उस युग में ममेर, चचेरे, मौसेरे और फुफेरे भाई–बहनों में विवाह तय हुआ करता था। ऐसे वेदमन्त्र हैं, जो इनकी पुष्टि करते हैं।[19] महाभारत में सपिण्ड विवाह के कतिपय वर्णन उपलब्ध होते हैं। अर्जुन और सुभद्रा का विवाह इसी प्रकार का विवाह था।[20] बौद्ध साहित्य में भी ऐसे विवाहों के कुछ विवरण मिलते हैं। मगध नरेश अजातशत्रु का विवाह अपने मामा कौशल नरेश की पुत्री वाजिरा के साथ हुआ था।[21] महावीर स्वामी के अग्रज नन्दिवर्द्धन ने अपनी मातुल–दुहिता ज्येष्ठा से पाणिग्रहण किया था। बौद्ध–युगीन काशी एवं शिवि राज्य के राजकुमारों ने अपनी भगिनियों से विवाह किये थे।[22] राजकुमारी चित्रा ने अपने मामा के लड़के 'दीय गामिनी' ने साथ पाणि–ग्रहण किया।[23] मधा नामक गृहस्थ ने अपनी ममेरी बहन सुजाता से विवाह किया था। इस तरह के सपिण्ड विवाह प्रायः राजकुलों मे ही प्रचलित थे, किन्तु साधारण जनता में भी ऐसे विवाह अनजाने नही थे। जातकों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलने है, जिनमें यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में सपिण्ड विवाह यदा–कदा हो जाया करते थे तथा इन्हें निम्न दृष्टि से नहीं देखा जाता था।

धर्मसूत्रों मे सपिण्ड–विवाह का स्पष्ट निषेध किया गया है। इनके अनुसार पिता के पक्ष में सात पीढी तथा माता के पक्ष में पांच मे सात पीढी तथा माता के पक्ष में पांच पीढ़ी तक विवाह वर्जित था। गौतम ने सपिण्ड–विवाह करने वालों की भर्त्सना की है। उनके अनुसार सपिण्डता के नियमों का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति जाति–भ्रष्ट एवं पतित हो जाता है। वह पुनः आगे कहते है। कि सात और पांच पीढ़ी के बाद ही सपिण्डता से निवृत्ति मिलती है। इसके पहले नही। बौधायन ने दक्षिणात्मों मे प्रचलित ऐसे विवाहों का संकेत किया है,जहाँ लोग मामा एवं बुआ की लड़की से विवाह करते थे। मनु ने असपिण्ड विवाह का समर्थन किया हैं तथा सात और चार पीढ़ी तक ऐसे विवाह न करने की सलाह दी है।[24] याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट रूप से पिता की सात पीढ़ी तथा माता की पांच पीढ़ी तक विवाह न करने का संकेत किया है। अन्य स्मृतियों मे भी प्रायः पिता की सात

और माता की पाँच पीढ़ी तक का निषेध किया गया है। पुराणो ने भी पिता और माता की क्रमशः सात और पांच पीढी तक विवाह न करने का निर्देश दिया है। अलबरूनी का कथन है कि सपिण्ड सम्बन्धी–बहन, भतीजा, मौसी या फुफी और उनकी पुत्रिया–विवाह के लिए निषिद्ध है। यह निषिद्धता उस स्थिति में नहीं रहती जब विवाह–सम्बन्ध स्थापित करने वाले व्यक्ति पांच पीढी तक एक दूसरे से अलग रहे हों। किन्तु इतना होने पर भी ऐसा विवाह उनमें पसन्द नहीं था।

बहिर्विवाह का विश्लेषण–बहिर्विवाह व्यवस्था से हिन्दू समाज को प्रगतिशील और स्वस्थ विचार प्राप्त हुआ जिसके फलस्वरूप सामाजिक और धार्मिक विशुद्धता और एकता का विकास हुआ।

उत्तम सन्तान :– जैविकीय दृष्टिकोण से बहिर्विवाह एक उदात्त और उत्तम व्यवस्था रही है, जिससे स्वस्थ, सुन्दर और बुद्धिमान सन्तान की प्राप्ति होती थी। आज भी अनेक जीवन शास्त्रियों ने इस व्यवस्था की सराहना की है तथा यह मत व्यक्त किया है कि निकट–सम्बन्धियों के बीच विवाह करने से सन्तानों में शारीरिक–दोष आ जाते है। जिनसे उनका स्वाभाविक विकास अवरूद्ध हो जाता है।

पारस्परिक सम्पर्क :– बहिर्विवाह–व्यवस्था के अनुपालन से विभिन्न समूह एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आते थे तथा विवाह के माध्यम से सौहार्द और सहयोग स्थापित करते थे।

नैतिकता–स्थापन :–जाति समूहों में नैतिकता और सच्चरित्रता स्थापित करने के लिए यह विवाह–व्यवस्था अत्यत्त लाभकारी रही जिससे पारिवारिक रक्त–सम्बन्ध और अनाचार से समाज बच गया।

दोष–रहित होने का अवसर :– बहिर्विवाह–व्यवस्था से एक पीढ़ी को अपनी दोष दूर करने का अवसर प्राप्त हुआ, क्योंकि रक्त–सम्बन्धियों के बीच विवाह होने से रक्त में परिवर्तन न होने के कारण एक पीढ़ी के रक्त–दोष दूसरी पीढ़ी में निरन्तर आते रहते हैं। आधुनिक समाज–शास्त्रियों ने इस व्यवस्था की प्रशंसा की और यह विचार प्रकट किया है कि अन्तर्विवाही रूढ़िवादी हैं जबकि बहिर्विवाही प्रगतिशील।[25] वस्तुतः बहिर्विवाही व्यवस्था समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी और लाभकारी रही है जिससे सांस्कृतिक विकास होता रहा है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार हिन्दू–समाज में सगोत्र सप्रवर और सपिण्ड विवाह पूर्णतः वर्जित माने जाते रहे हैं। बहिर्विवाह का ही हिन्दू परिवार मे सम्मान होता रहा है। अपने कुटुम्ब में विवाह न करके माता–पुत्र, भाई–बहन और पिता–पुत्री के बीच यौन–सम्बन्ध को प्रतिबन्धित करना है, इसलिए धर्मशास्त्रों में ऐसे सम्बन्ध को अत्यन्त अनैतिक और गर्हित माना गया है।

संदर्भ स्रोत

1. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2/11/15
2. सगोत्रय दुहितरं नप्रपच्छेत्। वि. धर्मसूत्र 249–10 मनुस्मृति, 3/5
3. असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः। सा प्रसस्ता द्विजातीनां दारकार्मण्य मैथुनी।।
4. शब्द कल्पद्रुम द्वि. सं. पृष्ठ 355 पूर्वपुरुषात् यन्तत गोत्रम्।
5. ऋग्वेद, 2/23/16, 6/65/5, अथर्ववेद, 5/21/3,
6. अष्टाध्यायी, 4/1/93,
7. मनुस्मृति, 35, 3/194.
8. प्रश्नोपनिषद्, 1/1, छान्दोग्य उपनिषद 5/141, 5/16/1, वृ. 3., 2/2/4,

9. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 303
10. मज्झिमनिकाय, 2/40.
11. गौतम धर्मसूत्र, 4/2, बौधायन धर्मसूत्र, 2/1/37
12. ग्यारहवीं सदी का भारत, पृष्ठ 144.
13. बौधायन पराः स्मृति द्वारा उद्धृत, 2/2, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास से उद्धृत।
14. अपरार्क, पृ. 80, आपस्तम्ब द्वारा उद्धृत, पृ. 16
15. मैरेज एण्ड फैमिली इन इण्डिया, पृष्ठ 128.
16. गोत्र–प्रवर–निबन्ध–कदम्ब, पृष्ठ 269.
17. गौतम धर्मसूत्र, 4/2/23/12. असमान प्रवरेर्विवाहः समान एकः प्रवरो येषां तैः सह न विवाहः। 1/23/12, नारदस्मृति, 12/7.
18. आपस्तम्ब–पृष्ठ 166.
19. आपस्तम्ब श्रौतसूत्र, 24/5–6.
20. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 306.
21. ऋग्वेद, 7/55, परिशिष्ट 11.
22. महाभारत, आदिपर्व, 111/1–3.
23. जातक, 2, पृ. 237/403–4/4, पृ. 342–43.
24. जातक, 1, पृ. 457/2, पृ. 327/6, पृ. 486
25. महावंश, अध्याय 9.

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

मन्वन्तर और उसके अधिकारी

❐ शिवाली त्रिपाठी

शोध सारांश

इस संसार में कई मन्वन्तर होते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर का अधिकारी भी पृथक् पृथक् होते हैं। जब उनका समय समाप्त हो जाता है तब वे स्वतः अपना अधिकार त्याग देते हैं। उनके स्थान पर दूसरा अधिकारी नियुक्त हो जाता है। इस कार्य में विष्णु ही सहायक होते हैं। मन्वन्तर का सम्बन्ध मनु से भी है। मनु हमारे आदि राजा हैं। उन्हीं की संताने तो मानव के नाम से जानी जाती हैं। मनु ने सृष्टि कार्य में बहुत ही सहयोग प्रदान किया है।

प्रत्येक मन्वन्तर में अधिकांश पुराणों के अनुसार पाँच (भागवत के अनुसार छः) अधिकारी होते हैं, जो अपना विशिष्ट कार्य सम्पादित करने आते हैं और उस कार्य के अवसान होने पर, मन्वन्तर के परिवर्तन होने पर, वे अपने अधिकार को छोड़कर निवृत्त हो जाते हैं। उनके स्थान पर नये मन्वन्तर में नये अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं। इन अधिकारियों के रूप में भगवान् विष्णु की ही शक्ति समर्थ तथा क्रियाशील रहती है, और इन अधिकारियों को विष्णुपुराण स्पष्ट शब्दों में विष्णु की विभूति मानता है।[1] 'विष्णु' शब्द की निष्पत्ति 'विश् प्रवेशने' धातु से होती है और इसलिए यह समग्र विश्व जिस परमात्मा की शक्ति से व्याप्त है, वही विष्णु नाम से अभिहित किये जाते हैं।[2]

इन अधिकारियों के नाम विष्णुपुराण[3] के अनुसार हैं– (1) मनु, (2) सप्तर्षि, (3) देव, (4) देवराज इन्द्र तथा (5) मनुपुत्र। श्रीमद्भागवत में इन पाँचों अधिकारियों के साथ ही हरि के अंशावतार की भी कल्पना कर संख्या में एक की वृद्धि की गयी है–

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः।
ऋषयोंऽशावतारश्व हरेः षड्विधमुच्यते।।[4]

इन अधिकारियों का कार्य बड़ा ही विशिष्ट तथा महत्त्वपूर्ण है। विष्णु पुराण के कथनानुसार जब चतुर्युग समाप्त हो जाता है, तब वेदों का विप्लवलोक हो जाता है। उस समय वेदों का प्रवर्तन नितान्त आवश्यक हो जाता है, और इस राष्ट्रहित के कार्यनिमित्त सप्तर्षि लोग स्वर्ग से भूतल पर आकर उन उच्छिन्न तथा विप्लुत वेदों का प्रवर्तन करते हैं। अतः सप्तर्षि प्रत्येक मन्वन्तर में वेदों के प्रवर्तक रूप से अधिकारी है।[5] सूर्य–सिद्धान्त के मत का प्रतिपादन ऊपर किया गया है, जो चतुर्युग के अन्त में जलप्लावन की घटना का अवश्यम्भावी रूप से उल्लेख करता है। इसलिए प्रत्येक सत्ययुग के आदि में मनुष्यों की धर्ममर्यादा स्थापित करने के निमित्त स्मृति के प्रणयनकार्य के लिए मनु का जन्म होता है। फलतः स्मृति–रचयिता

* शोधार्थी

के रूप में मनु का अधिकारी होना उचित ही है। मनु की व्यवस्था में द्विजों के लिए यज्ञ का सम्पादन नितान्त आवश्यक कृत्य है। फलतः मन्वन्तर के अन्त तक देवता लोग यज्ञ–यागों के फल भोगने का कार्य करते हैं और इस प्रकार के अपने अधिकार को चरितार्थ करते हैं। देवों के राजा होने से इन्द्र का भी अधिकारी होना स्वभाव सिद्ध है। संसार की वृद्धि तथा अभ्युदय के लिए बीज का पर्याप्त उद्‌गम होना आवश्यक होता है, और इस कार्य को जल की वृष्टि कर भगवान् इन्द्र ही करते हैं। फलतः मन्वन्तर में उनका एक विशिष्ट अधिकारी होना न्याय्य है।[6] मनुपुत्र से तात्पर्य क्षत्रिय राजाओं से है, जो उस समय पृथ्वी का पालन तथा प्रजावर्ग का संरक्षण करते हैं। 'मनुपुत्र' की अन्वर्थता इस हेतु से है कि ये राजा लोग परम्परया मनु की सन्तान है अथवा तदीय वंश में अन्तर्भुक्त न होने पर भी मनु–प्रणीत व्यवस्था पद्धति का समाश्रयण करते हैं दण्डनीति के विधान में, और इस प्रकार प्रजाओं के संरक्षण में वे सर्वथा कृतकार्य होते हैं। भागवत के कथनानुसार प्रति मन्वन्तर में हरि के अंशावतार का भी उदय होता है। अवतार का कार्य विश्रुत ही है– धर्म का संरक्षण होने पर भक्तवत्सल भगवान् इस भूतल पर अपने प्रतिज्ञानुसार स्वयं अवतीर्ण होते हैं और भक्तों का क्लेश स्वयं ध्वस्तः कर देते हैं। अतएव भागवत द्वारा अंशावतार को षष्ठ अधिकारी मानने में सर्वथा औचित्य उद्‌भासित होता है।

निष्कर्ष यह है कि पुराण मनु को एक विशिष्ट दीर्घकाल के लिए सम्राट् तथा शास्ता मानता है। मनु आदि पाँचों व्यक्ति भगवान् विष्णु के सात्त्विक अंश हैं, जिसका कार्य ही है जगत् की स्थिति करना–

मनवो भूभुजः सेन्द्रा देवाः सप्तर्षयस्तथा।
सात्त्विकोंऽशः स्थितिकरो लगतो द्विजसत्तम।।[7]

फलतः जगत् के संरक्षण के कार्य में सहायक जितने भी अधिकारी होते हैं, वे मनु के साथ ही उत्पन्न होते हैं, अपना विशिष्ट कार्य सम्पादित करते हैं, जिससे लोक में सुव्यवस्था की शीतल छाया मानवों का मंगल करती है। जिससे लोक में मन्वन्तर की कल्पना लोकमंगल की भावना का एक जाग्रत् प्रतीक हैं। बिना सुव्यवस्था हुए विश्व का कल्याण हो नही सकता और मन्वन्तर सुव्यवस्था के निर्धारण का एक सुचारु साधन है– यही उसका मांगलिक पक्ष हैं।

अधिकारियों के नाम

मन्वतरों के आदिम आठ मन्वन्तरों का बड़ा ही विशद विवरण मार्कण्डेय पुराण में दिया गया हैं। इसमें प्रत्येक मनु का वैयक्तिक जीवनचरित बड़े विस्तार से दिया गया है, जो अन्य पुराणों में उपलब्ध नहीं होता। यथा–स्वारोचिप मनु की कथा 61 अ0 से आरम्भ कर 67 अ0 तक , उत्तम मनु की कथा 69 अ0 से 74 अ0 तक, तामस की कथा 74 अ0 में, रैवत की कथा 75 अ0, वैवस्वत मनु की 70 अ0 से लेकर 79 अ0 तक है। अष्टम मनु सावर्णि के चरित–प्रसंग में ही देवी–माहात्म्य का विशद विवरण तेरह अध्यायों में (81अ0–93 अ0) दिया गया है, जो मार्कण्डेयपुराण का प्रकृष्ट वैशिष्टय है। अन्य पुराणों में यत्र–तत्र इन मनुओं की जीवन लीलाओं का सामान्य संकेत ही उपलब्ध होता है, इतना विस्तार नहीं।

प्रथम पाँच मनुओं का सम्बन्ध एक ही व्यक्ति के साथ निश्चित रूप से घटित माना गया है और वह व्यक्ति हैं मानवों के आदि स्त्रष्टा स्वायम्भुव पुराण स्वारोचिषु, उत्तम, तामस तथा रैवत की गणना करता है।[2] विष्णु–पुराण इस सामान्य निर्देश से ही सन्तोष करता है कि ये चारों मनु प्रियव्रत के अन्वय या वंश में उत्पन्न थे, परन्तु श्रीमद्‌भागवत का उल्लेख अधिक स्पष्ट तथा विशद है। वह कहता[3] है कि प्रियव्रत की अन्य जाया (बहिष्मती से भिन्न भार्या) से उत्पन्न पुत्र उत्तम, तामस तथा रैवत तीनों ही क्रमशः तृतीय, चतुर्थ तथा पञ्चम मन्वन्तरों के अधिपति थे।

इसका तात्पर्य यह है कि स्वायम्भुव मनु ही निश्चित रूप से इस मन्वन्तर परम्परा के प्रवर्तक हैं और उन्हीं के वंशधर ही इस महनीय तथा मान्य

1. द्रष्टव्य, भागवत अष्टम स्कन्ध, 14 अध्याय, जहाँ विष्णुपुराणोक्त तथ्य का पर्याप्त समर्थन किया गया है।

2. स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा।
प्रियव्रतान्वया होते चत्वारों मनवः स्मृताः।।
–विष्णु.,3 /1 /24

3. अन्यस्यामपि जायायां त्रयः पुत्रा आसन् उत्तमस्तामसों रैवत इति मन्वन्तराधिपतयः।।
–भागवत, 5 /1 /28

उपाधि के धारण करने की योग्यता रखते थे और इसी कारण यह पद इसी वंश कम से कम पाँच मन्वन्तरों तक अवश्यमेव वर्तमान था। मन्वन्तर की काल–गणना तीस करोड़ वर्षों से भी अधिक ही है। ऐसी दशा में उत्तम, तामस तथा रवैत जैसे सहोदर भ्राताओं के क्रमशः विभिन्न मन्वन्तरों के अधिपति होने की घटना पर ऐतिहासिक विपर्यय का दोष इसलिए नहीं लगाया जा सकता कि भागवत के अनुसार प्रियव्रत ने एकादश अर्बुद (अरब) वर्षों तक अकेले ही राज्य का निर्वाह किया था। तब ऐसे दीर्घजीवी पिता के पुत्रों को अलौकिक दीर्घ आयु मिलना कोई विलक्षण वस्तु नहीं मानी जा सकती। जो कुछ भी हो, इन तीनों का प्रियव्रतान्वय में अन्तर्भुक्त होना विष्णुपुराण के आधार पर भी मान्य है।

प्रत्येक मन्वन्तर के अधिकारियों का नामनिर्देश अनेक पुराणों में उपलब्ध है। विष्णुपुराण का विवरण बड़ा ही सुव्यवस्थित तथा विशद है।[2] भागवत में भी यह अनेक अध्यायों में है।[3] विस्तृत होने से यह सूची यहाँ नहीं दी गयी है। केवल वर्तमान मन्वन्तर के अधिकारियों का ही नाम यहाँ दिया गया है। वर्तमान मन्वन्तर सप्तम है वैवस्वत् मन्वन्तर जिसके मनु सूर्य (विवस्वान्) के पुत्र महातेजस्वी तथा बुद्धिमान् श्राद्धदेव हैं। इस मन्वन्तर में आदित्य, वसु तथा रुद, विश्वेदेव, मरुद्गण, अश्विनी और ऋभु–ये देवगण हैं। देवराज इन्द्र का नाम पुरन्दर है। कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ , विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि तथा भरद्वाज – ये सप्तर्षियों के नाम हैं। मनु–पुत्रों की संख्या में मतभेद है। विष्णुपुराण के अनुसार वैवस्वत मनु के 9 पुत्र हैं–इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नारिष्यन्त, नाभाग, अरिष्ट, करूष तथा पृषध्र (3 /1 /33–34)। भागवत के अनुसार यह संख्या 10 हैं और पुर्व की गयी है (भागवत, 8 /13 /2–3)।

भागवत ने प्रत्येक मन्वन्तर में भगवान् के विशिष्ट अंशावतार का भी निर्देश किया है। भगवान् स्वयं अवतार लेकर उस मन्वन्तर में होने वाली धार्मिक अव्यवस्था को दूर करते हैं, जगत् में मंगल का साधन करते हैं, जिससे प्राणिमात्र का कल्याण होता है। तथ्य तो यही है कि समस्त मन्वन्तरों में देवरूप में स्थित होने वाले भगवान् विष्णु की अनुपम और सत्वप्रधाना शक्ति ही संसार की स्थिति में उसकी अधिष्ठात्री होती है–

1. भागवत, 5 /1 /29।
2. विष्णुपुराण, अंश 3, अध्याय 1 तथा 2।
3. भागवत, स्कन्ध 8, अध्याय 5 तथा 13।

विष्णुशक्तिरनौपम्या सत्वोद्रिक्ता स्थितौ स्थिता।

प्रत्येक मन्वन्तर में विष्णुपुराण के अंशावतारों का विवरण विष्णुपुराण में मिलता है (3 /1 /36–45) वर्तमान मन्वन्तर के आराश्यदेव वामन हैं, जो कश्यप ऋषि के द्वारा अदिति के गर्भ से विष्णु के अंश से प्रकट हुए है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. विष्णुपुराण, 3 / 14 / 6

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

रामायण में वर्णित धर्म एवं कर्मकाण्ड

❒ डॉ. राजेन्द्र प्रसद चतुर्वेदी*
❒ डॉ. निर्मला मिश्रा**

शोध सारांश

किसी भी देश अथवा समय की संस्कृति को जानने के लिए उसके धर्म, धार्मिक परम्पराओं और विश्वासों का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। सामाजिक, आर्थिक आदि पक्ष तो संस्कृति के बाह्यरूप मात्र को स्पष्ट कर पाते हैं। उन सभी बाह्य तत्त्वों को प्रेरित करके संचालित करने वाला आन्तरिक तत्त्व तो धर्म ही है। किसी समय में धर्म को कितना तथा कैसा स्थान मिला, धर्म में किन विश्वासों और कर्मों पर बल दिया जाता रहा–यह जानकर ही तत्कालीन संस्कृति का स्वरूप स्पष्टतया उजागर हो पाता है। भारतीय संस्कृति के साथ तो यह तथ्य और सटीक है। इस संस्कृति का मूलाधार ही धर्म है। यहाँ पशु और मनुष्य के बीच विभाजक तत्त्व धर्म ही है अन्यथा धर्म से रहित मनुष्य पशु के सदृश है– ''धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः''। भारत के प्रत्येक मानव के सम्पूर्ण जीवन में जन्म से पूर्व या मृत्यु के पश्चात् विभिन्न धार्मिक क्रियायें निरन्तर धर्म का अनुसरण कराती रहती हैं। भारतीय संस्कृति की अनवच्छिन्न परम्परा में युगबोध के अनुसार धर्म का रूप भी किंचित् परिवर्तित अवश्य होता रहा है। धर्म के मूल तत्त्व अथवा जीवनमूल्य अथवा सामान्य धर्मतत्त्व तो सार्वकालिक होने के कारण अपरिवर्तित ही रहते हैं, किन्तु मनुष्य के बौद्धिक ऊहापोह के अनुकूल धार्मिक कर्मकाण्ड तथा अनुष्ठान आदि में परिवर्तन आ जाता है। यह तथ्य हृदयंगम करके ही रामायणकालीन धर्म अथवा व्यवस्था को जान सकना सरल होगा।

रामायण में आर्य और अनार्य संस्कृतियों के आचार–विचार का चित्रण है। इनमें से आर्य–संस्कृति पूर्णतः धर्म पर आश्रित थी। इस सम्बन्ध में युद्धकाण्ड में एक स्पष्ट प्रसंग आया है। सीता को ससम्मान लौटाकर राम से सन्धि कर लेने का परमार्श देते हुए नाना माल्यवान् ने रावण से कहा था कि ब्रह्मा ने सुर और असुर इन दो ही पक्षों की सृष्टि की है। देवों का आश्रय धर्म है और असुरों का आश्रय अधर्म है–

असृजद् भगवान् पक्षौ द्वावेव हि पितामहः।
सुराणामसुराणां च धर्माधर्मौ तदाश्रयौ।।
धर्मो हि श्रूयते पक्ष अमराणां महात्मनाम्।
अधर्मो रक्षसां पक्षो ह्यसुराणां च राक्षस।।[3]

* प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, शास. टी.आर.एस. महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी, शास.टी.आर.एस. महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

इस प्रसंग का स्पष्ट अर्थ यही है कि रामायण में आर्यसंस्कृति का स्वरूप धर्ममय है तथा राक्षस–संस्कृति अधर्ममय है। धर्म की विजय तथा अधर्म का नाश इस लोक का सनातन नियम है। रावण ने धर्म का नाश किया था तथा वह सदैव अधर्म के पालन में ही तत्पर रहा। इसी कारण स्वर्णलंका भी धूलिधूसरित हो गई और राक्षसवंश भी नष्ट हो गया। वाल्मीकि रामायण में राम का चरित्र धर्म का प्रतिमान है तो रावण का चरित्र अहंकारी अधर्म का दृष्टान्त है।

वाल्मीकि रामायण में आय–संस्कृति के आदर्श रूप को प्रस्तुत करके समाज को दिशा–निर्देश देने का सफल प्रयास था। अतः रामायण में धर्म का स्थान सर्वोच्च है। यों भी कहा जा सकता है कि रामायण का सम्पूर्ण परिवेश ही धर्ममय है। राजा हो या प्रजा–सभी को आध्यात्मिक दृष्टिकोण तथा धार्मिक आचरणों का उल्लेख वाल्मीकि रामायण के विभिन्न काण्डों में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। जो धर्मपालन में लगा है उसके लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। ''नहि धर्माभिरक्तानां लोके किंचन दुर्लभम्''। रामायणकालीन जीवन में धर्म ही परम गति है– ''धर्मो हि परमा गतिः।'' रामायणकालीन संस्कृति की धर्ममयता का ज्ञान तो इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक श्लोकों से ही हो जाता है। इन श्लोकों में आए हुए कृतज्ञता, सत्यवादिता, दृढ़व्रतता, हितकांक्षा आदि गुण धर्म के ही सार्वकालिक मूल्यों का निर्देश करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण ने दैवी सम्पत्ति[2] के रूप में वस्तुतः धर्म के लक्षणों का ही कथन किया था। वह समस्त दैवी सम्पत्ति रूप धर्मगुण रामायण में आर्यसंस्कृति के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।

धर्म की परिभाषायें तो अनेक बनीं, किन्तु उसको परिभाषा में बाँध सकना भी उतना ही दुष्कर रहा। धर्म तो एक जीवन–प्रणाली है किंवा जीवन दर्शन है। धर्म के कितने भी स्वरूप स्वीकार किए जाएँ–उसके दो ही स्वरूप स्पष्ट रूप में सम्मुख उभरते हैं। एक है परलोक या भगवान् से सम्बद्ध विभिन्न कर्मकाण्ड तथा विश्वास यथा देवता, देवपूजा, तीर्थ, मन्दिर आदि; और दूसरा है व्यक्ति के आन्तरिक मनोभाव तथा तदनुकूल प्रतिबिम्बित होता हुआ आचरण यथा सत्य, अहिंसा, परोपकार, दान आदि। रामायण में स्थल–स्थल पर धर्म के इन दोनों ही प्रमुख स्वरूपों पर प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। बालकाण्ड के छठे सर्ग में दशरथ के शासन–वर्णन में तथा युद्धकाण्ड के 128 वें सर्ग में राम के शासन–वर्णन में जितने भी श्लोक प्राप्त होते हैं, उनसे तत्कालीन संस्कृति की धार्मिक मान्यताएँ अत्यन्त सुस्पष्ट हो जाती हैं। अयोध्या का कोई भी प्रजाजन नास्तिक नहीं था; सभी जन सदाचरण सम्पन्न एवं संयमी थे। अग्निहोत्र, दान एवं यज्ञ में सभी की रुचि थी। उस राज्य में कोई भी दूसरे की हिंसा नहीं करता था– ''नाभ्यहिंसन् परस्परम्''। सभी प्रजाएं धर्मशील, धर्मात्मा और धर्मपरायण थीं।

रामायण में एक स्थल पर स्पष्ट नास्तिक मत के विरोधपूर्वक वेद–प्रामाण्य तथा ईश्वर में आस्था का आस्तिक मत विस्तृत रूप में आया है। राम को पुनः अयोध्या लौटा लाने के लिए भरत चित्रकूट जाकर राम से अनुरोध करते हैं। राम के अस्वीकार कर देने पर ऋषि जाबालि नास्तिक मत का प्रतिपादन करते हुए वर्तमान को ही श्रेष्ठ तथा प्राप्त हुए को न त्यागने का कथन करते हैं।[3] प्रतिज्ञापालन तथा सत्यवादिता ही उत्तम आचरण है। धर्मपालन ही स्वर्ग का मार्ग कहा गया है–

सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च भूतानुकम्पां प्रियवादितां च।
द्विजातिदेवातिथिपूजनं च पन्थानमाहुस्त्रिदिवस्य सन्तः।।[4]

राम ने तो नास्तिक व्यक्ति को परम अधर्ममय कहकर चौरवत् दण्डनीय कहा। संसार में धर्मरत

तेजस्वी दानी तथा अहिंसक व्यक्ति की सुपूज्य होता है।[5] रामायण के इस सम्पूर्ण प्रसंग में धर्म तथा अधर्म के विशद स्वरूप पर विशेष प्रकाश पड़ता है, तथा वह भी स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न नैतिक मूल्यों का पालन ही वास्तविक धर्म है।

रामायण में तत्कालीन सभी देवताओं के प्रति पूजा एवं श्रद्धा की भावना विद्यमान है। प्रातःकाल उठकर विभिन्न देवों की पूजा करना तत्कालीन धर्मचर्या का प्रमुख अंग था। प्रमुखतः विष्णु एवं शिव की पूजा होती थी। बालकाण्ड के एक कथाप्रसंग में विष्णु को शिव से श्रेष्ठतर सिद्ध करने का प्रयास किया गया है किन्तु यह भावना परवर्ती हो सकती है। रामायण में विष्णु एवं शिव एक सदृश ही पूजित हैं। विभिन्न प्रसंगों में विष्णु एवं शिव की पूजा–अर्चा वर्णित है[6], किन्तु कहीं भी किसी एक को श्रेष्ठ बताने की भावना नहीं है। जनमानस में राम स्वयं विष्णु के अवतार हैं, किन्तु रामायण में स्थल–स्थल पर शिव की अनुकम्पा एवं करुणा के अनेक प्रसंग आये हैं। विष्णु एवं शिव के अतिरिक्त सूर्य, यम, इन्द्र, वायु, ब्रह्मा, अग्नि, वरुण, सोम तथा अन्य देवगण भी सुपूजित थे। रामायण में विभिन्न सभी देवों के प्रति आदर और पूजा के साथ–साथ उन सबमें एकत्व का प्रतिपादन करने वाला 'आदित्यहृदय स्तोत्र' भारतीय ऋषि के धर्म सम्बन्धी वास्तविक अभिप्राय को हस्तामलकवत् स्पष्ट कर देता है। साथ ही तत्कालीन संस्कृति में पूज्य विभिन्न देवों की मानों तालिका ही प्रस्तुत कर देता है।

प्रातःकालीन देवस्तवन के अतिरिक्त किसी अनिष्ट निवारण, बाधा–शान्ति अथवा मंगल अवसर पर स्वस्त्यन के रूप में सभी देवताओं का स्मरण तथा प्रार्थना भी रामायण में अनेक स्थलों पर उपलब्ध है। इन सभी देवों की पूजा अपने घर पर स्थित किसी विशिष्ट कक्ष अथवा चैत्य (मन्दिर) में किया करते थे। श्रीराम जब वन जाने की आज्ञा लेने के लिए माता कौशल्या के भवन में पहुँचे, उस समय कौसल्या विष्णुपूजन एवं यज्ञ में व्यस्त थीं। निश्चित रूप से वह पूजास्थल–भवन में ही स्थित कोई विशिष्ट कक्ष रहा होगा। अयोध्या में अनेक देवमन्दिर थे। विशिष्ट अवसरों पर इन मन्दिरों को ऊँची ध्वजा–पताकाओं और पुष्पाहारों से सुसज्जित किया जाता था। इन मन्दिरों में विभिन्न देवमूर्तियाँ होती थीं। राम के भवन में स्वर्णनिर्मित सुन्दर देवप्रतिमायें थीं।

प्रत्येक देश में महापुरुषों, पवित्र नदियों अथवा विशिष्ट अनुष्ठानों या यज्ञों से जुड़कर कुछ स्थान तीर्थ की पदवी धारण कर लेते हैं। भारतवर्ष में तो तीर्थस्थलों की महत्ता अत्यन्त प्राचीन काल से रही है। तीर्थस्थल पर जाना धार्मिक मान्यता का अनिवार्य अंग है। रामायणकालीन संस्कृति में ऐसे अनेक स्थल तीर्थरूप में सुपूजित थे और उन तीर्थों के दर्शन अथवा उनमें स्नानादि करने से पापक्षय तथा पुण्यलाभ होता था। वन जाते समय सीता ने गंगा नदी का पूजन करते हुए संकल्प किया था कि सकुशल अयोध्या लौटने पर वे समस्त देवताओं, तीर्थों और मन्दिरों में पूजन करेंगी। गंगा एवं यमुना के संगम पर स्थित प्रयाग अत्यन्त पवित्र होने के कारण पवित्र तीर्थ माना जाता था। महर्षियों की तपोभूमि होने के कारण चित्रकूट पर्वत दर्शनमात्र से पवित्र करने वाला तीर्थस्थल था। गया एक ऐसा तीर्थस्थल था जहाँ जाकर पितरों को पिण्डदान देना सर्वश्रेष्ठ मानते थे। रामायणकालीन संस्कृति की तीर्थस्थल सम्बन्धी उपर्युक्त धार्मिक मान्यता वर्तमान युग में भी यथावत् ही है। अपने श्रेष्ठ आचरण से व्यक्ति भी तीर्थ के सदृश पवित्र माना जाता था। राजसभा में आये हुए मुनि विश्वामित्र को देखकर राजा दशरथ ने यही कहा था– ''हे प्रभु! आपके दर्शन से तो मेरा घर तीर्थ हो गया। मैं समझता हूँ कि मैने पुण्यक्षेत्रों (तीर्थों) की यात्रा कर ली।''

रामायणकालीन संस्कृति की धार्मिक मान्यताओं में व्रत तथा उपवास का भी विशिष्ट स्थान था। किसी इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिए, बाधा या अनिष्ट की शान्ति के लिए, परिवार की मंगलकामना के लिए अथवा केवल धर्म–पालन के लिए ही स्त्रियाँ अथवा पुरुष व्रत तथा उपवास किया करते थे। किसी भी मांगलिक अनुष्ठान से पूर्व उपवास करना शुभ माना जाता था तथा मन एवं चित्त की शुद्धि होती थी। दशरथ ने राम को अगले दिन युवराज बनाए जाने की सूचना देते हुए आदेश दिया था कि कल तक पत्नीसहित नियम पालन एवं ब्रह्मचर्यपूर्वक रहते हुए उपवास करना– 'सह वध्वोपवस्तव्या'। पुत्र की मंगलकामना करती हुए कौसल्या निरन्तर व्रत उपवास किया करती थी। राज्याभिषेक के स्थान पर वनवास दिए जाने का समाचार देने पर जब राम माता के महल में पहुँचे तो उन्होंने व्रत करने से दुर्बल शरीर वाली अपनी माता को देवतापूजा करते देखा था– ''व्रतयोगेन कर्शिताम्''। अशोकवाटिका में रावण ने सीता को देखा जो निरन्तर उपवास, शोक, ध्यान एवं भय के कारण परिक्षीण एवं कृशकाय हो गई थीं। ऐसे अनेकानेक वर्णनों से रामायणकालीन समय में व्रत–उपवास आदि का धार्मिक महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

वाल्मीकि रामायण में प्राप्त धार्मिक स्थिति में अनेक धार्मिक अनुष्ठान अथवा कर्मकाण्ड भिन्न–भिन्न स्थलों पर यथासमय अवश्य प्राप्त होते हैं; किन्तु दो विशिष्ट अनुष्ठान अथवा आचरण स्पष्टतः ध्यान आकृष्ट करते हैं, और वे हैं तपस्या तथा यज्ञ। रामायण में स्थल–स्थल पर ऋषियों, राजाओं, राक्षसों तथा दानवों–सभी के तपस्या करने के विविध उल्लेख हैं; यथा–राजा अंशुमान् तथा राजा भगीरथ की तपस्या; दिति की तपस्या; विश्वामित्र की तपस्या; तपस्वी मण्डल; तापसी शबरी; तपस्विनी स्वयंप्रभा; ऋषि पुलस्त्य; वैश्रवण; रावण; शम्बूक आदि की तीव्र तपस्या। इस तरह उस समय सभी अपने धर्म एवं कर्म में संलग्न थे।

संदर्भ स्रोत

1. वा.रा. 6..35.12–13
2. भगवद्गीता 16.1–3
3. वा.रा. 2.108.17
   स नास्ति परमित्येतत् कुरु बुद्धिं महामते।
   प्रत्यक्षं यत् तदातिष्ठ परोक्षं पृष्ठतः कुरु।।
4. वा.रा. 2.109.31
5. वा.रा. 2.10.9.36
6. वा.रा. 2.25.35;45; 2.56.31; 2.106.39 आदि

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

महिला विकास कार्यक्रम एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❐ डॉ. अभिलाषा सिंह

शोध सारांश

महिलाओं का आर्थिक विकास एवं उन्नयन, सामाजिक विकास, कानूनी अधिकारों संबंधी जगृति, महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य एवं प्रशिक्षण, पोषण अहार संबंधी कार्यक्रम शासन द्वारा निरंतर चलाये जा रहे हैं। म0प्र0 में भी महिलाओं से संबंधित विभिन्न योजनायें एवं कार्यक्रम अनेक विभागों के समन्वित सहयोग द्वारा संचालित हैं। जिसमें नगर पंचायत, ग्राम पंचायत, स्वास्थ्य विभाग, शिक्षा विभाग, महिला बाल विकास विभाग एवं परियोजनाए जैसे अजीविका परियोजना आदि हैं। इनकी सहायता से विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वित किया जा रहा है। जैसे लाडली लक्ष्मी योजना, गांव की बेटी योजना, स्व–सहायता समूह, पेंशन योजना, मंगल दिवस आयोजन आदि। ये योजनाएँ– कार्यक्रम महिलाओं, बालिकाओं को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति बहुत सम्मनीय व उच्च रही हैं। उन्हें शक्ति ज्ञान और सम्पत्ति का प्रतीक माना गया है। किन्तु कालान्तर में महिलाओं की स्थिति खराब होती गई किसी भी समाज के विकास के कल्पना तभी पूर्ण होगी जब महिलाओं की स्थिति अच्छी होगी इसी विचार से भारत के सम्पूर्ण क्षेत्र में महिलाओं के विकास के विशेष कार्यक्रम क्रियान्वित किये जाने लगे। इसी तारतम्य में एक दृष्टि म0प्र0 महिला कार्यक्रमों पर डाली जाय जिनमें कुछ योजनाएँ विभिन्न विभागो के सहायता से मुख्य रूप से क्रियान्वित है, इस प्रकार हैं :–

लाडली लक्ष्मी योजना :–

लाडली लक्ष्मी योजना 30 जुलाई 2006 को घोषित की गई जिसे 01 अप्रैल 2007 से लागू किया गया। इस योजना के तहत जन्म के समय कन्या के नाम राशि जमा की जाती है जो उसके 21 वर्ष होने पर एक लाख रूपये मिलेगे योजना का लाभ प्रदेश के मूल निवासी गरीब माता पिता की बालिका संतान एक या दूसरी हो उसे दिया जायेगा। संतान के जन्म के एक वर्ष के भीतर संतान को पंजीबद्ध कराना आवश्यक हैं दूसरी संतान के जन्म में परिवार नियोजन को अपनाया

* शा0 कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय ब्यौहारी, जिला शहडोल (म0प्र0) मो0 9407218298

हो किन्तु कुछ परिस्थितियों के लिए नियम में 27.03.2008 संशोधन किया गया –

1. जिस परिवार में प्रथम बालिका हो उस बालिका को परिवार नियोजन के शर्त के वगैर योजना लाभ दिया जायेगा।

इसी प्रकार जिस परिवार में वैधानिक रूप से बालिका दत्तक लिया उसे प्रथम बालिका मानते हुए योजना का लाभ दिया जाय।

2. जिस परिवार में अधिकतम दो संतान हैं तथा माता या पिता की मृत्यु हो गई हैं उस परिवार के लिए परिवार नियोजन की शर्त अनिवार्य नही होगी। इसके लिए पति अथवा पत्नी की मृत्यु का प्रमाण पत्र आवश्याक होगा।

3. जिस परिवार में प्रथम बालक अथवा बालिका हैं तथा द्वितीय प्रसव में जुडवा बच्चियॉ जन्म लेती हैं तो उन मामलों में जुडवा बच्चियों को भी इस योजना का लाभ दिया जायेगा।

योजना के तहत भुगतान प्रक्रिया :–

1. बालिका के कक्षा 6 में प्रवेश लेने पर रू0 दो हजार, कक्षा 9 में प्रवेश लेने पर चार हजार, तथा कक्षा 11 में प्रवेश लेने पर सात हजार पॉच सौ का भुगतान हिया जायेगा 11 कक्षा के पश्चात अगामी दो वर्ष के लिए दो सौ रू0 प्रतिमाह का भुगतान बालिका को किया जायेगा।

2. बालिका की आयु 21 वर्ष पूर्ण होने पर तथा 12 कक्षा की परीक्षा में सम्मलित होने पर शेष एक मुश्त राशि का भुगतान किया जायेगा परंतु शर्त यह होगी की बालिका का विवाह वैधानिक आयु में हो

ऐसी भुगतान की गई कुल राशि जन्म के एक वर्ष के अन्दर पंजीकृत होने वाले बालिका के लिए एक लाख से अधिक होगी।

3. निर्धारित पात्रता शर्तों को पूर्ण न करने या बालिका हितग्राही की असामयिक मृत्यु की दशा में बालिका को देय समस्त लाभ शासन को समर्पित समझे जायेगे। यदि परिवार में दो बालिकाएँ इस योजना की हितग्राही हैं तो उनमें से किसी एक बालिका की असामयिक मृत्यु हो जाने पर जीवित बालिका को मृत बालिका की समस्त हित लाभ स्थानांतरित हो जायेंगे।

गाँव की बेटी योजना :–

यह योजना 2005 से प्रारंभ की गई इसके तहत प्रत्येक गाँव की कक्षा 12 में जो छात्रा 60 प्रतिशत या अधिक अंक प्राप्त करती है उन्हे उच्च शिक्षा के लिए तीन वर्ष तक प्रत्येक शैक्षणिक सत्र पॉच हजार रू0 की आर्थिक मदद की जाती हैं। इंजीनियरिंग एवं मेडिकल शिक्षा के अध्ययन में सात हजार पॉच सौ प्रति शैक्षणिक सत्र का प्रवधान हैं।

स्व–सहायता समूह :–

गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले महिलाओं वाले परिवार के सदस्य में से एक परिवार से एक सदस्य के मान से 10 से 20 महिलाओं का स्व–सहायता समूह बनाकर रोजगार के लिए ऋण और अनुदान उपलब्ध कराकर जीवन स्तर ऊपर उठाने के लिए यह योजना चलाई जा रही हैं। पूर्व में यह योजना 'स्वर्ण जयंती ग्राम स्वारोजगार' के अंतर्गत प्रारंभ की गई थी।

मुख्यमंत्री कन्यादान योजना :–

इस योजना के अंतर्गत निराश्रित परिवार की कन्या, विधवा, परित्यकता का विवाह सामूहिक विवाह आयोजन में किया जाता हैं। यह योजना 01 अप्रैल 2006 से प्रारंभ की गई हैं इसमें प्रति विवाह दस हजार रू0 की राशि दी जाती थी 05 मार्च 2012 से यह राशि पंद्रह हजार कर दी गई है

2013 से यह राशि पच्चीस हजार कर दी गई जिसमें छः हजार फिक्स डिपाजिट कर दिया जाता है व सोलह हजार का समान वर वधू को दिया जाता हैं।

पेंशन योजना :–

पेंशन योजना के अंतर्गत गरीब बृद्ध, विधवा एवं विकलांग महिलाओं को सहायता राशि दी जाती है इसके अंतर्गत कई योजनाये चलाई जा रही हैं। जिनमे से किसी एक योजना का लाभ दिया जायेगा।

1. सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजना
2. इंदिरा गांधी बृद्ध पेशन योजना
3. इंदिरा गांधी विधवा पेंशन योजना

बेटी बचाओ अभियान :–

बेटी बचाओं अभियान का 2011 से गांधी जयंती के अवसर पर डिण्डौरी जिले से सुभारंभ हुआ।

ऊषा किरण :–

यह योजना घरेलू हिंसा अधिनियम 2006 के तहत चलायी जा रही हैं। इसके द्वारा पीड़ित महिलाओं को कानूनी सहायता, पुनर्वास, प्रशिक्षण, अल्पकालीन आवास उपलब्ध कराया जाता है।

ऑगनबाड़ी में मंगल दिवस का आयोजन :–

ऑगनवाड़ी की सेवाओं को प्रभावशाली बनाने के लिए एवं महिलाओं में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता के लिए मंगल दिवस के रूप में माह के प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ मंगलवार को क्रमांशः निम्न कार्यक्रमो का आयोजन किया जाता हैं :–

1. गोद भराई
2. अन्नप्राशन
3. जन्म दिवस कार्यक्रम
4. किशोरी बालिका दिवस

स्व– सहायता समूह, लाडली लक्ष्मी योजना, गांव की बेटी योजना आदि योजनाओं एवं कार्यक्रमों का प्रभाव प्रत्यक्ष देखने को मिलता हैं लाडली लक्षमी योजना गांव की लोकप्रिय योजना बन चुकी हैं। इन योजनाओं के अलावा राज्य में अनेको विकास कार्यक्रम क्रियान्वित है जिनकी सहायता महिलाए विकास के पथ पर अग्रसर हैं।

संदर्भ सूची :–

1. आगे आये लाभ उठाए – म0प्र0 सरकार
2. योजना
3. समाज कल्याण – भारत सरकार की मासिक पत्रिका
4. म0प्र0 सम्पूर्ण अध्ययन (उपकार प्रकाशन)
5. परीक्षा मंथन
6. पंचायिका – म0प्र0 पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग
7. महिला सशक्तिकरण – महिलाओं के लिए विभिन्न विभागों की कल्याणकारी योजनाओं का संकलन जिला पंचायत शहडोल म0प्र0।
8. महिला विकास कार्यक्रम (शोध प्रबंध)

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

सामाजिक विकास योजनाओं का गरीबों पर प्रभाव

❒ डॉ. कमल प्रताप सिंह परमार

शोध सारांश

मानव संसाधन विकास किसी भी देश के सामाजिक आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। किसी भी देश की जनशक्ति को विकास प्रक्रिया से जोड़ने के लिये आवश्यक है। कि जनशक्ति को शिक्षण प्रशिक्षण एवं कुशलताओं के साथ जोड़कर उसे मानवीय संसाधनों का रूप दिया जाये। हमारे देश में मानवीय संसाधनों का बहुत बड़ा हिस्सा कंगाली का जीवन जी रहा है। वह अपने एवं अपने परिवार का भरण पोषण भी नहीं कर पा रहा है। गरीबी रेखा के नीचे जीवन–यापन करने वाले इन्हीं परिवारों के चहुमुखी विकास के लिये शासन ने अनेकों विकास योजनायें प्रारम्भ की है। योजनाओं एवं कार्यक्रमों की सफलताओं एवं असफलताओं का मूल्यांकन कर समय समय पर संशोधन भी किये जाते हैं। यह संशोधन एवं मूल्यांकन ही राज्य के कार्य क्षेत्र का आइना होता है।

भारत में नियोजन काल से ही सामुदायिक विकास कार्यक्रमों (2 अक्टूबर 1952) के माध्यम से ग्रामीण विकास को श्रेष्ठकर बनाने की दिशा में चहुमुखी कदम उठाये गये हैं। उन्नत बीज, रसायनिक उर्वरक, सुधरे हुये कृषि यन्त्र कीट नाशक दवायें एवं विज्ञानिक खेती के माध्यम से किसानों को सम्पन्न बनाने का प्रयास किया गया। स्वास्थ्य सेवायें प्राथमिक एवं प्रौढ़शिक्षा, विद्युतीकरण तथा यातायात, संचार के साधान आदि आधारभूत सुविधायें लोगों को उपलब्ध कराई गई। गरीबों रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वालों के लिये अनेकों विशेष विकास योजनायें बनाई गई जिससे जच्चा–बच्चा के स्वास्थ्य की देखभाल के लिये आंगनबाड़ी केन्द्रों की स्थापना, माध्याह्न भोजन, टीकाकरण, जननी सुरक्षा, सस्ता खाद्यान्न वितरण, चिकित्सा सुविधायें, प्रसवपूर्ण प्रशिक्षण, परिवार सहायता योजना, लाडली लक्ष्मी योजना, कन्यादान योजना, समूह विवाह योजना, सुकन्या समृद्धि योजना, कृषि बीमा, कुटीर निर्माण, अन्नपूर्णा योजना, कुटीर उद्योगों का प्रशिक्षण एवं आर्थिक सहायता, रोजगार गारन्टी योजना जैसी अनेकों योजनायें शासन द्वारा गरीबी मिटाने के लिये चलाई गई। शासन की विकास योजनायें गरीबों के जन्म के पूर्व से लेकर मृत्योपरान्त तक उनकी मदद कर

* रामचन्द्र का बाडा पवई, तहसील पवई, जिला–पन्ना (म.प्र.) – 488446

रही है। यही कारण है की गरीबों की दिशा एवं दशा दोनों में सुधार हो रहा है।

भारतीय अर्थव्यवस्था का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ता दबदबा, शिक्षा के स्तर में सुधार, मृत्युदर में कमी, कुपोषण और भुखमरी में कमी, आवास एवं स्वास्थ्य की पर्याप्त व्यवस्थायें इस बात की सबूत है कि शासन की विकास योजनाओं का लाभ गरीबों को मिल रहा है।

गरीबों को मिलने वाली इन तमाम सुविधाओं के बाबजूद गरीबों की प्रस्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ है। भारत के नीति निर्माता अपनी विकास योजनाओं, सामाजिक आर्थिक सुधारों तथा उदारीकरण की नीतियों की सफलता के कितने ही दावे क्यों न करे इससे निर्धनता रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वालों की निरपेक्ष एवं सापेक्ष संख्या में लगातार वृद्धि ही हुई है। इस तथ्य को राष्ट्रीय अनुप्रयोगात्मक आर्थिक अनुसंधान परिषद् (NCAIR) द्वारा किये गये सर्वेक्षणों, प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों कीर्ति पारिख, एल. आर. जैन, बुडरो विलसन, सेन्टर वाशिंगटन के भारतीय मामलों के विशेषज्ञ सेलिगहेरीसन आदि ने खुले तौर पर यह स्वीकार किया है कि भारत निर्धनों विशेष रूप से ग्रामीण निर्धनों पर आर्थिक सुधारों तथा उदारीकरण की नीतियों का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। भारत में वोट बैंक की राजनीति ने गरीबों की विकास योजनाओं को स्वार्थ सिद्धि का कारण बना दिया है। स्वतंत्रता के 69 वर्षों एवं 12 पचंवर्षीय योजनाओं के बावजूद जनसंख्या वृद्धि, अशिक्षा, बेरोजगारी, कुरीतियां, कुपोषण, एवं रोटी कपडा, मकान जैसी मूलभूत सुवधाओं का अभाव आज भी करोड़ों लोगों को झेलना पड़ रहा है। बेईमानी, भ्रष्टाचार, पूंजी की कमी, कमीशनखोरी लक्ष्य की खाना पूर्ति के लिये आकड़ों का खेल विकास योजनाओं को अपने लक्ष्य से भटका देता है। ''गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वालों पर विकास योजनाओं का प्रभाव–एक समाजशास्त्रीय अध्ययन'' नामक शोध प्रबंध से यह बात समाने आई है कि 95 प्रतिशत लोगों को तो योजना की जानकारी ही नहीं होती और सामान्य वर्ग के गरीबों की स्थिति लगातार दयनीय होती जा रही है।

समता मूलक समृद्धि भारत जैसे कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में निर्धनता की समस्या के समाधान की कुंजी है। अगर हम गरीबों में शिक्षा, बचत, प्रबंध क्षमता, जागरूकता, परिवार नियोजन, अंध विश्वासों से छुटकारा के साथ–साथ कुछ कर गुजरने का जज्बा पैदा करने में सफल हो जाये तो गरीब खुद विकास योजनाओं का लाभ उठाकर अपना जीवन स्तर सुधारने में सफल हो जायेंगे और हमारा देश गरीबी के कलंक से मुक्त हो जायेगा।

निष्कर्ष

किसी भी देश के विकास में मानव संसाधन का महत्वपूर्ण स्थान होता है परन्तु भारतीय समाज दुर्भग्यपूर्णवश उच्च एवं निम्न वर्गों में विभाजित है। जिसमें गरीब वर्ग की स्थिति काफी दयनीय है शासन द्वारा गरीबों के विकास के लिये चलाई गई कई विकास योजनाओं के बाबजूद इनके जीवन स्तर में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ है आज भी गरीबों की रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत जरूरतें पूरी नहीं हो पा रही है। शासन की विकास योजनायें भ्रष्टाचार, लालफीताशाही, अशिक्षा एवं सामाजिक कुरीतियों का शिकार हो रही हैं। हमें गरीबों में कुछ कर गुजरने का जज्बा पैदा कर समाज से गरीबी के कलंक को मिटाना होगा तभी हम अपने देश की खोई हुई प्रतिष्ठा एवं सम्मान पुनः प्राप्त कर सकेंगे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता राम प्रताप, कवड़िया, डॉ. गणेश, डॉ. सारा–विकास एवं पर्यावरण का अर्थशास्त्र (म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी)
2. शुक्ला एस.एस. एवं मिश्रा जे.पी.– अर्थशास्त्र (साहित्य भवन पाब्लिकेशन)
3. जगत VISION मासिक पत्रिका–सम्पादक विजया पाठक
4. प्रतियोगिता निर्देशिका – हिन्दी मासिक पत्रिका
5. महाजन धर्मवीर – भारतीय समाज
6. परमार कमल प्रताप सिंह–''गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वालों पर विकास योजनाओं का प्रभाव–एक समाजशास्त्रीय अध्ययन''।
7. गुप्ता एम. एल. एवं शर्मा डी.डी.– समाजशास्त्र
8. आगे आये लाभ उठाये–जनसम्पर्क विभाग म. प्र. शासन
9. विधि एवं योजनायें मार्च 2005–म.प्र.राज्य विधिक सेवा प्राधिकारण
10. योजना–मासिक पत्रिका
11. श्रम अर्थशास्त्र एवं श्रम समस्यायें–गोयल पब्लिकेशन
12. प्रतियोगिता दर्पण मासिक पत्रिका
13. गुप्ता एस.सी. – आधुनिक भारतीय अर्थ व्यवस्था (विश्वभारती पाब्लिकेशन)

अप्रकाशित मौलिक शोध-पत्र, शोध प्रबन्ध, पुस्तक समीक्षा

एवं

पुस्तकों के प्रकाशन हेतु

सम्पर्क करें :

जी.एच. पब्लिकेशन

121, शहराराबाग, इलाहाबाद-211 003

e-mail : ghpublication@gmail.com

Ph. : 0532-2563028 (M) 09329225173

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

उपविज्ञान एवं पर्यावरण

❒ डॉ. सुषमा श्रीवास्तव
❒ लक्ष्मी गुप्ता

शोध सारांश

वायु, जल, भूमि, वनस्पति, पेड़–पौधे, पशु, मानव सब मिलकर पर्यावरण बनाते हैं। प्रकृति में इन सबकी माँग और इनकी रचना कुछ इस प्रकार से व्यवस्थित है कि पृथ्वी पर एक सन्तुलनमय जीवन चलता रहे। पृथ्वी की समस्त वस्तुओं को दो भागों में विभाजित किया गया है–1. जैविक 2. अजैविक। इन सभी वस्तुओं का प्राणिमात्र पर एकजुट प्रभाव ही पर्यावरण कहलाता है। निःसंदेह इसमें पेड़–पौधे, वनस्पति, भूमि, जल, वायु, प्रकाश, ताप आदि सभी सम्मिलित हैं। अच्छे पर्यावरण की संकल्पना उन स्थितियों में है जिनमें प्राणधारी को समस्त मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और वह सुखमय जीवन बिता सके। वही विकृत पर्यावरण अनेक समस्याओं से ग्रसित होता है और जीवन को कष्टमय बना देता है। प्रस्तुत शोधपत्र उपविज्ञान एवं पर्यावरण के सम्बन्धों को ज्ञात करने का प्रयास है।

पर्यावरण एक व्यापक शब्द है। यह उन सम्पूर्ण शक्तियों, परिस्थितियों एवं वस्तुओं का योग है, जो मानव जगत को परावृत्त करती है तथा उनके क्रियाकलापों को अनुशासित करती है। हमारे चारों ओर जो विराट प्राकृतिक परिवेश व्याप्त है, उसे ही हम पर्यावरण कहते हैं। परस्परावलंबी संबंध का नाम पर्यावरण है। हमारे चारों ओर जो भी वस्तुएँ परिस्थितियाँ एवं शक्तियाँ विद्यमान हैं, वे सब हमारे क्रियाकलापों को प्रभावित करती हैं और उसके लिए एक दायरा सुनिश्चित करती है। इसी दायरे को हम पर्यावरण कहते हैं। यह दायरा व्यक्ति, गाँव, नगर, प्रदेश, महाद्वीप, विश्व अथवा सम्पूर्ण सौरमंडल या ब्रह्मांड हो सकता है। इसीलिए वेदकालीन मनीषियों ने द्युलोक से लेकर व्यक्ति तक, समस्त परिवेश के लिए शांति की प्रार्थना की है। शुक्ल यजुर्वेद में ऋषि प्रार्थना करता है, 'द्योः शांतिरंतरिक्षं...' (शुक्ल यजुर्वेद, 36/17)। इसलिए वैदिक काल से आज तक चिंतकों और मनीषियों द्वारा समय–समय पर

* प्राध्यापक, शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीधी (म.प्र.), मोबाइल : 9754731859
** सहायक प्राध्यापक, समाजकार्य विभाग, एस.आई.टी. महाविद्यालय, सीधी (म.प्र.)
मोबाइल : 9644542689, 99930766430, ई-मेल : laxmigupta7777@gmail.com

पर्यावरण के प्रति अपनी चिंता को अभिव्यक्त कर मानव जाति को सचेष्ट करने के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किया गया है।

इस प्रकार द्युलोक से लेकर पृथ्वी के सभी जैविक और अजैविक घटक संतुलन की अवस्था में रहें, अदृश्य आकाश (द्युलोक), नक्षत्रयुक्त दृश्य आकाश (अंतरिक्ष), पृथ्वी एवं उसके सभी घटक–जल, औषधियाँ, वनस्पतियाँ, सम्पूर्ण संसाधन (देव) एवं ज्ञान–संतुलन की अवस्था में रहे, तभी व्यक्ति और विश्व, शांत एवं संतुलन में रह सकता है। प्रकृति ने हमे जो कुछ भी परिलक्षित होता है, सभी सम्मिलित रूप में पर्यावरण की रचना करते हैं। जैसे–जल, वायु, मृदा, पादप और प्राणी आदि। अर्थात् जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक और जीवीय परिस्थितियों का योग पर्यावरण है। इसलिए विद्वानों का मत है कि प्रकृति ही मानव का पर्यावरण है और यही उसके संसाधनों का भंडार है। वैदिक ऋषियों ने उन समस्त उपकारक तत्वों को देव कहकर उनके महत्व को प्रतिपादित किया ही है, साथ ही मनुष्य के जीवन में उनके पर्यावरणीय महत्व को भी भली भांति स्वीकार किया है। इन देवताओं के लिए मनुष्य का जीवन ऋणी हो गया और शास्त्रीय कल्पनाओं ने मनुष्य को पितृऋण के साथ–साथ देवऋण से भी उनमुक्त होने की ओर संकेत किया है। वह अपने कर्तव्य में देवऋण से मुक्त होने के लिए भी कर्तव्य करें। ऋषियों ने उसके लिए यह मर्यादा स्थापित की है। पर्यावरण को संतुलित रखने के लिए जिन देवताओं की महत्वपूर्ण भूमिका है उनमें–सूर्य, वायु, वरूण (जल) एवं अग्नि देवताओं से रक्षा की कामना की गई है। ऋग्वेद (1/158/1, 7/35/11) तथा अथर्ववेद (10/9/12) में दिव्य, पार्थिव और जलीय देवों से कल्याण की कामना स्पष्ट रूप से उल्लेखित है।[1]

अर्थ एवं संकल्पना

पर्यावरण का निर्माण दो शब्दों से मिलकर बना हुआ है – परि + आवरण, जिसमें 'परि' का अर्थ है– 'चारों तरफ से' और 'आवरण' का अर्थ है – 'ढके हुए'।

अंग्रेजी शब्द में पर्यावरण को Environment कहा जाता है।

आइये, हम इसे जानने का प्रयास करते हैं –Environment की उत्पत्ति फेंच शब्द Environer से हुई है, जिसका अर्थ होता है–Neighborhood अर्थात पास–पड़ोस। अतः पर्यावरण या वातावरण का शाब्दिक अर्थ होता है–हमारे आस–पास जो कुछ भी उपस्थित है, जैसे–जल, स्थल, वायु एवं समस्त प्राकृतिक दवाएँ, पर्वत, मैदान, मानव व अन्य जीव–जन्तु, हमारा घर, मोहल्ला, गाँव, शहर, नगर, विद्यालय, महाविद्यालय, पुस्तकालय इत्यादि जो हमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।

अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि मानव जीवन एवं उनके विकाश को प्रभावित करने वाली समस्त बाहरी परिस्थितियों का समूह पर्यावरण कहलाता है। हम जानते हैं कि मनुष्य आजीवन पर्यावरण में रहता है, जिसमें वह अपना शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास करता है। अतः उनके संतुलित विकास के लिए अच्छे पर्यावरण का होना जरूरी है।

आपने भी सुना होगा या फिर पढ़ा होगा कि अच्छे वातावरण के अभाव में व्यक्ति के व्यक्तित्व का उचित एवं संतुलित विकास नहीं होता है। इसके अभाव में सुखद जीवन की कल्पना भी असम्भव है। अच्छे पर्यावरण की संकल्पना का अर्थ उन सारी परिस्थितियों से है, जिसमें व्यक्ति की समस्त मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और वह मनुष्य बिता सके।

पर्यावरण की परिभाषा

कुछ विद्वानों की परिभाषा के द्वारा हम पर्यावरण के अर्थ को और विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे–

डगलस एवं **रोमन हॉलैण्ड** के अनुसार– पर्यावरण उन सभी बाहरी शक्तियों एवं प्रभावों का वर्णन करता है जो प्राणि जगत के जीवन, स्वभाव, व्यवहार, विकास और परिपक्वता को प्रभावित करता है।

एनेच एनास्टसी के शब्दों में– पर्यावरण वह प्रत्येक वस्तु है जो जींस के अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करता है।

सी. सी. पार्क के अनुसार–मनुष्य एक विशेष स्थान पर जिन सम्पूर्ण परिस्थितियों से घिरा हुआ है उसे पर्यावरण कहा जाता है।

पर्यावरण के घटक

पर्यावरण के अर्थ एंव परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि यह एक व्यापक संकल्पना है तथा इसका क्षेत्र अन्तः अनुशासन का है। अध्ययन के अधिकांश विषयों से इसका सीधा सम्बन्ध है। पर्यावरण न सिर्फ बालक के व्यक्तित्व विकास में सहायक होता है, बल्कि अन्य जीव–जन्तुओं तथा पेंड़–पौधों के विकास तथा उत्थान में भी सहायक होता है।

पर्यावरण के घटकों को मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किया जाता गया है–

1. **भौतिक/अजैविक घटक**–भूमि, जल, वायु, ऊर्जा।
2. **जैविक घटक**– पेड़–पौधे, जीव–जन्तु, मानव।
3. **सामाजिक घटक**–जनसंख्या, सामाजिक प्रणाली, सामाजिक संबंध तथा शहरीकरण इत्यादि।
4. **सांस्कृतिक घटक**–आर्थिक, राजनैतिक, नैतिक, धार्मिक, औद्योगिक इत्यादि।
5. **मनोवैज्ञानिक घटक**–स्वप्रत्यय, जीवन–विस्तार, जीवन लक्ष्य, आकांक्षा स्तर, व्यक्तित्व इत्यादि।
6. **ऊर्जा स्तर**–सौर ऊर्जा तथा पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति, ऊर्जा इत्यादि।[2]

शोधविधि

प्रस्तुत शोध प्रत्र हेतु द्वितीयक समंकों पर आधारित तथ्यों पर तैयार किया गया है।

पूर्व अध्ययन की समीक्षा –प्रोफेसर पचौरी – महिलाएँ, पर्यावरण तथा पर्यावरण सम्बन्धी चुनौतियों का समझती हूँ यद्यपि महिला सूचनादाता ग्रीन हाउस प्रभाव, ग्लोबल वार्मिंग जैसे वैज्ञानिक शब्दावली से अनभिज्ञ है किन्तु इसके बावजूद इनके अर्थ को स्पष्ट करने पर वे तुरन्त प्रत्युत्तर देती है जो पर्यावरण के प्रति उनकी सकारात्मक आभिवृति को दर्शाता है सूचनादात्रियों का यह मानना है कि प्राकृतिक संशोधनों का दोहन समावेशी विकास के लिए होना चाहिए। जो इस ओर संकेत करता है कि महिलाओं को "भावी पीढ़ी" के लिए पर्यावरण आधारित विकास भी आवश्यक है, इसका ज्ञान है।[3]

R. Keith Sawyer -v PNk Planingè Training के लिए जंगल काम कराहना Work आवश्यकताओं सब्धान आयोजन उदाहरण के लिए से ilan structure and प्राक्रियाओं कौन मदद करेगा कब काबू पाने "प्राकृतिक" पैटर्न की संबंधित के बीच में students सहकर्मी कराहना भी जरूरत कर रही है कार्य पर उपयुक्त स्तर और समर्थन whichis धीरे–धीरे वापस लिया जैसा छात्रों बनना अधिक आत्मनिर्भर जैसे करेंट अध्ययन दिखावटी विदाउट इन छोटा समूह काम है अक्सर एक बेकार की टाइम फोर्म परिप्रेक्ष्य की पाथ शिक्षक और छात्र।

Joung Souk Sung- हम एक यू.एच.ई. मॉडल सर्वव्यापी पर्यावरण सीखने की अवधारणा को हम एक ओवेदन डेमेन सीखने के रूप में यू सीखने पर ध्यान केन्द्रित करने का उपयोग करता है के विकाश का वर्णन है पीडीए की दुकान के साथ छात्रों और उपयोगी अभिव्यक्ति है कि रोजमर्रा की जिंदगी में भी जगह से जुड़े रहे हैं का हिस्सा है फिर प्रणाली के लिए प्रत्येक छात्र को कई एम्बेडेड उपकरणों के साथ सूचना का आदान प्रदान। सर्वव्यापी कक्षा के छात्रों के आसपास यू अंतरिक्षों, यानों और विभिन्न उपकरणों के साथ बातचीत एक सर्वव्यापी कम्प्यूटिंग वातावरण किसी भी समय और किसी भी स्थान पर सीखने के लोगों को सक्षम बनाता है लेकिन मूलभूत मुद्दे छात्रों को सही दिशा में सही समय पर सही जानकारी प्रदान करने के लिए है यह पत्र एक सर्वव्यापक कम्प्यूटिंग वातावरण के सही समय और सही जगह सीखने के मद्दों पर सीखने की जगह नहीं जाने का भी एक पहलू है। हम हमेशा के लिए अवसर अधिक सुखद यादगार और उपयोगी तरीका में औपचारिक कक्षा के अलावा अन्य और विविध। सेटिंग मे जानने के लिए सक्षम किया गया है फिर भी सर्वव्यापक सीखने की जरूरत भी याद दिलाने के लिए लगातार फिर से जांच के माहौल के आधारित इस शोध का उद्देश्य तुल्यकालिक, अतुल्यकालिक और कंकर के कार्यान्वयन यू लर्निंग की स्थापना के लिए है करने के लिए भाग लेने के लिए कार्य करता है मोड इस पत्र में प्रस्तावित छात्र और प्रदाता के शिक्षक जिसमें पारम्परिक शिक्षा प्रणाली को जारी सखने के बीच सीखने के लिए भी सीमित नहीं है नेटर्वक के साथ कक्षा में एक नंबर यू लर्निंग सिस्टम के लिए उपयुक्त बूँदों के रूप में सब से व्यवहार समाधान हो जाता है। इस प्रणाली है और विडियो विवरित मल्टीमीडिया सीखने के माहौल है क्योंकि यह औडियो जबाबे के प्रान करता है कार्य। प्रणाली एक विभिन्न संचार प्रकार, एक सवाल और एक उत्तर है।[5]

Mary Hanrahan- एम. हिवालिर्स औद्योगिक युग डवार्ग और यह अर्थव्यवस्था से हेलेन हालांकि साथ एक कमजोरियों के लिए व्यापक वैश्विक मानक मॉडल यद्यपि लेम्मिंग विज्ञान की पेशकरी करते हैं किमिक में प्रभावी किया गया है भी एच. लिमिलिंग अनुमति देते हैं। डव्यू की घास काटना मॉडल बनाने के लिए शुरू करने के लिए उन समाजों है कि उस अनुसार कर रहे शोधकार्ताओं सीखने का तरीका Voly altermarihe-ewniels eai one है 1970 के दशक के बाद से काम कर रहा है वह बीए ओरेन तो लर्निंग फिजिकोलोजी संज्ञानात्मक विज्ञान, समाजशास्त्र और lowlii me xksl में शुरूआती iocreasingly काम कर शिक्षकों के साथ मिलकर किया है और टेक्नॉलोजी की ehpswhalvedels जवाब में उभर सकता है। सर्विस कम्प्यूटर प्रौद्योगिक में आता है कि आल अर्थ है ये एक ouvirtiple e.wholan जारी रखने के लिए काम आधुनिक लोगों के लिए ई.एम.आई.टी.ए. तेजी से विस्तार हुआ है स्कूल ऑन लाईन में www भविष्य के लि सीखने का आइडियल डेवलपमेन्ट हमारे वैज्ञानिक ionivaningt roflood है अंतिम चरण ट्रान्सलेशन के लिए स्कूल पाूप चाहिए और सिखाता है ailaueistruton निर्माताओं और राजनेता।[6]

स्वच्छ पर्यावरण के बारे में हमारी संकल्पनाएं

अब वर्तमान में पर्यावरण को समझने तथा उसकी सभी बाधाओं को दूर कर उसे संतुलित एवं जन उपयोगी बनाने हेतु मनुष्य को अपने दृष्टिकोण को लक्ष्य केन्द्रित तथा परिणाम केन्द्रित करना होगा और अन्तिम उपलब्धि पर्यावरण की गुणवत्ता

रखना होगा। इसी से मनुष्य को जीवन की गुणवत्ता प्राप्त होने की सम्भावना हो सकती है। हमें निम्नलिखित दिशाओं में अपने क्रियाकलाप करने होंगे–

1. पर्यावरण संरक्षण

प्रकृति में अथवा पृथ्वी पर मानक्कृत पर्यावरण की स्थिति जो भी मानव के दोषपूर्ण कृत्यों के बाद रह गई है उसे संरक्षण प्रदान किया जाये। अरिवर्तनीय संसाधनों का आवश्यकतानुसार ही उपयोग हो। मनुष्य को धार्मिक मान्यताओं, सांस्कृतिक परम्पराओं और प्राचीन प्रथाओं/रिवाजों के माध्यम से सही कार्य करने हेतु प्रेरित किया जाना बहुत आवश्यक है। उन्हें यह बताना भी बहुत समीचीन है कि पर्यावरण संरक्षण से तुम्हारा तथा तुम्हारी भविष्य की पीढ़ी का जीवन अत्यन्त निकट से जुड़ा है।

2. पर्यावरण सुरक्षा

संरक्षित की गई स्थिति की सुरक्षा तथा उसकी आवश्यक देखभाल इस पद के अर्न्तगत आता है। पर्यावरण को हर स्थिति में विनाश से बचाना है तथा प्रकृति के विविध कार्यकलापों को अबोध गति से चलाते रहने हेतु प्रयत्नशील रहना है। वस्तुओं का सदुपयोग भी सुरक्षा में सम्मिलित किया जा सकता है।

3. प्रदूषण की रोकथाम

वायु, जल, भूमि, वाहन तथा ध्वनि प्रदूषण आदि से जनमानस अत्यन्त ग्रस्त तथा त्रस्त है। वे उपाय करने है जिससे भविष्य में हर क्षेत्र के प्रदूषण को रोका जा सके। अवशिष्ट के निस्तारण की समस्या का हल भी खोजना अत्यन्त आवश्यक हो गया है क्योंकि अप्रत्यक्ष रूप से ये भी प्रदूषण ही फैला रहे हैं और विश्व भर में मानव के चिन्ता के कारण बन रहे हैं।

4. अन्य समस्याओं का निराकरण

अनेक पर्यावरण समस्याएं मूल रूप से एक या कुछ समस्याओं से जुड़ी है, अतः समाधान खोजने हेतु मूल समस्याओं के निराकरण की बात सोचना उचित एवं उपयुक्त है। उदाहरण के लिए वनों का विनाश न करने से जाने कितने पर्यावरणीय समस्याएं स्वतः हल हो जायेगी। उद्योगों में आवश्यक क्षमता के प्रदूषण नियंत्रक लगाने में वायुमण्डल और जलमण्डल की अनगिनत समस्याओं का समाधान निहित है। यह दृष्टिकोण प्राकृतिक तथा मानवकृत दोनों प्रकार के पर्यावरण हेतु आवश्यक है।

5. पर्यावरण सुधार

जितना भी पर्यावरण विकृत हो गया है अथवा उसका ह्रास हो रहा है, उसे सुधारने हेतु भी व्यवहारिक प्रयास किये जाने की महती आवश्यकता है। घने जंगल लगाये जायें, वन्य जीवों की सुरक्षा का प्रावधान हो, जल स्त्रोतों की स्वच्छता बनाये रखी जाये, माइनिंग से विकृत स्थलों को मनोरंजन स्थल के रूप में विकसित किया जाये, आवासीय कालोनियों अथवा कस्बे व गांव के बीच बन गये गन्दगी केन्द्र को बच्चों के खेलने के मैदानों में परिवर्तित किया जाये, स्वचलित वाहनों का उपयोग कम किया जाये।

निष्कर्ष–प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता और उचित उपयोग वायु, जल, भूमि इनके प्रदूषण के कारण और निवारण, ध्वनि प्रदूषण, बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण, औद्योगीकरण, ग्रीन हाउस प्रभाव, ओजोन पर्त का क्षय, नम भूमि और बंजर भूमि की समस्याएँ स्वचलित वाहनों से प्रदूषण, पर्यावरणीय कानून, ऊर्जा व उसके वैकल्पिक स्रोत, राष्ट्रीय पर्यावरण नीति और पर्यावरणीय शिक्षा आदि वे विचार बिन्दु हो सकते हैं जिन पर हमें

शान्ति से सोचना है तथा उन पर जनसाधारण की जिम्मेदारी निश्चित करनी है हमारा सुन्दर भविष्य हमारे अपने उत्तरदायित्व को निभाने में निहित है।

संदर्भ सूची–

1. इंजी. त्यागी, अमरनाथ, चैदिक और पर्यावरण संस्कृति पर्यावरण विमर्श पुन्य।[1]
2. श्रीवास्तव, डी. एन. गोयल, एम. के. पर्यावरणीय एवं जनसंख्या शिक्षा (2015) अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा पृ. स.–2.
3. Mary Harahan, Centre or Mathematics and science queensland wnuveesity of technology, australla of science education 20 (6) p737-753
4. Joury Souk Sung, Department of computer Engineering, Backseak Culture university of Advanced science and technology volume 13, December, 2009.
5. R. Keith Sowyer- Associale Profesor of sducation psychology and business at was university st. lows of CDèCERI International Conserce 2008.
6. डॉ. गोयल, एम. के. पर्यावरण शिक्षा 2013 अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा पृ.सं–3
7. प्रोफेसर पचौरी, जे. पी. डॉ. वाली, किरन पर्वतीय महिलाओं में पर्यावरणीय ज्ञान : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, वर्ष 17 अंक 1, जनवरी जून 2015 शोध पत्रिका राधाकमल मुकर्जी, चिन्तन पराम्परा।

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

ज्योतिष ग्रन्थ वशिष्ठ संहिता के रचनाकार वशिष्ठ : एक परिचय

❐ डॉ. वागीश कुमार तिवारी

शोध सारांश

वसिष्ठ संहिता के प्रणेता महर्षि वसिष्ठ वैदिक ऋषि हैं। वैदिक ग्रन्थों, पुराणों तथा धर्मशास्त्रों में महर्षि वसिष्ठ ब्रह्मा के मानस पुत्र रूप में प्रख्यात हैं। संस्कृत वाङ्मय में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। वसिष्ठ एवं विश्वामित्र की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। सप्तर्षि मण्डल में वसिष्ठ का अन्यतम स्थान है। अतः यह स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि वसिष्ठ संहिता नाम से प्रख्यात लौकिक संस्कृत में विरचित यह ग्रंथ किस वसिष्ठ का है। क्या यह वैदिक ऋषि प्रणीत है? अथवा वसिष्ठ नामधारी अन्य किसी आचार्य की कृति है। संस्कृत साहित्य की पौराणिक परम्परा में व्यास नाम से विद्वानों की परम्परा प्राचीन काल से प्रचलित है। इसी प्रकार वैदिक काल से आज तक आचार्य परम्परा में वसिष्ठ नामधारी अनेक विद्वान् हो चुके हैं। उनमें से यह किस की रचना है।

क्या यह नारद या पाराशर संहिता के समान किसी सामान्य वसिष्ठ नामधारी आचार्य की रचना है? अथवा ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तक रूप में प्रख्यात वैदिक ऋषि महर्षि वसिष्ठ की ही कृति है? संस्कृत साहित्य में वसिष्ठ एवं वृद्ध वसिष्ठ का उल्लेख अनेक स्थलों पर प्रापत होता है। नाम भेद होने पर भी ग्रन्थ में भेद नहीं होता। इसलिए यह माना जा सकता है कि वसिष्ठ एवं वृद्ध–वसिष्ठ एक ही हैं। वशिष्ठ के नाम पर रचित वशिष्ठ संहिता में प्राचीनता विद्यमान नहीं है। भाषा एवं वर्ण्यविषय में प्रौढ़ता के दर्शन नहीं होते। इस संहिता में कुल 46 अध्याय हैं। जबकि इसमें 45 अध्याय ही उपनिबद्ध माने गये हैं–

''पंचोत्तरचत्वारिंशद् विपुलाध्यायैविराजते स्कन्धः।
अज्ञाज्ञानोपशमनमितरेषां बुद्धिवर्धनं नित्यम्।।''

वशिष्ठ संहिता में कुल 46 अध्यायों में संहिता विषयक अनेक तथ्यों का वर्णन किया गया है। प्रथम अध्याय मंगल अध्याय है दूसरा अध्याय सूर्यचाराध्याय का उल्लेख करता है। तीसरे अध्याय में चन्द्रचार का वर्णन किया गया है चौथे अध्याय में भौमचार का निरूपण किया गया है। इसी प्रकार पाँचवे अध्याय में बुधचार छठे अध्याय में गुरुचार,

* अतिथि विद्वान्, शासकीय महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

सातवें में शुक्रचार तथा आठवें अध्याय में शनिचार का निरूपण किया गया है।

नौवे अध्याय में राहुचार का विस्तृत वर्णन किया गया है। दशवां अध्याय केतुचाराध्याय ग्यारहवें अध्याय में वर्षेशों का निर्णय किया गया है बारहवें अध्याय में तिथियों के स्वरूप का निभालन किया गया है। तेरहवें अध्याय में बार्रो के स्वरूप का निर्धारण किया गया है। चौदहवें अध्याय में नक्षत्रों स्वरूपाध्याय है। पन्द्रहवें अध्याय में ज्योतिष के विविध योगों का निरूपण किया गया है। सोलहवें अध्याय में करणों का वर्णन किया गया है। सत्रहवें अध्याय में विविध मुहूर्तों का निरूपण किया गया है। अठाहरवें अध्याय में गोचर फल का विचार किया गया है। उन्नीसवें अध्याय में संक्रान्तियों का वर्णन किया गया है। बीसवें अध्याय में चन्द्रतारावल के विषय में विवेचन किया गया है।

इक्कीसवें अध्याय में उपग्रहों का निभालन किया गया है। वाइसवां अध्याय ग्रह कूटाध्याय है तथा तेइसवां अध्याय लग्न बलाध्याय है। चौबीसवां अध्याय आधानाध्याय तथा पचीसवां पुंसवन सीमान्त अध्याय है। छब्बीसवें अध्याय में जातकर्म तथा नामकर्म का वर्णन किया गया है। सत्ताइसवें अध्याय में अन्नप्राशन का वर्णन किया गया है। अट्ठाइसवें अध्याय में चौलकर्म का निरूपण किया गया है। उन्नीसवां अध्याय उपनयनाध्याय है। तीसवें अध्याय में समावर्तन का निरूपण किया गया है।

इकतीसवां अध्याय विवाह प्रश्नाध्याय है तथा बत्तीसवां विवाहाध्याय है। तैंतीसवां राज्याभिषेकाध्याय है। चौंतीसवें अध्याय में अश्वारिष्ट का निरूपण किया गया है। पैंतीसवां अध्याय गजारिष्टाध्याय है। छत्तीसवां अध्याय ग्रहण शान्ति विषयक निरूपण करता है। सैंतीसवां अध्याय यात्रा विषयक निरूपण करता है। अड़तीसवें अध्याय में ग्रह प्रदेश का वर्णन किया गया है। उन्तालीसवें अध्याय में वास्तु विषयक वर्णन किया गया है। चालीसवें अध्याय में सुरप्रतिष्ठा का विवेचन विस्तार से किया गया है।

इकतालीसवें अध्याय में गुणों का निरूपण किया गया है। बयालिसवां अध्याय दोषों का उद्घाटन करता है। तैंतालिसवें अध्याय में गुण एवं दोषों के अफवाहों का निभालन किया गया है। चौवालिसवें अध्याय में वस्त्र परिधान का निरूपण किया गया है। पैंतालिसवें अध्याय में विविध उत्पातों का वर्णन किया गया है। छियालिसवें अध्याय में रोगों की उत्पत्ति तथा उनके निदान के कारणों का निभालन किया गया है। इस प्रकार वसिष्ठ संहिता में कुछ छियालीस अध्यायों संहिता के विविध विषयों का सरल एवं मनोहारी विवेचन किया गया है। इस संहिता में अनेक दुर्लभ विषयों का निरूपण होने से संहिता की उपयोगिता में वृद्धि होती है।

वसिष्ठ संहिता के कृतिकार महर्षि वसिष्ठ वैदिक ऋषि हैं। सभी वैदिक ग्रन्थों में पुराणों में धर्मशास्त्र में तथा संस्कृत के अन्य वाङ्मय में वसिष्ठ का महत्वपूर्ण स्थान है। वसिष्ठ सूर्यवंशियों के गुण हैं। वसिष्ठ एवं विश्वामित्र की कथा जगत् प्रसिद्ध है। सप्तमहर्षि मण्डल में वसिष्ठ का अन्यतम स्थान है। अतः स्वाभाविक रूप से यह जिज्ञासा होती है कि वसिष्ठ संहिता नामक लौकिक संस्कृत में स्थित इस ग्रन्थ के रचयिता कौन से वसिष्ठ हैं वैदिक ऋषि या पौराणिक अथवा अन्य कोई वसिष्ठ नामधारी आचार्य हैं। पौराणिक परम्परा में यह दिखाई देता है कि व्यास नाम से विद्वानों की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही परम्परा का कोई अन्य आचार्य इस वसिष्ठ संहिता का कृतिकार है। वैदिक काल से आज तक अनेक वसिष्ठ पैदा हुए हैं। उक्त कथन का अभिप्राय यह है कि नारद संहिता, पराशर संहिता तथा गर्ग संहिता के समान ही वसिष्ठ के नाम से विख्यात इस वसिष्ठ संहिता का प्रणेता कौन है। संहिता में वसिष्ठ तथा वृद्ध वसिष्ठ दो नाम प्रयुक्त हैं। कहीं भी महर्षि वसिष्ठ प्रणेता कौन है। संहिता में वसिष्ठ तथा वृद्ध वसिष्ठ दो नाम प्रयुक्त हैं। कहीं भी महर्षि वसिष्ठ पद का प्रयोग नहीं किया गया है। यह कहा जा सकता है

कि वसिष्ठ या वृद्ध वसिष्ठ एक ही हैं। वसिष्ठ के वैदिक द्धषि होने के कारण वसिष्ठ शब्द का निर्वचन विविध केश ग्रन्थों में किया गया है।

वशिष्ठ स्त्री वशी, वशीकरणं साध्यत्वेन अस्य अस्तीति वसिष्ठः। वश + ठन् प्रत्यय गुरु के अभाव में वसिष्ठ शब्द निष्पन्न होता है। यह शब्द चन्द्रिका का मत है। वसिष्ठा, स्त्री वशिनो भावः। वशिन् + तल् वशित्वम्। वशित्वयस्यास्तीति वशिष्ठः। वशिन् + तल वशित्वम्। वशित्वयस्या स्त्तीति वशिष्ठ + इति हेमचन्द्रः। श्रीमद्भावगत महापुराण में भी इसी व्युत्पत्ति को मान्यता दी गई है। यथा–

''मनोमय्यादधद्योगे मद्धर्मा वशितामियात्।''

वशित्वं क्लीः वशिनोभाव। वशित्तत्वे वसिष्ठ। यह षड्रत्नकार का मत है। शिव के आठ ऐश्वर्यों में वशित्व एक ऐश्वर्य है। जैसे–

अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा।
ईशित्वं च वशित्वं च प्रथा कामावशायिता।।

वशित्व स्वातंत्र्य कहलाता है जिससे मानव स्वेच्छानुसार विचारण करता है। अगर कोश के टीकाकार भरत का यह अभिमत है। वशवतां वशिनां श्रेष्ठः वशिष्ठः। वशवत् + इष्ठ ''विन्यतोर्लुक्/5/65 पाणिनि सूत्र से लोप् होने से वशिष्ठ शब्द निष्पन्न होता है। पृषोदरगण पठित होने से इस शब्द की निरक्ति महाभारत में इस प्रकार है । जैसे–

वशिष्ठोऽस्सि वरिष्ठोऽस्मि वेशेवास गृहेष्वपि।
वशिष्ठत्वाच्च वासाच्च वशिष्ठ इति विद्धि माम्।।

वशिष्ठ नाम से प्रख्यात वैदिक ऋषि। अरुन्धती के पति वशिष्ठ यह हेमचन्द्र का मत है। अरुन्धती नाथः। वशिष्ठ शब्द रत्नावली। वशिष्ठ ब्रह्मा के प्राण से पैदा हुए थे उनकी पत्नी कर्दमऋषि की पुत्री अरुन्धती पुत्र सप्तर्षि है। श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है–

वशिष्ठश्च तयोर्ज्जायां सप्तपुत्रानजीजनत्।
कन्याञ्च पुण्डरीकाक्षां सर्वशोभासमन्विताम्।।

रजोगात्रोर्ध्व वाहुश्च भवनश्च अनसयथा सुतयाः
शत्रु इत्येते सप्त पुत्राः महौजसः।।

इस प्रकार वशिष्ठ शब्द की निष्पत्ति के सम्बन्ध में कोशग्रन्थों, पुराणों या महाभारत तथा अन्य ग्रन्थों में जो विचार थे उन्हें यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। वशिष्ठ की प्रसिद्धि के कारण उन्हें श्रेष्ठ का वाचक माना गया है, इसलिये ''ब्राह्मण वशिष्ठ'' जैसा प्रयोग प्रचलित हुआ। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वशिष्ठ ब्राह्मणों में श्रेष्ठ थे। सप्तर्षियों में वशिष्ठ एवं भृगु सर्वश्रेष्ठ कहे गये हैं। यह भी प्रसिद्ध है कि वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धती पतिव्रताओं में अग्रणी है। भारत वर्ष की पतिव्रता से सावित्री, अनसूया, सीता आदि के साथ सम्मान से उनका नाम लिया जाता है। सप्तर्षि मण्डल में अरुन्धती के साथ वशिष्ठ की स्थिति है। वशिष्ठ वैदिकऋषि है– गायत्री जैसे प्रसिद्ध मन्त्र के उदाहरण हैं। गायत्री शापविमोचन प्रकरण में ब्रह्म वशिष्ठ विश्वामित्र गायत्री शाप का विमोचन विभिन्न वैदिक मंत्रों से शापोद्धार सर्वविदित है। वशिष्ठ वैदिक मंत्रों के द्रष्टा ऋषि हैं। वशिष्ठ ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। यह सर्वत्र प्रसिद्ध है। कल्पारम्भ में सृष्टि निमित्त ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। सभी यह सर्वविदित हैं। इसमें सन्देह का अवसर ही नहीं है। कल्पारम्भ में ही वसिष्ठ की सृष्टि हुई थी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सतयुग में ही वशिष्ठ की स्थिति थी। वशिष्ठ प्राचीनतम ऋषि है। इसमें सन्देह का स्थान ही नहीं।

वैदिक साहित्य में ''वशिष्ठ'' मित्रावरुण के पुत्र कहे गये हैं। एक बार उर्वशी के सौन्दर्य को देखकर मित्रावरुण का वीर्य स्खलन हो गया। उस वीर्य को एक यज्ञ कुम्भ में अन्य आचार्यों ने सुरक्षित कर लिया। इसके कुछ समय पश्चात् इस कुम्भ से वशिष्ठ और अगस्त्य का जन्म हुआ। वृद्ध देवता के एक उल्लेख के अनुसार कुम्भ के जल में मत्स्य आधार स्थल में वशिष्ठ और अगस्त उत्पन्न हुए। ऋग्वेद के एक आख्यान के अनुसार वशिष्ठ गान्धार का बुल प्रान्त के शासक त्रित्सुवंशी राजा दिवादास के पौत्र के पुत्र पिज्वन के पुत्र राजा सुदास के

राजपुरोहित थे। सुदास ने वसिष्ठ को बहुत अधिक दान दिया था। एक बार सुदास ने विश्वामित्र को बुलाकर यज्ञ कराया जिससे वशिष्ठ क्रुद्ध हो गये। अन्य यजमान भक्तों के माध्यम से वशिष्ठ ने सुदास को बहुत कष्ट दिलवाया। विश्वामित्र यज्ञ से निवृत्त होकर अपने आश्रम चले गये। किन्तु सुदास के पुत्रों ने वशिष्ठ के सौ पुत्रों का नाश कर दिया। वशिष्ठ ने कतिपय वेद मन्त्रों के प्रयोग से सुदास के पुत्रों को पराजित कर दिया। पुराणों में सर्वत्र वशिष्ठ ब्रह्मा के मानस पुत्र विख्यात हैं।

एक पौराणिक आख्यान के अनुसार एक बार राजा निमि और वशिष्ठ के मध्य कलह हो गया। जिससे राजा निमि तपस्या के बल पर अशरीरी होकर जीवन धारण की शक्ति प्राप्त कर लिए। जिससे उनके वंशज विदेह कहलाये तथा वशिष्ठ अपनी देह का परित्याग कर मित्रावरुण के वीर्य से उत्पन्न हुए। यह पौराणिक आख्यान ऋग्वेद से साम्य रखता है।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार त्रेतायुग में सूर्यवंशी राजाओं के साथ कुल परम्परा से महर्षि वशिष्ठ का पौरोहित्य दृष्टिगोचर होता है। आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में ही महाराज दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ के अनुष्ठाता महर्षि वशिष्ठ ही थे उन्हीं के निर्देशन में यज्ञ का अनुष्ठान हुआ। यथा–

''ततः साध्विति तद् वाक्यं ब्राह्मणाः प्रत्यपूजयन्।
वशिष्ठ प्रमुखा सर्वे पार्थिवस्य मुख्याच्च्युतम्।।
अभिवाद्य वशिष्ठं च न्यायतः प्रतिपूज्य च।
अब्रवीत् प्रश्रितं वाक्यं प्रसवार्थे द्विजोत्तमम्।।
यज्ञो मे क्रियतां ब्रह्मन् यथोक्तं मुनिपुं जव।
यथा न विघ्नाः क्रियन्ते यज्ञांगेषु विधीयताम्।।''

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम एवं अन्य भरत, लक्ष्मण, शत्रुध्न आदि राजकुमारों का महर्षि वशिष्ठ ने ही नामकरण किया था। वशिष्ठ के आश्रम में ही इन चारों राजकुमारों की शिक्षा दीक्षा भी सम्पन्न हुई थी।

इसी प्रसंग में यज्ञों में होने वाले विघ्नों के निवारणार्थ विश्वामित्र दशरथ से राम–लक्ष्मण की याचना करते हैं। जिसमें वशिष्ठ विश्वामित्र की सहायता करते हैं। वाल्मीकि रामायण में इस प्रसंग का उल्लेख है। यथा–

''भवान् स्निग्धः सुहृन्मह्यं गुरुश्च परमो महान्।
वोढव्यो भवता चैव भारो यज्ञस्य चोद्यतः।।
अतीत्यैकादशाहं तु नाम कर्म तथा करोत्।
ज्येष्ठं रामं महात्मानं भरतं कैकेयी सुतम्।।
सौमित्रिं लक्ष्मणमिति शत्रुध्नमपरं तथा।
वशिष्ठः परमप्रीतो नामानि कुरुते तदा।।''

इसी प्रसंग में महर्षि वशिष्ठ ने विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि की उपाधि भी दी थी। अग्रिम प्रसंग में विश्वामित्र की सहायता का वचन देकर भी राजा दशरथ राम लक्ष्मण को उनके साथ जंगल में भेजने के लिए तैयार नहीं हुए। तब वशिष्ठ के कहने पर ही दशरथ ने विश्वामित्र के साथ राम–लक्ष्मण को भेजा था। इससे महर्षि वशिष्ठ का प्रभाव स्वतः स्पष्ट होता है। यथा–

''वशिष्ठं च समागम्य कुशलं मुनिपुंगव।
ऋषींश्च तान् यथान्यायं महाभाग उवाच ह।।
यस्माद् विप्रेन्द्रमद्राक्ष सुप्रभाता निशामम।
पूर्वं राजर्षि शब्देन तपसा द्योतितप्रभः।
ब्रह्मर्षित्वमनुप्राप्तः पूज्योऽसि बहुधा मम।
तदद्भूतमभूद् विप्र पवित्रं परमं यम्।।
त्रस्तरूपं च विज्ञाय जगत्सर्वं महानृषिः।
इक्ष्वाकूणां कुलेजातः साक्षात् धर्म इवापरः।
धृतिमान् सुव्रतः श्रीमान् न धर्मं हातुमर्हसि।
त्रिषुलोकेषु विख्यातो धर्मात्मा इति राघवः।
स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व नाधर्मं वोढुमर्हसि।।

वाल्मीकि रामायण के एक प्रसंग में विश्वामित्र सेना सहित महार्षि वशिष्ठ के आश्रम में जाते हैं। महर्षि वशिष्ठ सेना सहित विश्वामित्र का राज सत्कार करते हैं, विश्वामित्र सत्कार का कारण कामधेनु को जानकर महर्षि वशिष्ठ से धेनु की याचना करते हैं। महर्षि वशिष्ठ के निषेध करने पर

भी विश्वामित्र बलपूर्वक कामधेनु को ले जाना चाहते हैं। कामधेनु के द्वारा उत्पन्न सैन्य से पराजित विश्वामित्र तपस्या से महादेव से दिव्य रत्न प्राप्त कर वशिष्ठ पर आक्रमण करते हैं। पुनः पराजित होकर विश्वामित्र क्षत्रिय बल का धिक्कार कर ब्रह्मतेज को परम बल स्वीकार करते हैं। इससे भी महर्षि वशिष्ठ त्रेताकालीन सिद्ध होते हैं।

वाल्मीकि रामायण में महर्षि वशिष्ठ के सम्बन्ध में एक विलक्षण कथा है। वशिष्ठ से पराजित विश्वामित्र घोर तपस्या करते हैं। उस तपस्या से प्रसन्न ब्रह्मा विश्वामित्र को राजर्षि की उपाधि देकर विश्वामित्र को सामर्थ्य प्रदान कर ब्रह्मलोक चले गये। किन्तु राजर्षि की उपाधि से खिन्न विश्वामित्र पुनः घोर तपस्या करने लगे। इसी अवसर में इक्ष्वाकु कुल में प्रसूत राजा त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग जाने की इच्छा करने लगे। त्रिशंकु अपने कलयुग वशिष्ठ से सशरीर स्वर्ग जाने के लिए यज्ञ कराने का निवेदन किया। वशिष्ठ के मना कर देने त्रिशंकु वशिष्ठ के सौ पुत्रों से यज्ञ कराने की प्रार्थना की। वशिष्ठ के पुत्रों ने भी सशरीर स्वर्ग जाने वाले यज्ञ के लिए मना कर दिया।

राजा त्रिशंकु ने पुनः वशिष्ठ पुत्रों से यथार्थ निवेदन किया, क्रुद्ध होकर वशिष्ठ पुत्रों ने त्रिशंकु को चाण्डाल होने का शाप दे दिया। ऋषि पुत्रों से शापित त्रिशंकु चाण्डाल रूप में विश्वामित्र से सशरीर स्वर्ग जाने हेतु यज्ञ कराने का निवेदन किया। विश्वामित्र ने यज्ञ कराकर सशरीर त्रिशंकु को स्वर्ग पहुँचा दिया। सशरीर स्वर्ग गये त्रिशंकु को इन्द्र ने धक्का देकर नीचे गिरा दिया। विश्वामित्र ने उसे पृथ्वी पर गिरने से रोक दिया। जिससे त्रिशंकु धरती और आकाश के बीच में ही मुख के बल लटका हुआ है। यह वाल्मीकि रामायण में प्रतिपादित किया गया है। इस प्रसंग से भी वशिष्ठ के त्रेताकालीन होने का समर्थन होता है।

महाभारत में भी महर्षि वशिष्ठ का परिचय योगी के रूप में दिया गया है। वे इन्द्रिय जयी स्थिर, बुद्धि, समदर्शी सिद्धयोगी के रूप में बताये गये हैं। श्रीमद्भागवत में वशिष्ठ का परिचय कई स्थानों पर आया है। भागवत महर्षि वशिष्ठ ब्रह्मा के मानस पुत्र के रूप में चर्चित हैं। सप्तर्षि उनके पुत्र कहे गये हैं। महर्षि वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धती कर्दम ऋषि की पुत्री पतिव्रताओं में अन्यतम कही गई है। योगवाशिष्ठ ग्रन्थ में महर्षि वशिष्ठ के विशिष्ट महत्वों का प्रकाशन किया गया है। इस प्रकार महर्षि वशिष्ठ के कथानक भारतीय साहित्य में यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं। जिनसे उनकी प्राचीनता का बोध होता है। महर्षि वशिष्ठ प्रख्यात वैदिक ऋषि हैं। उनका जीवन चरित्र जगत् प्रसिद्ध हैं। अतः अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

महर्षि वशिष्ठ मन्त्र द्रष्टा वैदिक ऋषि हैं। भारतीय वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक साहित्य भी महर्षि वशिष्ठ के चरित्र से परिचित है। ऋग्वेद से लेकर पुराण साहित्य तथा काव्यादिक में उनके विषय में प्रमाण उपलब्ध है। महर्षि वशिष्ठ गोत्र प्रवर्तक ऋषियों में प्रख्यात हैं। ज्योतिष शास्त्र के 18 प्रख्यात आचार्यों में महर्षि वशिष्ठ का भी उल्लेख है।

संदर्भ स्रोत

1. वशिष्ठ संहिता (1/13)
2. श्रीमद्भाग0 (11/15/16)
3. म0 भा0 – 13.93.89
4. वाल्मीकि रामा0 अ0 बा0 का0 – (1/2/10)
5. वाल्मीकि रामा0 अ0 बा0 का0 – (1/13/2–3)
6. वाल्मीकि रामा0 – (1/13/4)
7. वाल्मीकि रामा0 – (1/18/21–22)
8. वाल्मीकि रामा0 – (1/18/47)
9. वा0 रा0 ब0 – (1/2/6–7)

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

मध्य प्रदेश के अन्तर क्षेत्रीय औद्योगिक विकास में विषमता के प्रभाव

❐ डॉ. प्रियंका शुक्ला

शोध सारांश

आर्थिक विषमताओं का अध्ययन, किसी प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के आर्थिक विकास में प्रत्येक क्षेत्र विशेष की परिस्थिति और पर्यावरण को उसकी क्षमता के साथ व्यक्त करता है जो नियोजनकर्ता और सरकारों को उस क्षेत्र विशेष की विकास योजना बनाने में मदद करता है। इस प्रकार प्रदेश और देश के संतुलित आर्थिक विकास में इस अध्ययन का उपयुक्त स्थान प्राप्त है। देश का असंतुलित विकास नगरीकरण की समस्या को पैदा करता है। कम विकसित क्षेत्रों से लोग बेहतर अवसर की तलाश में औद्योगिक क्षेत्रों, जो ज्यादातर बड़े शहरों में होते हैं, की ओर पलायन करते हैं। स्थानीकरण व नगरीकरण होने से भीड़–भाड़ व अन्य कई समस्यायें पैदा होती है, दूसरी तरफ प्रभावित क्षेत्रों से प्रतिभा का पलायन होने से गरीबी में वृद्धि होती जाती है। जब तक कि संतुलित विकास न हो, क्षेत्रीय विषमताओं का अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। असंतुलित अर्थव्यवस्था में विकसित क्षेत्र अल्पविकसित क्षेत्रों को पूरी तरह ढककर उन्हें पृष्ठभूमि में ढकेल देते हैं, इस तथ्य के बावजूद भी वे क्षेत्र देश के आर्थिक विकास का हिस्सा होते हैं। इस कारण इन क्षेत्रों के युवा पीढ़ियों के मन में हीन भावना पैदा होती है। वे या तो बहुत विनम्र व सरल होते हैं या तो बहुत तेज और आक्रामक होते हैं, जिसके कारण देश में आंतरिक मतभेद की स्थिति बनती हैं। विकासशील देशों के आर्थिक विकास में क्षेत्रीय विषमताओं की समस्या ज्यादा प्रचलित है। भारत भी इसी वर्ग में आता है, क्योंकि क्षेत्रीय आर्थिक विषमताओं को दूर करने के लिए देश पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारम्भ से पूर्व ही प्रयत्न कर रहा है।

प्रस्तावना :

मध्य प्रदेश में अन्तरक्षेत्रीय औद्योगिक विकास में विषमता के विविध परिणाम है और ये अधिकतर नकारात्मक प्रभाव ही है। क्षेत्रीय विषमता प्रत्यक्ष रूप से, व्यवसाय, उद्योग, लाभ, रोजगार, सामाजिक कल्याण व अर्थव्यवस्था के आर्थिक क्रियाकलापों पर प्रतिघात करती है। एक राष्ट्र अथवा राज्य का आर्थिक, सामाजिक विकास उसकी आर्थिक व्यवस्था पर ही निर्भर होता है।

* एम.ए. (अर्थशास्त्र), शास. टी.आर.एस. (उत्कृष्टता) महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

अन्तरक्षेत्रीय औद्योगिक विषमता का प्रभाव :

अन्तरक्षेत्रीय औद्योगिक विषमता के प्रभाव का विश्लेषण दो महत्वपूर्ण बिन्दुओं के तहत कर सकते हैं :–

1. सामान्य प्रभाव
2. क्षेत्रवार प्रभाव

1. अन्तरक्षेत्रीय औद्योगिक विषमता के सामान्य प्रभाव :

अन्तरक्षेत्रीय औद्योगिक विषमता के सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु आर्थिक प्रभावों को निम्नांकित बिन्दुओं में वितरित किये जा सकते हैं, जो निम्नानुसार हैं:–

अर्थव्यवस्था का असंतुलित विकास
उद्योगों के स्थानीकरण के दुष्प्रभाव
राष्ट्रीय लाभ पर क्षेत्रीय लाभ की अधीनता
साधनों का उचित विदोहन न होने के कारण बर्बादी
पिछड़े क्षेत्रों में हीनता की भावना व अस्थिरता
कृषि पर जनसंख्या का अधिभार
विकेन्द्रीकरण का अभाव
पिछड़े क्षेत्रों में उद्यमिता की कमी
प्रवास की समस्या
असमानता में वृद्धि
यातायात एवं संचार पर प्रभाव
प्रति व्यक्ति आय पर प्रभाव

अर्थव्यवस्था का असंतुलित विकास– अर्थव्यवस्था का अगर विकास असंतुलित होगा तो क्षेत्रीय विषमता उत्पन्न होगी। वे क्षेत्र जो सभी मायनों में विकसित है तथा वे क्षेत्र जो लगभग सभी दृष्टिकोणों में इन क्षेत्रों से पीछे हैं ये सभी देश या राज्य के एकंगे विकास को परिणामित करते हैं। विकसित भागों को अविकसित भागों से कई प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं तथा वे ज्यों के त्यों ही स्थिर पड़े रहते हैं।

इसलिए एक अर्थव्यवस्था के पूर्ण रूप से विकास के लिए उन सभी क्षेत्रों का समान रूप से विकास होना चाहिए क्योंकि एक तरफा विकास कष्टकारी होता है।

उद्योगों के स्थानीकरण के दुष्प्रभाव– स्थानीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक या एक से अधिक आर्थिक संस्थान एक जगह पर केन्द्रित होते हैं। स्थानीकरण, औद्योगिक विषमता का सम्भवतः सबसे बड़ा दोष है, क्योंकि उद्योग तथा अन्य संस्थान उन भागों में स्थापित होते हैं जहां पर विकास ज्यादा स्तर पर हुआ है तथा अर्थव्यवस्था काफी प्रबल है। जब उद्योगों का स्थानीकरण किसी विशेष स्थान पर होता है तो वह स्थान लाभ के साथ–साथ कई प्रकार की हानियों से भी प्रभावित होता है जैसे जनसंख्या वृद्धि, आवास की समस्या, पानी की कमी, वायु प्रदूषण, अन्य शहरी सुविधाओं की समस्या आदि।

राष्ट्रीय लाभ पर क्षेत्रीय की अधीनता–राष्ट्रीय लाभ में सदैव विकास का एक संतुलित तरीका होता है। यह संतुलित प्रकार केवल सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से ही नहीं होता, बल्कि राजनीतिक व रक्षा की दृष्टि से भी होता है। इसके विपरीत क्षेत्रों का असंतुलित विकास कई मायनों में देश को कमजोर स्थिति में ले जाता है। देश के असंतुलित विकास उसके लाभ पर बहुत विपरीत प्रभाव पड़ता है। कुछ क्षेत्रों से अधिक लाभ प्राप्त होता है तथा अन्य क्षेत्र ज्यों के त्यों पिछड़े बने रहते हैं। इससे पिछड़ेपन की समस्या पनपने लगती है।

पिछड़े क्षेत्रों में बाजार बहुत छोटा तथा अपूर्ण होता है, जिससे वहां वस्तुओं को बहुलता नहीं होती है कि वे उत्पादक उद्योगों से अदल–बदल सके। परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों का विकास रूक जाता है तथा वस्तुओं की कमी की समस्या हमेशा बनी रहती है, यह समस्या राष्ट्र के हित के लिए

उचित नहीं होती, क्योंकि यह सम्पूर्ण राष्ट्र के बाजार के विकास की दर को अपने गिरफ्त में ले लेता है तथा सम्पूर्ण राष्ट्र के मार्ग अवरुद्ध कर देता है। सीमित बाजारों के कारण प्रति व्यक्ति उत्पादन कम रहता है, जिससे प्रति व्यक्ति आय भी कम हो जाती है। फलस्वरूप वहां उपभोग में कमी व बचत में भी कमी हो जाती है। परिणामतः पूंजी की कमी की समस्या उत्पन्न हो जाती है और धीरे–धीरे देश इस 'कुचक्र' में उलझने लगता है। बाजार की प्राथमिक कमी सम्पूर्ण राष्ट्र उत्पादन और मांग कम कर देती है। अर्थात् हम कह सकते हैं कि समान औद्योगिक विकास के लिए सभी क्षेत्रों का विकास आवश्यक है।

संसाधनों का उचित विदोहन न होने के कारण बर्बादी–मध्य प्रदेश के औद्योगिक विकास में विषमता के कारण उत्पादन के साधनों का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता, जिससे साधनों की क्षति अधिक हो जात है। औद्वोगिक रूप से विकसित क्षेत्रों में उत्पादन के साधनों की अत्यधिक मांग के परिणामस्वरूप इनका कुशल प्रयोग हो जाता है, जबकि पिछड़े क्षेत्रों में उत्पादन के साधन विशेषतः भूमि, श्रम, पूंजी जो उपलब्ध है, मांग की कमी के कारण बेकार पड़े हैं। अर्थात् इन साधनों का उपयोग कम होता है। इस प्रकार हमारे देश के उत्पादन के साधनों का एक बहुत बड़ा भाग पूर्ण उपयोग न हो पाने की वजह से बर्बाद हो जाता है।

पिछड़े क्षेत्रों में हीनता की भावना व अस्थिरता– औद्योगिक रूप से अविकसित क्षेत्र, विकसित क्षेत्रों के नीचे होते हैं वे केवल राज्य के विकास के अंतस्थ भाग होते हैं। अन्य रूपों में इन्हें नगण्य माना जाता है। इस प्रकार इन क्षेत्रों के निवासियों के मन में हीन ग्रन्थि पनपने लगती है। वे अपने को उपेक्षित महसूस करने लगते हैं तथा इन क्षेत्रों में वातावरण अस्थिर होने लगता है। इस तरह की भावना राष्ट्र की भलाई के लिए हितकारी नहीं होती है, क्योंकि इससे अस्थिरता, गृहयुद्ध, आपसी झगड़े आदि होने लगते हैं। इसके परिणामस्वरूप विकास अवरुद्ध होता है व देश में अनेक समस्यायें उत्पन्न होती है।

कृषि पर जनसंख्या का अधिभार–भारत मुख्यतः कृषि प्रधान देश है। जहां 70 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। जो वास्तव में औद्योगिक रूप से पिछड़े क्षेत्र हैं तथा 30 प्रतिशत जनसंख्या शहरी क्षेत्रों में रहती है, जहां उद्योगों का विकास होता है, जो 70 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है, वो कृषि पर निर्भर है। क्योंकि इन क्षेत्रों में उद्योगों के अभाव के कारण जीवनयापन का कोई अन्य साधन नहीं होता। जिससे कृषि पर जनसंख्या का दबाव अधिक हो जाता है। परिणामस्वरूप कृषि की उत्पादकता में कमी आती है और किसान तथा देश दोनों गरीब हो जाते हैं। अतः इन क्षेत्रों में औद्योगिक विकास करके रोजगार की सुविधाओं का विस्तार कर देने से ही कृषि पर जनसंख्या का अतिरिक्त भार कम हो सकता है।

विकेन्द्रीकरण का अभाव–अन्तरक्षेत्रीय औद्योगिक विषमतायें विकेन्द्रीकरण को हतोत्साहित करती है तथा केन्द्रीकरण को प्रोत्साहित करती है। विकसित क्षेत्रों में नए उद्योगपतियों, नए उत्पादकों, नई संस्थाओं तथा नए साहसियों को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता होती है, जबकि पिछड़े क्षेत्रों में उपर्युक्त चीजों को विकर्षित करने की प्रवृत्ति होती है। उदाहरण के तौर पर प्रदेश के पांच जिले ऐसे हैं जो पूर्ण विकसित जिलों की श्रेणी में आंते हैं, उनमें औद्योगीकरण कितना तेजी से हो रहा है। नित नये संस्थानों की स्थापना की जा रही है। इन्दौर में 'उद्योग पार्क' खोला जा रहा है, वहीं पर पिछड़े जिले क्रमशः जो क, ख, ग वर्गों में विभाजित किये

गये हैं, वे जिले उद्योगपतियों को उद्योग स्थापित करने के लिए हतोत्साहित करते हैं। परिणामस्वरूप केन्द्रीकरण की समस्या उत्पन्न होकर सामने आती है। आर्थिक मामलों में केन्द्रीकरण बहुत सी अन्य कमियों को बढ़ाता है, जैसे स्थानीयता की कमी, शहरीकरण की कमी, युद्ध की आशंका तथा असंतुलित विकास को बढ़ाता है।

पिछड़े क्षेत्रों में उद्यमिता की कमी–औद्योगिक रूप से पिछड़े क्षेत्र ऐसे क्षेत्र हैं, जहां पर व्यापारिक सुविधाओं की कमी होती है। वहां व्यापार, यातायात, संचार तथा आर्थिक संस्थानों का अभाव होता है, जिसके परिणामस्वरूप नये उद्यमी इन क्षेत्रों में प्रवेश का साहस नहीं करते, क्योंकि उन्हें भय रहता है कि वहां उनके उत्पादों की मांग कम होगी तथा बाहरी अर्थव्यवस्था में उनके पिछड़े क्षेत्र में होने के कारण मांग में कमी होगी।

यद्यपि इन क्षेत्रों में औद्योगिक क्षमता होती है, परन्तु कुछ कारणों से इनका आगे बढ़ना नहीं हो पाता। इस तरह के उद्योग या तो बन्द हो जाते हैं अथवा विकसित क्षेत्रों में उत्पादन कार्य करते हैं, क्योंकि उस क्षेत्र में वस्तुओं की मांग व्यापक पैमाने पर की जाती है। अतः अन्तरक्षेत्रीय औद्योगिक विषमता में वृद्धि होती जाती है।

प्रवास या देशान्तरण की समस्या–यह निश्चित रूप से सत्य है कि पिछड़े क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों तथा सुविधाओं की कमी रहती है। उत्पादन के साधन विशेष रूप से श्रम, पूंजी आदि साहस अच्छे अवसरों की तलाश में अविकसित क्षेत्र को छोड़कर विकसित क्षेत्रों की ओर पलायन कर जाते हैं, जो अधिकांशतः शहरी क्षेत्र होते हें। जिससे शहरों में घनत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है और स्थानीकरण, शहरीकरण की समस्यायें विकराल रूप धारण करने लगती है, जिसके परिणामस्वरूप न केवल विकसित क्षेत्रों में नई–नई समस्यायें जन्म होती है। वरन् पिछड़े क्षेत्रों में लगातार योग्य और मेहनती शक्तियों का ह्रास होता जाता है, जिससे पिछड़े क्षेत्रों में अकुशल, अकार्यशील लोगों का प्रतिशत अधिक हो जाता है तथा वे और अधिक आर्थिक रूप से पिछड़ जाते हैं।

असमानता में वृद्धि–अन्तरक्षेत्रीय औद्योगिक विषमता कई नई विषमताओं को जन्म देती है। यह विषमता जब एक बार प्रारम्भ हो जाती है तो यह फासला निरन्तर बढ़ता जाता है। यह धारणा एक गोल घेरे के समान है, जो अपनी क्रिया–प्रतिक्रिया एक दूसरे पर लगती रहती है। उसी प्रकार गरीबी, एक गरीब क्षेत्र में इस प्रकार कार्य करती है कि सभी प्रकार की क्रियायें और प्रतिक्रियायें एक चक्र में पूर्ण रूप से एक दूसरे की कारण व परिणाम होती है।

इस प्रकारअसमानता का दायरा बढ़ता चला जाता है क्योंकि एक ओर गरीब भाग ज्यादा गरीब हो रहा है तथा दूसरी तरफ धनी भाग ज्यादा धनी हो रहा है। अविकसित तथा विकसित क्षेत्रों के बीच यह अंतर अर्थव्यवस्था के लिए खतरनाक सिद्ध होगा। जैसा कि गुन्नार मिर्डल ने कहा है कि ''एक देश गरीब है, क्योंकि वहां के निवासी गरीब है।''

यातायात एवं संचार पर प्रभाव–यह सत्य है कि जिस क्षेत्र में यातायात एवं संचार के साधन उपलब्ध होते हैं, वहां पर औद्योगिक इकाइयों की स्थापना की जाती है, क्योंकि उत्पादित वस्तुओं को बाजार तक पहुंचाने के लिये यातायात की सुविधाओं की आवश्यकता होती है। जैसे रेल्वे व सड़क मार्गों का होना आवश्यक होता है।

अतः जिन क्षेत्रों में औद्योगिक इकाइयां अत्यधिक स्थापित होती है। वहां पर यातायात एवं संचार के साधनों का विकास होता है तथा जिन क्षेत्रों में उद्योगों की संख्या कम होती है। वहां पर यातायात

साधनों का विकास नगण्य होता है, जिससे विषमता का दायरा बढ़ता जाता है।

प्रतिव्यक्ति आय पर प्रभाव—औद्योगिक विकास का प्रत्यक्ष प्रभाव प्रति व्यक्ति आय पर पड़ता है। जब औद्योगिक विकास जिन क्षेत्रों में अधिक होता है तो उस क्षेत्र में प्रति व्यक्ति आय भी अधिक होती है। इसके विपरीत जिन क्षेत्रों में औद्योगिक विकास कम होता है, उस क्षेत्र की प्रति व्यक्ति आय भी बहुत कम होती है तथा ये स्थिति अंततोगत्वा विकराल रूप धारण कर लेती है।

इस प्रकार अन्तरक्षेत्रीय औद्योगिक विषमता कम करने के लिये औद्योगिक रूप से समान विकास की आवश्यकता स्पष्ट होती है।

2. औद्योगिक विकास में विषमता का क्षेत्रवार प्रभाव :

मध्य प्रदेश के अन्तरक्षेत्रीय औद्योगिक विकास में विषमता के प्रभावों के अध्ययन में निम्नांकित बिन्दु है :—

क. जनांककीय क्षेत्र पर प्रभाव

ख. नगरीकरण और ग्रामीणीकरण पर प्रभाव

औद्योगिक विकास के क्षेत्रवार प्रभावों में जनांककीय क्षेत्र—औद्योगिक विकास के क्षेत्रवार प्रभावों के अध्ययन में जनांककीय प्रभावों के अध्ययन के लिए निम्न विषयों को ध्यान में रखा गया है :—

जनसंख्या का घनत्व
जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर
परिवार का औसत आकार
कुल समंक/सूचकांक

जनसंख्या का घनत्व—जनसंख्या घनत्व किसी विशेष क्षेत्र में रहने वाले लोगों की संख्या को प्रदर्शित करता है। भारत में जनसंख्या के घनत्व से तात्पर्य प्रति वर्ग कि.मी. में रहने वाले व्यक्तियों से है। हमारी मान्यता यह है कि जनसंख्या घनत्व औद्योगीकरण के साथ बढ़ता है, इसलिए यदि औद्योगिक विकास में विषमता होगी तो जनसंख्या घनत्व में भी विषमता होगी। इस प्रकार इन दोनों में धनात्मक सहसंबंध बनाकर विकास की प्रक्रिया को गति प्रदान की जा सकती है।

मध्य प्रदेश में जनसंख्या घनत्व की औसत माध्य 215.77 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है। मध्यिका का भाग 187 है, जनसंख्या घनत्व सबसे कम डिण्डोरी में है। यहां पर 78 व्यक्ति प्रति वर्ग कि. मी. में निवास करते हैं, वहीं पर सर्वाधिक घनत्व इन्दौर जिले में है। जहां पर 663 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. पर रहते हैं। इन्दौर औद्योगिक रूप से विकसित जिलों की श्रेणी में आता है, इससे ज्ञात होता है कि औद्योगिकरण जनसंख्या घनत्व को प्रभावित करता है। अगर औद्योगीकरण में विषमता होगी तो जनसंख्या घनत्व में भी विषमता बढ़ती है। घनत्व में विस्तार 585 तथा विस्तार गुणांक 0. 78 है। समंकों का मानक विचलन व विचरण गुणांक दोनों ही 54.67 है।

जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर—जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर से तात्पर्य दस वर्ष में जनसंख्या की वृद्धि दर से है। हमारी धारणा यह है कि औद्योगीकरण जनसंख्या की वृद्धि दर को बढ़ाता है, क्योंकि औद्योगिक क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि केवल जन्म दर के कारण नहीं होती, बल्कि अप्रवास के कारण भी होती है, इसलिए यदि औद्योगिकीकरण या औद्योगिक विकास में विषमता होगी तो जनसंख्या वृद्धि की दर में भी विषमता होगी।

मध्य प्रदेश में जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर का औसत मध्य 23.99 तथा मध्यिका का मान 24.17 प्रदर्शित किया गया है। सबसे कम वृद्धि दर 5.85 है जो बालाघाट जिले में है तथा सबसे अधिक वृद्धि दर 40.82 है, जो इन्दौर जिले में

अंकित किया गया है। इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि दर पर औद्वोगीकरण का प्रभाव पड़ता है। जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर का विस्तार 34.97 तथा विस्तार गुणांक 0.74 है। इसका मानक विचलन 24.30 तथा विचरण गुणांक 24.30 ही है।

परिवार का औसत आकार–एक परिवार से आशय उन व्यक्तियों की सीमित संख्या से है जो एक घर में रहते हैं तथा उनका भोजन एक ही जगह पर होता है। यह एक ऐसा घर जहां पर पति, पत्नी और उनके बच्चे सभी सम्मिलित रूप से रहते हैं। मानना यह है कि औद्योगीकरण छोटे परिवार को बढ़ावा देता है। इसके लिए कई कारक जिम्मेदार हो सकते हैं। जैसे शहरीकरण, गृह निर्माण की समस्या, मजदूरों का एक जगह से दूसरी जगह जाना, व्यस्त जीवन स्वतंत्र विचार तथा अवरोधों से अरुचि आदि। इसलिए यदि अधिक औद्योगीकरण व औद्योगिक विकास होता है तो इसका परिणाम छोटे परिवार ही होंगे।

मध्य प्रदेश में परिवार का औसत आकार का माध्य 5.60 व मध्यिका मान 5.71 है। परिवार का सबसे कम औसत आकार वाला जिला उमरिया है। जहां पर 5.05 व्यक्ति है। और सबसे अधिक आकार वाला जिला दतिया है, जहां पर 6.71 व्यक्ति रहते हैं। इस प्रकार इनका विस्तार 1.66 और विस्तार गुणांक 0.29 है। इनका प्रमाप विचलन व विचरण गुणांक दोनों ही 7.35 है।

कुल समंक–जनसंख्या घनत्व, जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर, परिवार का औसत आकार का कुल समंक मध्य प्रदेश का औसत 100 मानकर तुलना की गई है। मध्य प्रदेश की मध्यिका मान 98. 37 है। सबसे अधिकतम समंक 196.7 इंदौर जिले का है तथा सबसे न्यूनतम समंक 62.99 डिण्डोरी जिले का है। यहां पर समंकों का विस्तार 133.71 व विस्तार गुणांक 0.51 है। समंकों का मानक विचलन 23.98 व विचरण गुणांक 23.98 है।

औद्योगिक विकास में विषमता के क्षेत्रवार प्रभाव में नगरीकरण और ग्रामीणीकरण पर प्रभाव :

शहरीकरण व ग्रामीणीकरण पर औद्योगिक विकास में विषमता के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए हमने निम्न सूचकों को लिया है :–

- प्रति हजार वर्ग कि.मी. के क्षेत्र में शहरों की संख्या
- प्रति हजार वर्ग कि.मी. के क्षेत्र में गांवों की संख्या
- शहरी जनसंख्या का प्रतिशत
- ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत
- कुल समंक

प्रति हजार वर्ग कि.मी. के क्षेत्र में शहरों की संख्या–जो प्रति हजार वर्ग कि.मी. के क्षेत्र में शहरों की संख्या को इंगित करता है, उसे जिले का शहरी क्षेत्र कहते हैं। मेरा शोध आंकलन उस जिले के औद्योगिक विकास से सम्बन्धित है। जिले के प्रति वर्ग कि.मी. के क्षेत्र का औसत माध्य 1.24 है तथा इसकी मध्यिका मूल्य 1.17 जो झाबुआ जिले में है। प्रदेश का उच्चमान 2.56 इंदौर और निम्नमान 0.37 मण्डला जिले में हैं। विषमता का विस्तार 2.19 व विस्तार गुणांक 0.74 है। मानक विचलन व विचरण गुणांक 46.5 है।

प्रति हजार वर्ग कि.मी. के क्षेत्र में गांवों की संख्या–मध्य प्रदेश के प्रति हजार वर्ग कि.मी. में गांवों की संख्या का औसत माध्य 170.02 व मध्यिका मूल्य 168.79 है। प्रति हजार वर्ग कि.मी. के क्षेत्र में गांवों का उच्चमान 375.50 जो रीवा में है व निम्न मान 98. 33 जो खण्डवा में है। इस प्रकार आधे वर्ग कि.मी. में यहां पर कम से कम दो गांव है, इस प्रकार यहां के गांव अत्यन्त छोटे व एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

प्रदेश के विषमता का विस्तार 276.67 व विस्तार गुणांक 0.58 है। प्रदेश का मानक विचलन व विचरण गुणांक 21.30 है।

शहरी जनसंख्या का प्रतिशत–शहरी जनसंख्या के प्रतिशत से तात्पर्य है, शहरी क्षेत्र में रहने वाले लोगों का प्रतिशत से है। मध्य प्रदेश के शहरी जनसंख्या के प्रतिशत का औसत मूल्य 23.93 है और इसका मध्यिका मूल्य 21 हैं इस प्रकार 31 जिले प्रदेश के औसत मूल्य से नीचे है। दो जिले समान है व 12 जिले औसत मूल्य से ऊपर है। प्रदेश का सबसे कम प्रतिशत 9 खण्डवा जिले का है तथा सर्वाधिक प्रतिशत 81 भोपाल का है। इस प्रकार इनका विस्तार 72, विस्तार गुणांक 0.8 है इनका मानक विचलन 63.12 व विचरण गुणांक 63.12 ही है।

ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत–ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत से तात्पर्य यह है, कि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत। यह मान्यता है कि ग्रामीण जनसंख्या औद्योगीकरण को घटाती है, क्योंकि ये लोग ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्रों की ओर रोजगार के पाने के उद्देश्य से पपलायन कर जाते हैं। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में लोगों की संख्या तो अधिक है, लेकिन विकास के प्रतिशत में कमी है। मध्य प्रदेश के ग्रामीण जनसंख्या के प्रतिशत का औसत माध्य 81.19 है व मध्यिका मूल्य 79 है। 24 जिले प्रदेश के औसत माध्य से नीचे व 21 जिले ऊपर है। प्रदेश में सबसे कम प्रतिशत वाला जिला भोपाल है, जहां पर 19 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या रहती है। इसी प्रकार सर्वाधिक ग्रामीण जनसंख्या वाला जिला डिण्डोरी है, जहां पर यह प्रतिशत 95 है। इनका विस्तार 76 प्रतिशत व विस्तार गुणांक 0.66 है व मानक विचलन गुणांक 19.65 तथा 19.65 ही विचरण गुणांक है।

समग्र समंक–शहरों की संख्या व गांवों की संख्या प्रति हजार वर्ग कि.मी. के क्षेत्र में और ग्रामीण व शहरी जनसंख्या का प्रतिशत इन सबका कुल समंक का तुलनात्मक अध्ययन है। तुलनात्मक अध्ययन में प्रदेश के औसत मूल्य को 100 माना गया है। मध्यिका मूल्य 92.52 प्रतिशत है। बालाघाट जिले में सबसे कम औसत समंक 73.69 है तथा सर्वाधिक औसत समंक वाला जिला जबलपुर है, इनका विस्तार 67.43 तथा विस्तार गुणांक 0.31 है। इनका मानक विचलन व विचरण गुणांक 18.65 है।

निष्कर्ष :

मध्य प्रदेश में अन्तरक्षेत्रीय औद्योगिक विकास में विषमता के प्रभावों के लिए कह सकते हैं कि पिछड़े जनांकीय क्षेत्र औद्योगिक विकास में नकारात्मक प्रभाव डालते हैं।

सन्दर्भ :

1. Myrdal (Gunnar) : Economic Theory and Underdeveloped Regions, Bombay, Vora and Co., 1966, p.9, 19.
2. Murty, S. (Dr.) : Regional disparities in the economic development of Madhya Pradesh, Ujjain, Anita Prakashan, 1985, pp. 196-197.
3. झिंगन, एम.एल. : आर्थिक विकास एवं नियोजन, कोणार्क प्रकाशन, 1987, पेज 744–746.
4. पंचवर्षीय योजनाएं, पहली से दसवीं तक
5. उद्योग संवर्धन नीति, 2004.

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

वाल्मीकि रामायण में रस-योजना

❐ डॉ. रामनरेश तिवारी*
❐ डॉ. अनामिका चतुर्वेदी**

शोध सारांश

रामायण रसों की मन्दाकिनी है। श्रृंगार, वीर, करूण आदि सभी रस इस महाकाव्य में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है । सभी रसों की योजना में आदि कवि ने अपनी कुशलता प्रदर्शित की है। इनमें किस रस को प्रधान माना जाये यह एक विचारणीय विषय है, क्योंकि प्रत्येक महाकाव्य या नाटक में एक ही प्रधान रस होता है अन्य रस उसके अंगभूत होते है–

'प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धानां नानारसनिवन्धने।
एको रसोऽङ्गीकर्तव्यः तेषाभुत्कर्ष भिच्छता[1]।।

जिन प्रबन्धों में बहुत से रस एकत्रित होकर प्रतिभासित होते है, उन रसों में जिस रस का आस्वाद सर्वाधिक प्रतीत होता है, वह रस स्थायीवत् एवं अन्य संचारी के समान होते हैं।

बहूनां समवेतानां रूपं यस्य भवेद् बहुः।
स मनतव्यों रसः स्थयी शेषाः संचारिणो मता [2]।।

रामायण में प्रधान रस के निर्धारण के लिए विभिन्न आचार्यों द्वारा प्रतिपादित विचारों की विवेचना यहां आवश्यक है।

काव्य शास्त्र में प्रधान रस निरूपण

आचार्यों में रसों की संख्याके विषय में पर्याप्त मतभेद रहा है। यह संख्या 8 से 11 तक मानी गई। शान्त, वात्सल्य एवं भक्ति को, रस माना जाये अथवा नही, यह विवादास्पद विषय है।

यद्यपि सभी रस आस्वद्य होते है, अतः काव्य में समस्त रसों की महत्ता समान रूप से माननी चाहिए पुनरपि अनेक मनीषियों ने किसी एक रस का अन्य रसों की अपेक्षा अधिक महत्व प्रदान किया हैं। इनमें किसी ने श्रृंगार को सर्वश्रेष्ठ माना है तो किसी ने वीर, करूण, अद्भुत अथवा शान्त रस को प्रधान रस निरूपित किया है। भिन्न–भिन्न रसों की प्रधानता प्रतिपादित करने वाले काव्य–शास्त्रियों ने अपने–अपने कथन की प्रष्टि में

* सेवानिवृत्त अतिरिक्त संचालक, उच्च शिक्षा रीवा संभाग रीवा (म.प्र.)
** मॉडल स्कूल के सामने विश्वविद्यालय रोड, रीवा (म.प्र.)

सारगर्भित तर्क प्रस्तुत किए हैं। इनके तर्कों में अन्तर होते हुए भी साहित्य जगत् में उनकी मान्यताओं को आदर प्राप्त हुआ है। महाकाव्यों में प्रायः उन्हीं रसों की प्रधान रूप से योजना पर बल दिया गया है, जिन्हे किसी न किसी आचार्य ने रसराज सिद्ध करने का प्रयत्न किया है–

'शृंगार वीर शान्तानामेंकाऽङ्गीरस इष्यते
अङ्गाणि सर्वेऽपि रसा .....[3]।'

काव्य मे सर्वप्रथम जिसकी व्यंजना की गई हो तथा अन्त तक जिसका पुनः–पुनः अनुसन्धान किया गया हो ऐसे स्थायी रूप से भाषित होने वाले रस को आनन्दवर्धन ने अंगी (प्रधान) रस माना है–

'प्रबन्धेषु प्रथमतरं प्रस्तुतः सन् पुनः पुनरनुसंधीयभानत्वेंन स्थायी यो रसस्तस्य सकलसन्धिव्यापिनों रसान्तरैरत्न रालवतिभिः समावेशो यः स नांगितामुपहन्ति [4]।।

प्रधानता एवं अप्रधानता का विचार करते समय एक दृष्टिकोण यह भी रहा है कि कुछ रस तो मूलरूप है तथा अन्य उन रसों से उत्पन्न हैं। इनमें मूलरूप से विद्यमान रहने वाले रस प्रधान तथा उनसे उत्पन्न रस अप्रधान माने गए हैं।

आचार्श भरत ने इस विषय में सर्वप्रथम विचार किया है। भरत के अनुसार शृंगार रौद्र, वीर तथा वीभत्स ये चार रस क्रमशः हास्य, करुण, अद्भुत तथा भयानक रस के जनक होते है–

'शृंगाराद्धि भवेद्धास्यों रौद्रच्च करूणों रसः।
वीराच्चैवाद् भुतात्पत्ति बीभत्साच्च भयानकः[5]।

इसका आशय यह है कि शृंगार, रौद्र, वीर और वीभत्स रस प्रधान है, तथा वीभत्स रस प्रधान है, तथा हास्य, करूण, अद्भुत और भयानक रस प्रवधान है। भरतमुनि के इस विवेचन का आधार चितवृत्तियाँ है। अतः करूण में अनादि–काल से संचित वासनाओं या संस्कारों को वर्गीकृत करके स्थायी भावों क नाम दिए गए हैं। अतः रसास्वाद के समय चितवृत्ति की विभिन्न अवस्थाओं के आधार पर रसों की प्रधानता स अप्रधनता निर्धारित की गई हैं–(1) विकास, (2) विस्तार, (3) क्षोभ और (4) विक्षेप। शृंगार के अनुभाव के समय विकास, वीर रस के अनुभव के समय विस्तार, वीभत्स की अनुभूति के समय क्षोभ तथा रौद्र–रस की अनुभूति में विक्षेपावस्था होती है। अतः इन चार रसों को प्रधान मानना चाहिए। अन्य चार इन्ही से उत्पन्न होते हैं। ऐसा धनंजय का मत है–

स्वादः काव्यार्थ संदादात्मानन्द समुद्भवः।
विकास विस्तरक्षोभ विक्षेपैः स चतुर्विधः।।
शृंगार वीर वीभत्स रौदेषु मनसः त्रमात्
हास्याद्भुत भयोत्कर्श कयणानां त एव हि
अतस्तज्जन्यता तेषामत एववधारणम् [6]।।

इन समस्त रसों में साहित्य की सुदीर्घ परम्परा में शृंगार को सर्वोपरि स्थान प्राप्त हुआ, संस्कृत में जितने भी महाकव्य एवं नाटकादि का निर्माण हुआ है, प्रायः उन सभी में शृंगार एवं वीर को कवियों ले प्रधान रस के रूप में स्वीकार किया है, किन्तु रौद्र अथवा वीभत्स को प्रधान रस मानकर प्रायः काव्य–रचना नही की गयी हैं। हां, करूण को प्रधान रस मानकर अनेक कवि काव्य रचना में प्रवृत्त हुए हैं। शान्त रस को भी महत्व प्राप्त हुआ हैं। यहां तक कि अनेक सुधी समीक्षक महाभारत को शान्त–रस प्रधान महाकाव्य ही मानते है–

कतिपय आचार्य मूल रस किसी एक को ही मानते है, तथा अनय रसों का उद्भव उसी से प्रतिपादित करते हैं। इस सम्बन्ध में चार आचार्यों के विचार अधिक महत्वपूर्ण हैं।

आचार्य भोज के अनुसार शृंगार ही समस्त रसों में प्रधान रस है। वही सबका एकमात्र मूल है। रस के कारण ही कविता सरल बनते है। और इस रस को शृंगार कहा जाता है। इसका स्व अभिमान और अहंकार जैसा होता है।

रसोऽभिमानोंऽहंकारः श्रृंगार इति गीयते।
योऽर्थस्तस्तस्न्यान्वयात् काव्यं
कामनीयष्वभरनुते[7]।।

भरत

रस–सिद्धांत के प्रथम आचार्य भरत ने भी श्रृंगार रस की प्रधानता प्रतिपादित करते हुए कहा है–

यत् किचिल्लोके शुचि मेध्यं ।
दर्शनीयं वा तच्छुं गारेणोपमीयतें [8]

अर्थात् संसार में जोकुछ दर्शनीय अर्थात् सुन्दर है, साथ ही पवित्र, उत्तम और उज्जवल है, वह श्रृंगार रस कहा जा सकेगा। श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति अर्थात् प्रेम है, जो जन्म से ही न केवल मनुष्यों में अपितु प्राणीमात्र में विद्यमान रहता है। सर्वाधिक व्यापकता के कारण ही इसे रसराज की उपाधि से विभूषित किया गया है। श्रृंगार की प्रधानता का प्रबल आधार यह भी है कि आचार्यों ने श्रृंगार रस का जितना विस्तुत विवेचन कि है उतना अन्य किसी भी रस का नहीं किया है।

विश्वनाथ ने 'साहिव्य दर्पण में अपने प्रापितामह नारायण का उल्लेख करते हुए 'अद्भुत रस की प्रधानता प्रतिपादित की है। अद्भुत रस की प्रधानता करते हुए नारायण पंडित ने कहा सर्वत्राप्यद्भुतो रसः अर्थात् ही मूल और एकमात्र रस है। विश्वनाथ ने अपने पूर्ववर्ती विद्वान् धर्मदत्त के आधार पर कहा है–

रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्रप्यनु भूयते,
तच्चमत्कार सारत्वे सर्वत्राप्यद्भुतो रसः।
तसमाददद्भृतमेवाह कृति नरायणों रसम्[9]

आचार्य विश्वनाथ ने अद्भुत रस की श्रेष्ठता का उल्लेख तो किया है, किन्त वे स्वयं इसको प्रधान रस के रूप में स्वीकार करते प्रतीत नही होते है। दर्पणकार ने महाकाव्य का लक्षण निरूपित करते हुए श्रृंगार अथवा वीर को ही प्रधान रस माना है–

एक एव भवेदंगी श्रृंगारः वीर एव व[10]

अद्भुत रस को अंगी रस मानकर कोई काव्य रचना भी नही हुई है।

अभिनव गुप्त

अभिनव ने शान्त रस को मूल रस मानकर इसकी प्रधानता निरूपित की है। वे अपना अभिमत इस प्रकार प्रकट करते है–

स्वं स्वं निमितभासाद्य शान्तद् भावः प्रवर्तते प्रवर्तते।
पुनिनमित्तापाये च शान्त एवोपलीयते[11]

अभिनव गुप्त का विचार है कि शान्तरस का सम्बन्ध मानव जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष से है, क्योंकि सभी प्रकार के काव्यों का आस्वादन अलौकिक तथा ब्रह्म स्वाद के समान होता है शान्त रस इसको अभिव्यंजित करता है, अतः शान्त रस को ही सबसे प्रमुख रस मानना चाहिए।

महाकवि भवभूति

भवभूति के अनुसार करूण ही एकमात्र रस है, उसी के आश्रय से विभिन्न रसों की अभिव्यक्ति होती है–

'एको रसः करूण एव निमित्त भेदाद्,
भिन्नः पृथक्ः पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आर्क्ववुद्बुदत रंगाभयाान् विकारान्,
अम्भो यथा सलिलमेच ही तत्समस्तम्।।[12]

सभी विद्वान समीक्षक एकमत से यह स्वीकार करते है कि रामायण का आत्मत्वाधायक तत्व रस है। आदिकवि ने विभिन्न प्रसंगों में प्रायः सभी रसों की योजना सुन्दर रूप में की है। किन्तु इस महाकाव्य का प्रधान–रस किसे माना जाये यह विवाद का विषय है। प्राचीन काव्यशास्त्रियों ने तथा कालिदास, भवभूति आदि महाकवियों ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से करूण–रस की प्रधानता

प्रतिपादित की हैं। राम कथा–साहित्य के कतिपय अध्येताओं ने रामायण को वीर–रस प्रधान महाकाव्य माना है। अपने मत की पुष्टि में उन्होंने जो तर्क दिए है। उनका सार इस प्रकार है।

1. उत्तर–काण्ड प्रक्षिप्त है, अतः उत्तरकाण्ड की घटनाओं के आधार पर करूण रस की प्रधानता नहीं मानी जा सकती।

2. क्रौंचवध का प्रसंग भी संदिग्ध है और केवल उसके आधार पर करूण रस को प्रधान नहीं माना जा सकता।

3. राम के एवं अधिकांश पात्रों के वीर चरित्र एवं रावण वध की घटना के आधार पर इसका प्रधान–रस वीर ही है।

4. बालकाण्ड में यह उल्लेख किया गया है कि प्रारम्भ में इस महाकाव्य का नाम पौलस्य वध रखा गया। इस आधार पर रामायण का प्रधान रस वीर को ही मानना चाहिए।

5. भारतीय महाकाव्यों का विशेष अध्ययन करने वाले विद्वानों ने युग और वातावरण के आधार पर रामायण और महाभारत को वीर युग का प्रतिनिधि महाकाव्य माना है।

6. रामायण में ऐतिहासिक तत्वों की प्रचुरता भी यही प्रकट करती है कि उसमें वीर– रस की प्रधानता है रवीन्द्रनाथ टैगोर ने रामायण में शान्त रस को ही प्रधान माना है 'रामायण में बाहुबल को नहीं, जिगीषा को नहीं, राष्ट्रगौरव को नहीं, केवल शान्त रसास्पद गृहस्थ धर्म को ही, करूणा के अश्रुजल से अभिषिक्त कर महान शौर्य–वीर्य के ऊपर प्रतिष्ठित किया है।

यहाँ पर टैगोर ने काव्य शास्त्रीय दृष्टि से निरूपित शान्त रस को प्रधान नहीं माना है, अपितु समग्र महाकाव्य के अध्ययन से जो जीवनोपयोगी नैतिक शान्ति प्राप्त होती है, उसकी ओर संकेत किया है। कुछ विद्वान रामायण में भक्ति रस की प्रधानता मानते हैं। इस विषय में के. आर. शास्त्री के विचार इस प्रकार हैं– इस प्रकार रामायण में किसी ने करूण को तो किसी ने वीर, शान्त अथवा भक्ति रस को प्रधान रस माना है। अब विचारणीय हो जाता है इन चार रसों में किस रस को रामायण का प्रधान रस माना जाए। शान्त अथवा भक्ति रस इस महाकाव्य के प्रधान रस कदापि नहीं माने जा सकते। शान्त अथवा भक्ति रस के पक्ष में कोई प्रबल आधार नहीं है तथा स्वयं बाल्मीकि ने भी कहीं ऐसा संकेत नहीं किया है।

दूसरी बात यह है कि रामायण काल तक शान्त अथवा भक्ति रस का कोई सुनिश्चित स्वरूप प्राप्त नहीं होता है। ऐसी अवस्था में ये रस प्रधानता को प्राप्त नहीं कर सकते। इतना अवश्य मानना होगा कि रामायण में यत्र तंत्र शान्त–रस की रमणीय योजना आदिकवि ने की है। साथ ही इस महाकाव्य में भक्ति का उज्जवल स्वरूप भी दृष्टिगोचर होता है। रसराज श्रृंगार भी इस महाकाव्य का प्रधान रस नहीं हो सकता, कारण यह किसी विलसी कवि की रचना नहीं हैं। अपितु शान्तात्मा महर्षि की वाणी से करूणा निधान राम के पावन–चरित का सहज उच्छलन है। वीर–रस को प्रधान रस सिद्ध करने के लिए जो युक्तियां दी गई है, उनके आधार पर इस महाकाव्य का प्रधान रस वीर नहीं माना जा सकता। क्योंकि

1. रामायण का उत्तर काण्ड प्रक्षिप्त है यह अद्यावधि विवादास्पद विषय है। सभी विद्वान इसको प्रक्षिप्त मानने के पक्ष में नहीं है। अतः इस काण्ड को प्रक्षिप्त मानकर करूण रस की प्रधानता को नकारा नही जा सकता।

2. कौचवध का प्रसंग संदिग्ध नहीं माना जा सकता, कारण कि इसके लिए कोई स्पष्ट आधार नहीं दिया गया है तथा आनन्दवर्धनादि आचार्यों ने क्रौंचवध के प्रसंग को प्रमाणिक माना है।

3. राम एवं अन्य पात्रों के वीरतापूर्ण कार्यों के आधार पर भी इसे वीर–रस प्रधान नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनकी वीरता करूणा से उद्‌बुद्ध है।

4. ऐतिहासिक तत्वों की प्रचुरता होना कोई ऐसा आधार नहीं जो इस काव्य में वीर रस प्रधानता प्रमाणित कर सकें।

5. बिरही राम के हृदय में समय –समय परी युद्ध का उत्साह तरंगिता होता है। यह सत्य है किन्तु इस उत्साह के मूल में भी करूणा ही है।

राक्षसराज की कारा में वन्दिनी सीता को मुक्त कराना तथा असुरों को अत्याचारों से संत्रस्त्र वसुध का उद्धार राम का मुख्य लक्ष्य है। प्रधान रस का निग्रय करते समय अन्तः साक्ष्य के अन्तर्गत हमें यह भी देखना होगा कि इस विषय में कवि में का क्या मत है–

आदिकवि ने अपने महाकाव्य का प्रेरणा स्त्रोत करूणा को माना है। तमसा वट पर विचरण करते हुए महर्षि ने व्याध द्वारा कामासक्त क्रौंचयुगल में से नर पक्षी का निर्मम वध होते हुए देखा तो उनके शोकाकुल हृदय से ही मानों यह श्लोक फूट पड़ा था–

'मा निषाद। प्रतिष्ठां त्वभगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।[13]

महर्षि ने स्वयं अपने शिष्यों से कथा में–

पादवद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलय समन्वितः।
शोकार्स्तस्य प्रवृतो में श्लोकां भवतु नान्यथा।।[14]

और वस्तुतः महर्षि क अन्तः कारण का यह ही शोक ही श्लोक रूप हो गया –

'शोकः श्लोकत्व भगतः'।[15]

बहिःसाक्ष्य के अन्तर्गत अन्य काव्याचार्यों तथा विद्वान समीक्षकों का भी यही विचार है।

आनन्दवर्धन ने रामायण में करूण रस की प्रधानता मानी है। ध्वनि–तत्व की विवेचना करते हुए वे इसकी पुष्टि इस प्रकार करते हैं–

काव्यस्यात्या स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा,
क्रौचद्वन्द्वीयौगौत्थः शोकः श्लोकत्वभागतः।'[16]

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं–तथा चादिकवेबाल्मीकि निहत सहचर विरह कातर क्रौच्यात्रनन्दज नितः शौक एवं श्लोकतया परिणत। दशरूपक में करूण रस की सुखात्मकता प्रतिपादित करने हुए धनिक ने अपनी टीका में रामायण को करूण रस प्रधान महाकाव्य माना हैं– यदि च लौकिककरूणवद् दुःखत्मक मेवेह सयातदा न कश्चिद प्रवर्तेत ततः करूणैकरसानां रामायणादि महाप्रबन्धा नामुच्छेद एव भवेत्।

विश्वनाथ ने भी करूणादि रसों की सुखात्मकता निरूपित करते हुए रामायण का प्रधान रस करूण ही माना है। उनका मत है कि यदि करूणादि को दुःखात्मक मान लें, तब रामायणादि महान् काव्य अथवा नाटय् ग्रन्थों को दुःखदायी मानना रामायणादि काव्य–प्रबन्ध अथवा नाट्य प्रबन्ध सबके लिए रसात्मक–आन्नद–निष्यन्दी प्रबन्ध है। इन प्रबन्धों का जो रस है, वह करूण है। अब यदि करूण को दुखात्मक मान लिया जाये, तब तो यह भी मानना पड़ेगा कि करूण रस प्रधान रामायणादि प्रबन्ध सहृदय समाजिक के लिए दुःखात्मक प्रबन्ध हैं।

करूणादावपि रसे जायते यत्परं सुखम्
सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम्।
किंच तेषु यदा दुःखं न कोअपि स्यात्तदुन्मुखः
तधा रामायणादीनां भविता दुःखहेतुता।।[17]

महाकवि कालिदास ने भी आदि कवि की प्रेरणा का स्त्रोत शोक को मानते हुए प्रकारान्तर से रामायण को करूण रस प्रधान महाकाव्य माना है।

निषाद विद्याण्डज दर्शनोत्थः
श्लोकत्वमापद्यत यस्तशोकः।[16]

नादककार भवभूति ने रामायण को करूण रस प्रधान महाकाव्य मानकर अभी के आधार पर करूण रस प्रधान नाटक उत्तररामचरितम्' की रचना की है। विद्वान् चिन्तक के. आर. शास्त्री ने भी रामायण में करूण रस की प्रधानता अंगीकार की है– काव्य के

प्रारम्भ से अन्त तक जिसका विस्तार किया गया हो एवं अन्य सभी रस जिसको पुष्ट करते हों ऐसेरस को ही प्रधानता प्रदान की जा सकती है। इस दृष्टि से विचार करने पर भी करूण को ही इस महाकाव्य का प्रधान रस मानना होगा। संपूर्ण रामायणी कथा करूण के क्रोध में ही क्रीड़ा करती हुई प्रतीत होती है। वीर, श्रृंगार आदि अन्य रसों की धरायें भी अन्ततों गत्वा करूण में ही विलीन हो जाती है।[17]

रामायण के पात्र एक और वीरता के प्रतीक है, तो दूसरी ओर उनके ह्रदय करूणा से ओत–प्रोत है, सभी के अन्तःकरण आंसुओं से गीले है। संभवतः इसे काव्य का कोई पात्र ऐसा नहीं है, जो किसी न किसी अवसर पर जी भर कर न रोया हो। रामायण के अध्येता को सर्वत्र करूणा का साम्राज्य दृष्टिगोचर होता है। करूणा कवि के अन्तःकरण की मूल भावना है अतः करूण रस की योजना करते समय वह भाव–सरिता में डूब जाता है। ऐसे अवसरों पर वह चेतना चेतन जगत् को शोकमय बना देता है।[18]

जो विद्वान् केवल युद्ध काण्ड के आधार पर इस काव्य को वीर रस प्रधान मानते हैं, उनका मत कदापि ग्राह्य नहीं हो सकता। किसी भी काव्य के प्रधान रस का निर्णय उस रचना के एक अंग को आधार मानकर नहीं किया जा सकता, अपितु उस काव्य के समग्र कलेवर को दृष्टिपथ में रख कर ही करना होगा और सम्पूर्ण रामायण का अध्ययन करने परी करूण ही इस महाकाव्य का रामायण के प्रधान रस निर्धारण करते समय यह भी ध्यातव्य हो जाता है कि उस समय तक महाकाव्यादि की रचना का कोई शास्त्रीय स्वरूप निर्धारित नहीं हुआ था, जिसको आधार मानकर महाकाव्य रूपी प्रासाद का निर्माण किया जाता है।[19] अतएव परवर्ती कालिदास, भवभूति आदि कवियों का प्रधान रस श्रृंगार, करूण आदि जिस प्रकार स्पष्ट रूप से प्रतिभासित होता है, ऐसी स्थिति रामायण में करूण रस की नहीं है। इसका एक अन्य कारण यह भी है कि बाल्मीकि किसी शास्त्रीय मर्यादा में नियन्त्रित होकर काव्य रचना में प्रवृत नहीं हुए अपितु वे स्वतंत्र रूप से प्रसंगानुकूल रस अलंकार आदि का प्रयोग करते हैं।

यद्यपि रामायण में प्रधान रस का अधिकारी कौन है? इस प्रश्न का उपस्थित होना ही यह सिद्ध करता है कि कवि ने करूण एवं अन्य वीरादि रसों की योजना में इतना स्पष्ट अन्तर नहीं किया है कि इसे तत्क्षण करण इस प्रधान कहा काव्य घोषित किया जा सके। तथापि उपयुक्त युक्तियों, अन्तः साक्ष्यों एवं बहिःसाक्ष्यों से यह सिद्ध हो जाता है कि करूण रस ही इस महाकाव्य का प्रधान रस है वही इसका प्राण है और सर्वस्व है।

संदर्भ स्रोत

1. ध्व. 3/66
2. ध्व. पृ. 397
3. सा. द. 6/316
4. ध्व. पृ. 336
5. ना.शा. 6/39
6. द. रू. 4/43–45
7. द नम्बर आफ रसाज, पृ. 16
8. स. कं. 5/9
9. ना. शा. पृ. 3000
10. ना. शा. पृ. 3000
11. उ. रा. च. 3/46
12. प्राचीन साहित्य (हिन्दी अनुवाद) पृ. 6
13. स्टडीज इन रामायण पृ. 125
14. वा. रा. बालकाण्ड 2/15
15. वा.रा. बालकाण्ड 2/18
16. वा. रा. बालकाण्ड 2/40
17. ध्व. 1/5
18. ध्व. पृ. 30
19. द. रू. 4/44–45 पृ. धनिक की टीका

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

वर्तमानकालिक सन्दर्भ में 'राष्ट्रीयता एवं राजनैतिक चेतना'

❒ अंजना कुमारी

शोध सारांश

व्यक्ति की अपने देश के प्रति अपार भक्ति–भावना ही राष्ट्रीयता है। राष्ट्रीयता तो देशभक्ति से कहीं अधिक व्यापक और विशाल है। राष्ट्रीयता की परिभाषा अनेक विद्वानों ने अपने–अपने मतानुसार इस प्रकार दी है–

***डॉ0 विद्यानाथ गुप्त** के अनुसार–''राष्ट्रीयता वास्तव में मन की अवस्था मात्र है। वह व्यक्ति की राष्ट्रीयता को सूत्रों की श्रेणी में तभी बांधती है, जब उसका ऐसे जन समूह से एकत्व हो जाता है, जिसका रहन–सहन, रीति–रिवाज, संस्कार तथा अन्य जीवन की समस्याएं तथा बंधन उसी के समान हो।'' **डॉ0 गणपतिचन्द्र गुप्त** के अनुसार–''राष्ट्रीयता का स्फुटन प्रायः ऐसे अवसरों पर होता है, जब समस्त राष्ट्र का सामूहिक रूप से किसी अन्य राष्ट्र से संघर्ष हो।'' इस परिभाषा के अनुसार जनता में राष्ट्रीयता की भावना का जागरण तभी होता है, जब उसका संघर्ष किसी अन्य राष्ट्र से चल रहा हो। उसी समय देशवासी डटकर विपत्ति का मुकाबला करते हैं। हम यही कह सकते हैं कि राष्ट्रीयता का सम्बन्ध देश, राष्ट्र के कल्याण से जुड़ा होता है।*

जैसे–जैसे मनुष्य का विकास हुआ, वैसे ही वह अपने परिवेश से लगाव महसूस करने लगा। उसके मन–मस्तिष्क में यह विचारधारा उत्पन्न हुई कि धरती ही उसकी जीवनदायिनी और वास्तविक रक्षक है। जब इस भाव को एक वर्ग–विशेष ने ग्रहण किया, तब से राष्ट्र या देश का अस्तित्व प्रकट हुआ और धीरे–धीरे उसका विकास हुआ। अतः मनुष्य धरती मां (अपने परिवेश) की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध हुआ। देश के प्रति श्रद्धा, भक्ति, प्रेम और विनय का भाव ही वास्तव में राष्ट्रीयता है। इसके बिना न तो किसी सार्वभौम और प्रभु सत्ता–सम्पन्न राष्ट्र का जन्म हो सकता है और न राष्ट्रीयता का।

जिस प्रकार प्रेम और भक्ति की भावना सभी प्रकार के भेदभावों और वैयक्तिक स्वार्थों से ऊपर होते है, उसी प्रकार राष्ट्र और राष्ट्रीयता की भावनाएं भी सर्वोपरि होती है। राष्ट्रीयता की भावना से अनुप्राणित होकर ही भारत ने कड़े संघर्ष के पश्चात् 15 अगस्त 1947 को अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतन्त्रता प्राप्त की। भारत ही नही, अमेरिका, चीन, इटली,

* शोध छात्रा –हिन्दी विभाग, द्रिवेडियन विश्वविद्यालय कूप्पम (आन्ध्र प्रदेश), पंजीयन संख्या–3909229003

इंडोनेशिया आदि विश्व के अनेक देशों ने अपनी पराधीनता की बेडियां तोड़कर स्वाधीनता प्राप्त की, जो राष्ट्रीयता का ही परिणाम था। आज ये देश प्रगति के पथ पर अग्रसर हैं।

राष्ट्रीय चेतना या राष्ट्रीयता वर्तमान युग की आवश्यकता एवं अनिवार्यता है। अन्तर्राष्ट्रीय और विश्व–बन्धुत्व की भावना व परिकल्पना राष्ट्रीय चेतना की स्वस्थ अनुभूति में अन्तर्निहित है। राष्ट्रीयता के स्वरूप में देश सर्वोपरि है। इसमें देश–देश के बीच सह–अस्तित्व की दृष्टि प्रखर बनी रहती है। विश्व के सभी राष्ट्रो में परस्पर विश्वास, सहयोग की भावना ही राष्ट्रीयता का आधार है। राष्ट्रीयता का महत्व गुटों की राजनीति के वात्याचक्र ने और भी बढ़ा दिया। अब विश्व का कोई भी राष्ट्र सच्ची आत्मनिर्भरता का उपयोग करने की स्थिति में नहीं है। ऐसी स्थिती में संबल और उन्नत राष्ट्र अपने–अपने प्रभाव के विस्तार की धुन से अपेक्षाकृत गरीब और निर्धन राष्ट्रों के अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया है। ऐसी दशा में भारत के लिए भी अपनी स्वतन्त्रता और अखंडता की रक्षा समीचीन है। देश पर मंडरा रहे संकट के बादलों को काई की तरह फाड़ने के लिए देशवासियो में राष्ट्रीयता की प्रबल तरंगों का उद्वेलन आज के युग में उत्पन्न परिस्थितियों की सबसे पहली शर्त है। इसी प्रसंग में प्रख्यात बालगीतकार डॉ0 राष्ट्रबन्धु का प्रयास अनुकरणीय है, जिन्होंने राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत बालकाव्य की रचना की है। उनके बालकाव्य द्वारा बच्चों में प्रबल राष्ट्रीय भावना के अध्ययन से पूर्व हम 'राष्ट्रीयता' के अर्थ, परिभाषा एवं स्वरुप के बारे में विस्तार से जानेंगे।

'राष्ट्रीयता' का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरुप– समाज के वर्तमान रुप में राष्ट्रीयता का अभिप्राय कुछ बदल गया है। अतीत में केवल देशभक्ति ही राष्ट्रीयता का पर्याप्त थी, परन्तु आज इस विचारधारा में काफी परिवर्तन आ गया है। जब व्यक्ति में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल होती है, तब वह राष्ट्र के समस्त तत्त्वों से प्रेम करता है। वर्तमान को ही नही, अतीत को भी प्रेम और श्रद्धा की दृष्टि से देखता है और भविष्य के प्रति चिन्तित रहता है।

राष्ट्र के प्रति तीव्र अपनत्व तथा ममत्त्व की भावना से राष्ट्रीयता का जन्म हुआ और आज राष्ट्रीयता एक प्रबल शक्ति एवं प्रभावशाली प्रेरणा है। पराधीन से स्वाधीन हुए राष्ट्रों के अनुभवों से यह देखा जा सकता है कि इस भावना ने अपूर्ण कार्य किया है। राष्ट्रीयता की भावना व्यक्ति को अपने राष्ट्र के लिए उच्च कोटि के शौर्य और बलिदान के लिए प्रेरणा देने वाली सामूहिक भावना की एक उच्चतम अभिव्यक्ति है। इस भावना का संसार के इतिहास–निर्माण में बहुत बड़ा योगदान है।

भारत में राष्ट्रीयता की भावना विदेशी प्रभुत्व के विरोध में प्रस्फुटित हुई। यहाँ के राष्ट्रीयता के विकास का इतिहास भारतीयों के स्वराज्य प्राप्ति के लिए विदेशी शासकों से संघर्ष का इतिहास है। भिन्न–भिन्न लोगों के साधन भिन्न–भिन्न थे, लेकिन सबका लक्ष्य एक ही था। लक्ष्य की एकता व देश के प्रति अपार भक्ति, श्रद्धा के स्पष्ट हो जाने से क्रमशः भारतीय शब्द का विकास हुआ। राष्ट्रीयता को अधिक स्पष्ट रूप से जानने के लिए हमें 'राष्ट्रीयता के अर्थ, परिभाषा एवं स्वरुप का अध्ययन करना होगा।

राष्ट्रीयता का अर्थ–'राष्ट्रीयता' शब्द 'राष्ट्र' का ही विकसित रुप है। राष्ट्रीयता राष्ट्र की आत्म–चेतना है। राष्ट्रीयता का प्रत्यक्ष सम्बन्ध राष्ट्र से होता है। यह एक ऐसी भावना है, जो राष्ट्र के प्रति अपनत्व की भावना पर आधारित होती है। अतः 'राष्ट्रीयता' के अर्थ को जानने से पहले हमें 'राष्ट्र' शब्द का अर्थ जानना है। 'राष्ट्र' शब्द अंग्रेजी के 'नेशन' का पर्याय है। 'राष्ट्र' शब्द के हिन्दी में भी अनेक समानार्थक शब्द प्रचलित हैं– प्रांत, राज्य, देश आदि।

गिल क्राइस्ट के विचारानुसार–''नेशन' शब्द की व्युत्पति लेटिन शब्द नेट्स से हुई है, जिसका अर्थ है– जन्मा या उत्पन्न हुआ।'' प्राचीन संस्कृत काव्यों में, 'राष्ट्र' शब्द का अर्थ परिवर्तित हो चुका है। डॉ0 सुधीन्द्र ने राष्ट्र की परिभाषा इस प्रकार की है, ''राष्ट्र का आधार एक निश्चित भू–भाग होता है, जिसके कारण ही 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की भावना जन्म लेती है। सच तो यह है कि भूमि (भौगोलिक एकता) भूमिवासी जन (जनगण की राजनैतिक एकता) और जन–संस्कृति (सांस्कृतिक एकता), तीनों के सम्मिलन से ही राष्ट्र का सृजन सम्भव होता है।'' अब हम जानेंगे कि 'राष्ट्रीयता' का क्या अर्थ है। स्पष्ट है कि राष्ट्र पांच अवयवों से बनता है– भौगोलिक देश, जाति, धर्म, संस्कृति और भाषा, इन पांचो अंगो की एकता दृढ़ करना राष्ट्रीयता कहलाता है, वही राष्ट्रीय है। राष्ट्रीयता की यही भारतीय विचारधारा है।

राष्ट्रीयता का अर्थ है– राष्ट्र सम्बन्धी भावना। यह शब्द अंग्रेजी भाषा के 'नेशनालिटी' का पर्याप्त है। राष्ट्रीयता एक राजनैतिक संकल्पना है, जैसे एक व्यक्ति अपने परिवार कि प्रति अपनापन रखते हुए उसी के प्रति समर्पित होता है; उसके विकास के लिए हर सम्भव प्रयास करता है, उसे प्रगति के पथ पर बढ़ाना चाहता है। उसी प्रकार एक जन–समुदाय अपने राष्ट्र से पूरे समाज की तथा पूरा समाज अपने भूखंड या राष्ट्र की व्यवस्था के लिए उसे सदा उन्नत तथा समृद्धिशाली रखने को उत्सुक रहता है। यह लगााव और चिन्ता ही राष्ट्रीयता अर्थात् राष्ट्रीय चेतना की प्रतीक है। इसी भावना के आवेग में उन्मत्त व्यक्ति अपने राष्ट्र के कल्याण के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने में तथा अपना जीवन तक सहर्ष अर्पण कर देने में अपना गौरव समझता है। जिस राष्ट्र की यह चेतना जितनी अधिक बलवती होगी, वह उतना ही समृद्ध व शक्तिशाली माना जाएगाा।

जब कोई देश दूसरे देश के अधीन होता है, उस देश के लोगो में राष्ट्रीयता का स्वरुप देखने को मिलता है। स्वतन्त्रता के प्रति यह उग्ररुप ही राष्ट्रीयता है। जिस प्रकार सन् 1957 ई0 की क्रान्ति में भारतीयो में राष्ट्रीयता का उग्ररुप दिखाई दिया। देश–भक्तों ने अपनी जान की बाजी लगाकर स्वतन्त्रता का जो बिगुल बजाया था, वह राष्ट्रीयता का शुद्ध व साकार रुप नहीं, तो और क्या था ? अंग्रेजी शासन के खिलाफ भारत की संगठित राष्ट्रीयता की भावना का वह प्रमुख शंखनाद था। अतः राष्ट्र के प्रति प्रेम व अपनेपन की भावना से राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। यह एक अमूर्त वस्तु है, जो मानसिक तत्त्वों पर आधारित है।

प्राचीनकाल में राष्ट्रीयता की कोई स्पष्ट धारणा नहीं बन सकी, क्योंकि उस समय राष्ट्र को देश, जनपद का पर्याय माना गया था। वैदिककाल से ही भारत में धरती और मानव का सम्बन्ध माता व पुत्र के समान माना गया है। इसकी रक्षा व उन्नति करना ही हमारा परम कर्तव्य है। यही भावना राष्ट्रीयता का पर्याय है। राष्ट्रीयता का सम्बन्ध तो आंतरिक होता है। इसका कार्य व्यापकरुप से समाज में चलता है। यह एक ऐसी भावना है, जो हमें जन्म के समय ही प्राप्त होती है। व्यक्ति स्वार्थ से ऊपर उठकर देश के भले के लिए सोचता है व संकट आने पर देश के सदस्य एक होकर सभी भेदभाव भुलाकर सतत् संघर्ष के लिए तैयार रहते हैं। किन्तु सनद् रहे, यह राष्ट्रीयता दूसरे राष्ट्रों के लिए विनाशक नहीं होनी चाहिए, क्योंकि मानव–हित देश तक सीमित नहीं है।

'राष्ट्रीयता' की परिभाषा–लोकमान्य गंगाधर तिलक ने तो भारतीयता को अर्थात् राष्ट्र को धर्म से ऊँचा स्थान प्रदान किया है। उन्होने, राष्ट्र के साथ

ईश्वर का तादात्म्य स्थापित करते हुए, कहा है–''ईश्वर तथा हमारा राष्ट्र एक–दूसरे से भिन्न नहीं हैं। संक्षेप में, हमारा देश ईश्वर का ही रुप है।''

स्वामी रामदेव मानते है कि मनुष्य को सभी वादों से ऊपर उठकर राष्ट्रवादी होना चाहिए। उनके शब्दों में, ''हमें इन सब आतंकवाद, माओवाद, लेनिनवाद, मार्क्सवाद, जातिवाद आदि सबसे ऊपर उठकर केवल राष्ट्रवादी होना चाहिए। मैं कभी किसी हिन्दू, मुस्लिम या सिक्ख को पहचान कर योग नहीं सिखाता। मैं इन्सान हूं। हम सब इन्सान हैं, लेकिन इससे भी पहले मैं भारतीय हूं। भारतीयता मेरा धर्म है और यह धर्म ही मेरी राष्ट्रीयता है।''

डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सभी परिभाषाओं का संक्षिप्त साररुप इस प्रकार दिया है–''प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का अंश है और इस राष्ट्र की सेवा के लिए, उसको धन–धान्य से समृद्ध बनाने के लिए इसके प्रत्येक नागरिक को सुखी व सम्पन्न बनाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सब प्रकार के त्याग और कष्ट स्वीकार करने चाहिए।''

अतः देश का प्रत्येक नागरिक देश की सुरक्षा, समृद्धि के लिए मर मिटने को हमेशा तत्पर रहता है। द्विवेदी जी के अनुसार जब मनुष्य देश के विकास में सर्वस्व न्योछावर करे, वहीं सच्ची राष्ट्रीयता है, जिसे हम अपने दिल में अनुभव कर सकते है।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी 'राष्ट्रीयता' पर अपने–अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं। वर्गस के अनुसार–''राष्ट्रीयता किसी राज्य में रहने वाली सम्पूर्ण जनसंख्या का एक विशेष अल्पसंख्यक समुदाय है, जो सामाजिक एवं नस्ल के आधार पर संगठित है।''जे0एच0 रोज कहते हैं कि ''राष्ट्रीयता तब तक प्रौढ़ता को प्राप्त नहीं करती, जब तक वह जाति पर निर्भर रहती है।''

वर्गस और रोज की धारणा राष्ट्रीयता का संकुचित रुप दर्शाती है। राष्ट्रीयता की भावना केवल अल्पसंख्यक समुदाय में ही नही पाई जाती, बल्कि यह भावना बहुसंख्यक समुदाय में भी पाई जाती है। गिल क्राइस्ट 'राष्ट्रीयता' को आन्तरिक भावना मानते हुए उसकी उत्पत्ति ऐसे लोगों से बताते हैं, जो सामान्यतः एक ही जाति तथा स्थान से सम्बन्ध रखते हों। जिनकी भाषा, धर्म, इतिहास, आचार–विचार तथा रुचियां सामान्य हों तथा समान राजनीतिक संगठन से संगठित हों।

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने–अपने दृष्टिकोण के अनुसार 'राष्ट्रीयता' को परिभाषित किया है, लेकिन इन परिभाषाओं के आधार पर कोई सर्वमान्य परिभाषा बन पाना अति कठिन कार्य है। फिर भी, निष्कर्ष रुप में हम कह सकते हैं कि समान चेतना वाले व्यक्तियों को ऐसा समूह, जो इतिहास, परम्परा, भाषा, भूगोल, संस्कृति से एकमत होकर जीवनयापन करे, वह 'राष्ट्र' कहलाता है, उसकी चेतना 'राष्ट्रीय' होती है और उनका जीवन–सिद्धान्त 'राष्ट्रीयता' होता है।

'राष्ट्रीयता' का स्वरुप–'राष्ट्रीयता' का स्वरुप देशकालानुसार संकुचित एवं विस्तृत होता रहता है। राष्ट्रीय एकता के लिए राजनीति विशारदों ने कतिपय तत्वों की अनिवार्यता सिद्ध की है। यद्यपि परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ–साथ किसी तत्व का महत्व न्यूनाधिक अवश्य हो जाता है, किन्तु वह पूर्णतः महत्व–शून्य नहीं होता, क्योंकि प्रत्येक तत्व की अपनी विशेषता होती है। बीसवीं शताब्दी में अनेक ऐसे महान विचारक हुए है, जिन्होंने राष्ट्रीयता की व्याख्या विश्व–प्रेम के संदर्भ में की है। उनमें सबसे अग्रणी भूमिका में महात्मा गांधी का नाम लिया जा सकता है। उन्होंने हिंसा का विरोध कर बुनियादी तौर पर अहिंसा एवं प्रेम को जो महत्व प्रदान किया, उसका अन्यत्र उदाहरण मिलना कठिन है। उग्र राष्ट्रवाद, जो साम्राज्य के नाम से भी प्रसिद्ध है, अभिशाप है, किन्तु अहिंसात्मक राष्ट्रवाद समूह जीवन

अथवा सभ्य जीवन की आवश्यक शर्त है। गांधी जी ने व्यापक प्रेम को ही राष्ट्र–धर्म माना है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार– ''धर्म ही व्यक्ति और राष्ट्र को शक्ति प्रदान करता है।'' उनके राजनीतिक विचार, धार्मिक एवं सामाजिक विचारों के सहगामी हैं। उनके अनुसार हिन्दू धर्म सब धर्मो का सार है, स्त्रोत है। देशभक्ति में रागात्मकता के साथ–साथ शौर्य एवं उत्साह का भाव होता है। हमारी राष्ट्रीय भावना तो हमेशा से ही सात्विकता–मूलक रही है। भारत की राष्ट्रीयता, आध्यात्मिकता व संस्कृति पर आधारित है। जर्मनी को उग्र व प्रखरता की भावना पर आधारित कह सकते हैं। इटली की राष्ट्रीयता की अपनी विशेषता रही है, जिन्होंने आध्यात्मिक राष्ट्रीयता का समर्थन किया।

भानुप्रताप के अनुसार–''फ्रांस की राज्य क्रांति की तत्वमयी ने प्रारम्भिक 'नेशन हुड' को प्रभावित किया। उस समय भावना बन गई कि नेशनलिज्म् का स्वरुप लोकतन्त्रवादी, उदार ही रहता है। ब्रिटेन की नेशनलिज्म की परिणति साम्राज्यवाद में हुई, जिसका प्रतिनधित्व रुडयार्ड किपलिंग, जे0ए0क्राम्ब, सर जान रॉबर्ट सीली, कर्जन और चर्चिल जैसे व्यक्तियों ने किया। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व 'खून और मिट्टी' के सिद्धान्त पर आधारित विस्मार्क हिटलर से प्रभावित 'स्वयंमेव' अस्तित्ववादी, कट्टरपंथी नेशनलिज्म का विकास जर्मनी में हुआ।'' राष्ट्रीयता एक ऐसी भावना है, जो भौगोलिक, सामाजिक या आर्थिक कारणों से प्रबल हो उठती है। जब यही प्रबलता ह्रदयों में एकता की भावना को जन्म देती है, उसे 'राष्ट्रीयता' कहते हैं। यहां जे0एन0 हेराल्ड लास्की के विचार प्रासंगिक कहे जा सकते हैं–'अब इस प्रकार राष्ट्र–राष्ट्रीयता की किस अवधारणा को सत्य माना जाए। मेजिनी की मानवतावादी, हिटलर की अस्तित्ववादी, किपलिंग की समाजवादी, रुजवेल्ट की यथार्थवादी या मार्क्स अर्थवादी या भारतीयों की संस्कृतिवादी। राष्ट्रीयता की इतनी विविधता एवं अन्तर्विरोधात्मक अवधारणा के कारण ही पश्चिम के कुछ विद्वान तो हार गए हैं।'' अतः भारत ही नहीं, संसार के भिन्न राष्ट्रों में राष्ट्रीयता के भिन्न–भिन्न स्वरूप पाए जाते हैं, जिनका विस्तारपूर्वक वर्णन इस प्रकार से किया जा सकता है। सर्वमान्य दृष्टि से राष्ट्रीयता के निम्नलिखित स्वरुप हो सकते हैं–

सांस्कृतिक राष्ट्रीयता–यदि राष्ट्र काया है, तो संस्कृति प्राण। प्रत्येक देश की अपनी संस्कृति होती है। भारतीय राष्ट्रीयता मूलतः सांस्कृतिक राष्ट्रीयता ही है, क्योंकि भारत देश संस्कृति प्रधान देश है। यहां के लोगों की भावनाएं संस्कृति और धर्म को जितना महत्व देती हैं, उतना किसी देश में नहीं दिया जाता। राष्ट्रीयता संस्कृति के लिए सारे समुदायों का राष्ट्र के रुप में एक होना बहुत आवश्यक होता है। संस्कृति, मानव–जीवन को सुदृढ़ आधार प्रदान करते हुए, व्यक्तिगत एवं सामाजिक नैतिक मूल्यों तथा आदर्शों की ओर अग्रसर करती है। भारतीय राष्ट्रीयता का प्राण संस्कृति है। निर्मल वर्मा के अनुसार, ''कोई राष्ट्र जब अपनी सांस्कृतिक जड़ों से उन्मूलित होने लगता है, तो भले ही ऊपर से बहुत सशक्त दिखाई दे, भीतर से मुरझाने लगता है।'' संस्कृति से ही सतत् मानव–जीवन संस्कार ग्रहण करता है। सांस्कृतिक चेतना राष्ट्र के पुनर्निमाण एवं अभ्युत्थान के लिए समर्पित अभियान है। यह हमारे अस्तित्व के लिए, हमारी अस्मिता के लिए, हमारे परिवार के लिए, जन–जन के लिए आवश्यक है, कल्याणकारी है। इसका कोई विकल्प नहीं।

आर्थिक राष्ट्रीयता–राष्ट्रीयता की भावना को एकता के रुप में बनाए रखने के लिए लोगों में आर्थिक समानता पाई जाती है। एक राष्ट्र को समृद्ध, शक्तिशाली एवं विकसित बनाने के लिए वहां के लोगो का आर्थिक रुप से मजबूत होना अति

आवश्यक है। प्रतिव्यक्ति आय का योग ही राष्ट्रीय आय कहलाता है। सभी उत्पादक शक्तियां विकसित हों श्रम– विभाजन सार्वजनिक हो और साथ ही, व्यापक आर्थिक विनिमय क्रियाशील हो। इसी से जनता का आर्थिक जीवन अधिक शांतिमय व्यवहारपूर्वक व्यतीत होगा। किसी देश के निवासियों की आर्थिक असमानता ही एक–न–एक दिन क्रांति का कारण बनती है। अतः यदि राष्ट्र आर्थिक रूप से समृद्ध होगा, तो वह आध्यात्मिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अवश्य समृद्ध होगा। अतः आर्थिक तौर से समृद्ध होना राष्ट्रीयता का एक महत्वपूर्ण अंग है।

राजनीतिक राष्ट्रीयता–प्रत्येक व्यक्ति को अपने राष्ट्र से लगाव होता है। वह उसे हमेशा समृद्ध व उन्नत देखना चाहता है। राजनीतिक राष्ट्रीयता में ''एक सम्मिलित ध्येय में बंधे हुए किसी विशिष्ट भौगोलिक इकाई के जन–समुदाय के पारस्परिक सहयोग से और उन्नति की अभिलाषा से प्रेरित उस भूभाग के लिए प्रेम और गर्व की भावना को ही राष्ट्रीयता कहते हैं।'' संसार के अधिकतर राष्ट्रों का निर्माण 16वीं, 17वीं तथा 18वीं शताब्दियों में हुआ। कुछ राष्ट्रों का विभाजन हुआ, कुछ का साम्राज्यवादी नीति द्वारा विस्तार किया गया है। आत्मरक्षा के लिए समय–समय पर राष्ट्रों के मध्य युद्ध हुए। इसी राजनीतिक राष्ट्रीयता को हासिल करने में वही राष्ट्र स्वतन्त्र हुए, जो राजनैतिक रुप से अधिक शक्तिशाली थे।

सामाजिक राष्ट्रीयता–भारत में जनसंख्या एवं विस्तार की दृष्टि से विशाल होते हुए भी समस्त समाज का ताना–बाना एक है। यहां अनेक जातियां आई साथ में भिन्न–भिन्न रीति–रिवाज, परम्परा, आचार–व्यवहार, भाषा–धर्म भी आए। इन जातियों के भारत आने से यहां के जन–जीवन में बहुत परिवर्तन हुआ। लेकिन धीरे–धीरे यह संस्कृति इतनी घुलमिल गई कि इसे अलग करना अति कठिन हो गया। अतः इस सामाजिक भावना से भी राष्ट्रीयता को मजबूत आधार मिला।

भौगोलिक राष्ट्रीयता–भौगोलिक स्थिति में पर्वत, पहाड़, नदियां, मैदान, प्राकृतिक दृश्य, जलाशय, झील आदि कुछ भी हो, उन सबके प्रति उस देश के निवासियों का लगाव होता है। किसी निश्चित भूखंड में आने वाले शहर, नगर व कस्बों के प्रति हर नागरिक का लगाव होता है। भौगोलिक एकता के बिना राष्ट्र की कल्पना करना व्यर्थ है। अतः अपने भूखंड के प्रति श्रद्धा व्यक्त करना ही राष्ट्रीयता का प्रतीक है। इसलिए भौगोलिकता राष्ट्रीयता का एक मुख्य अंग है।

मानवतावादी राष्ट्रीयता–बीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीयता की भावना एक नये रूप में प्रतिफलित हुई है, जिसका नया रूप है, विश्वबन्धुत्व पर उसकी आस्था। यह आस्था मानव के प्रति प्रेम पर आधारित है, जो किसी से घृणा नहीं करता साथ ही अपने अस्तित्व एवं व्यक्तित्व को बनाए रखना चाहता है। वह समस्त विश्व–प्रेम को पूर्ण रूप से स्वीकार करता है। भारतीयता मानवता पर आधारित है। इसमें मानव– मूल्यों को विशेष महत्व दिया गया है। मानव–मूल्यों से अभिप्राय जीवन के उन श्रेष्ठ गुणों और उच्च आदर्शों से है, जो मानवीय चेतना के उन्नायक और प्रेरक होते हैं। यदि हम भारतीयता को मानवीयता से सम्बोधित करें, तो शायद यह उचित ही होगा।

ऐतिहासिक राष्ट्रीयता–जिस देश का इतिहास जितना अधिक गौरवशाली होगा, उस देश को लोगों को अपने अतीत पर उतना ही गर्व होगा। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के लिए जिस देश के वीरों ने अपने जौहर दिखलाए, वे उस देश की आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बने। इसी प्रेरणा ने, ऐतिहासिकता ने राष्ट्रीयता की भावना हमेशा

कूट–कूट कर भरी होगी। लेकिन आज भारतीय इतिहास की इस कड़ी को भूलते जा रहे हैं, जब दासता से मुक्ति पाने के लिए सभी युवकों ने बढ़–चढ़कर स्वतन्त्रता–आन्दोलन में भाग लिया था। आज भी हमें उसी अतीत की भावना को जगाने की आवश्यकता है।

साहित्यिक राष्ट्रीयता–साहित्य राष्ट्रीयता का पौषक अंग है। राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति से ऐसी कृतियों का प्रणयन होता है, जो राष्ट्र के निर्माण एवं विकास के लिए जन–मानस में उत्साह एवं प्रेरणा का संचार कर सकें। विभिन्न कालों में राष्ट्रीय साहित्य के सृजन की दिशाएं भिन्न–भिन्न हो सकती हैं। पराधीन राष्ट्र की आवश्यकता एवं समस्याएं बदलती रहती हैं। पराधीन राष्ट्र के सम्मुख स्वाधीनता की प्राप्ति ही चरम लक्ष्य होती है, जबकि स्वतन्त्र राष्ट्र के सम्मुख उत्तरोत्तर विकास की समस्या रहती है। आन्तरिक एवं बाह्य खतरों से बचते हुए, राष्ट्र की एकता एवं अंखडता की रक्षा करते हुए, राष्ट्रवासियों को समृद्ध रखना राष्ट्रीय साहित्य का प्रधान साध्य रहता है।

अतः राष्ट्रीयता की भावना को एक सतत् प्रक्रिया बनाने में साहित्यिक राष्ट्रीयता का प्रमुख स्थान है। आज राष्ट्रीय चेतना से जुड़ी समस्याएं विकराल रूप धारण कर रही है। समस्या चाहे सांस्कृतिक हो, भौगोलिक हो, राजनैतिक हो, सामाजिक हो। समस्या, समस्या ही होती है। राष्ट्र–चेतना से जुड़ी समस्या के बारे में भानुप्रताप शुक्ल अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं–'हम कुछ भी नया सोचने के लिए तैयार नहीं हैं। चिन्तन और चेतना यदि किसी पूर्वाग्रह के बन्दी रहेंगे, ता समाज और राष्ट्र कभी चैतन्य होंगे ही नहीं। आज हम इतने अधिक भूखे हैं कि रोटी के अतिरिक्त हमारे लिए सब कुछ बेमानी–सा हो गया है। यदि हमारे चिन्तन की दिषा न बदली, तो यह 'भूख' भारत के भूगोल सहित सब कुछ निगल जाएगी। चाहे व्यक्ति हो या राष्ट्र, यदि उसकी चेतना चुक गई होगी, तो उसकी भूख को मिटाना कठिन ही नहीं, असम्भव भी हो जाता है। आर्थिक उपलब्धियों का न्यायोचित वितरण करना अनिवार्य है। किन्तु रोटी को बांटकर खाने की अपेक्षा छीनकर खाने की प्रवृति को प्रोत्साहित करना पशु प्रवृति है। अच्छा हो, यदि ये बुद्धिजीवी अपने किताबी सिद्धान्त एवं सोच को अनुभव की आंखों से देखें कि क्या चेतना न जगाए जाने के कारण ही देशवासियों का कर्त्तव्य–बोध सोया हुआ नहीं है राष्ट्रीय चेतना का मूर्छित होना ही क्या देश में साम्प्रदायिकता, शत्रुता एवं चारित्रिक पतन का कारण नहीं हैघ् यह इतिहासिक सत्य है कि यदि राजनीतिक जागृति को राष्ट्रीय चेतना का जागरण समझने की भूल न की गई होती, तो भारत विभाजन न होता।''

आर0 विक्रम सिंह, राष्ट्रीयता को वर्तमान युग की आवश्यकता बताते हुए, कहते हैं, ''इन साठ सालों में हमने देश को तोड़ने के सारे सामान इकट्ठा कर लिए हैं, जोड़ने का जिम्मा सिर्फ हिन्दी–फिल्मों, टी0वी0 सीरियलों और क्रिकेट को दे रखा है। हमारे लोकतन्त्र ने खानदानी नेताओं की जो पीढ़ी विकसित की है, वह जातीय, क्षेत्रीय पहचान के लिए सजग है, लेकिन राष्ट्रीयता उनके एजेंडे में नहीं है। क्षेत्रीयता की राजनीति हमें असम्भव स्थितियों की ओर ले जा रही है। सत्ता की लड़ाई अब हत्यारों की ओर बढ़ गई है।''

राजनीतिक नेतृत्व आज का राष्ट्रीय नेतृत्व बन गया है। संस्कृति, समाज व साहित्य का नेतृत्व नगण्य है। प्रतिष्ठा उसी की है, जो प्रतिष्ठा की चिन्ता न करके राजनीति की चौखट चाटता है। लेकिन जो समाजसेवी हैं, बेरोजगार हैं, वे आज दया के पात्र हैं। उनका अपमान किया

जाता है। ये सब समस्याएं राष्ट्र के लिए एक महान चुनौती हैं। यदि इनका समाधान न किया गया, तो राष्ट्रीयता केवल किताबों में लिखी राष्ट्रीयता ही रह जाएगी।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि राष्ट्र एक अमूर्त, परन्तु अत्यन्त सजीव, पवित्र कोमल, कान्त तथा सांस्कृतिक चेतनाओं से सम्पन्न एकत्त्व की भावना का नाम है। राष्ट्र के प्रति श्रद्धा, भक्ति, प्रेम और विनती का भाव ही वास्तव में राष्ट्रीयता है। इसके बिना न तो किसी सार्वभौम और संप्रभुता–सम्पन्न राष्ट्र का ही जन्म हो सकता है और न राष्ट्रीयता का ही। जिस प्रकार प्रेम और भक्ति अपने विशुद्ध रुप में सभी प्रकार के भेदभावों और वैयक्तिक स्वार्थों से ऊपर होते हैं, उसी प्रकार राष्ट्र और राष्ट्रीयता की भावनाएं भी सर्वोपरि होती हैं। राष्ट्रीयता की भावना से अनुप्राणित होकर ही अमेरिका ने कड़े संघर्ष के बाद स्वतन्त्रता प्राप्त की थी। चीन, इंडोनेषिया, इंडोचाइना, इटली और भारत सभी ने राष्ट्रीयता की अजस्र भावना को उद्दीप्त करके ही अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त की और अब प्रगति के पथ पर अनवरत गतिशील हैं। सहज एवं निर्बाध राष्ट्रीयता की भावना सहज मानवीय चेतनाओं को जगाकर विकसित करने में भी सहायक हुआ करती हैं। राष्ट्रीयता की भावना विकसित करने में भूमि, जन और संस्कृति का विशेष महत्व होता है, उनके प्रति लगाव और समर्पण की भावना ही राष्ट्रीयता कहलाती है।

सन्दर्भः–

1. गोदान – मुन्शी प्रेमचन्द्र।
2. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दूसरा संस्करण सन् 1990।
3. आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य, हुकुमचन्द्र, राजपाल प्रकाशन।
4. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व, श्रीराम शर्मा आचार्य, अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा।

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

''समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप''

❐ डॉ. प्रतिमा सिंह

शोध सारांश

समकालीन कहानी में स्त्री जीवन के जितने विविध पक्ष उजागर हुए हैं, उनमें स्त्री का संघर्ष और विद्रोह, नाराजगी और प्रेम, घृणा और पश्चाताप के भाव का रंग अधिक गहरा दिखाई देता है। पहले स्त्री–पुरूष के परस्पर संबंधों का आधार विवाह होता था। किन्तु विवाह संस्था की जटिलताएँ कहें या संबन्धों की स्वच्छंदता का हवाला दिया जाये। स्त्री पुरूष के मध्य बदलते प्रेम सम्बन्धों का वर्णन इस शोध–पत्र के माध्यम से किया गया है।

'समकालीन कहानी जीवन के यथार्थ को बड़ी गहराई से रूपायित करती है। इसलिए समकालीन कहानियों में वर्तमान युग की सभी विसंगतियों का बड़ा हृदय विदारक वर्णन हुआ है। फलतः कहानी की नयी पीढ़ी ने जिस यथार्थ को अभिव्यक्त किया, वही नई कहानी की मुख्य विभाजक भूमि है। युग जीवन के बदलते यथार्थ का चित्रण समकालीन कहानी में जीवन यथार्थ का कोई भी अंग अनछुआ नहीं रह गया है। समकालीन कहानीकारों ने युग जीवन के बदलते हुये यथार्थ को वाणी देना अपना कर्तव्य समझते हैं। क्योंकि वर्तमान में जो जीवन भोग रहा है, उससे अलग जीवन कहानी में रूपायित करना बेईमानी है।

समकालीन कहानी ने नये नैतिकता बोध ग्रहण कर प्रेम विवाह और यौन सम्बन्धों में खुलकर चित्रण कहानीकारों द्वारा किया गया है। महिला कलाकारों ने भी बहुत अधिक ''बोल्ड कहानियाँ'' लिखकर नैतिकता का परिचय दिया है। समकालीन कहानियों में स्त्री–पुरूष के परस्पारिक सम्बन्धें में बहुत परिवर्तन आया है। विवाह और विवाहेतर प्रेम सम्बन्धों दोनों में दिखाई देता है। इस दृष्टि में प्रेम और विवाह की परम्परागत अवधारणाओं को समाप्त कर दिया गया है। क्योंकि इसमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म समस्याएँ और स्थितियाँ समकालीन कहानीकारों के द्वारा चित्रण हुआ है। आज की कहानी एक चिंतन विधा का रूप ग्रहण कर ली है। कहानी में संवेदना से अधिक चिन्तन हो गया है। अपने बौद्धिक चिंतन को रचना में मिलाने के लिए कहानीकार ने परम्परागत बँधे–बँधाये रूप को अलग कर दिया है।

* अतिथि विद्वान– (हिन्दी), शासकीय कन्या महाविद्यालय, कटनी म.प्र.

''समकालीन कहानी ने अपने युग के परिवेश तथा जीवन अनुभव तो उद्धारित किया ही साथ ही कथाकार की संवेदना का एक प्रति क्रियात्मक रूप भी उपस्थित किया। इसमें एक ओर परम्परा है, तो दूसरी और आधुनिकता। इसमें आम आदमी की खोज है तो यथार्थ के अनछुए आयाम महानगरी जीवन के विविध चित्र भी आज की कहानियों में सम्बंधों की गहरी तलाश की हिमांशु जोशी की 'अंतहीन' की वृद्धा नायिका जो गाँव में अकेली रहती है, उसका चित्र है।'' ..... ऐसी फटी धोती। इतनी काली। जर्जर देह। बुझी आँखें। अधखिचड़ी केश। नंगे पाँव। झुर्रियों भरे कपालों पर आँसू झलकते। न जाने वृद्धा को यह पाप कब तक धोना पड़ेगा?[1]

जीवन की विसंगतियों रागात्मक क्षणों की ललक प्रतिबद्धता और ईमानदारी के बाबजूद तिरस्कार, अवसाद, अलगाव बोध के क्षण, स्त्री पुरूष के जीवन सन्दर्भों में बदलाव को नयी कहानी और आंचलिक कहानी अपनी समग्रता में रेखांकित कर सकती है। जिसके हम रांधेय राघव की 'गदल' (भावनात्मक अन्तः संघर्ष), भीष्म सहानी की 'चीफ की दावत' (जीवन की विसंगतियों) कथा प्रियंबदा की 'वापसी' (स्त्री पुरूष सम्बन्धों में बदलाव), मोहन राकेश की 'सुहागिनें' (नारी जीवन की विवशता) आदि रचनाओं में देखने को मिलता है।''[2]

घनश्यामदास भूतड़ा ने भी अभिज्ञापित किया है कि–'जहाँ लक्ष्मी कैद है' कहानी के माध्यम से यादव जी ने इस कहानी के माध्यम से उस युवती की मानसिकता का चित्रण किया है, जो अशिक्षित तथा अंधश्रद्धाओं की शिकार है। लक्ष्मी का पिता लाला रूपाराम अपनी विवाह योग्य बेटी का विवाह इस लिए नहीं करता क्योंकि उसे डर है कि विवाह हो जाने के बाद उसके घर की लक्ष्मी (सम्पत्ति) चली जायेगी। इस प्रकार एक ओर पिता की अंधश्रद्धा है, तो दूसरी ओर लक्ष्मी की कुंठित जैविका आकांक्षाएँ है। बेबस, लाचार, लक्ष्मी पिता की जबरदस्ती का मुकाबला नहीं कर सकती, अतः वह 'हिस्टेरिया' (उन्माद) की अवस्था तक पहुँच जाती है, और अस्वाभाविक कार्य करने लगी है।''[3]

लक्ष्मी, पड़ोसी गोविन्द की पत्रिका पर कुछ पंक्तियों द्वारा रेखांकित करती हैं। ''मैं तुम्हें प्राणों से भी प्यार करती हूँ..... मुझे यहाँ से भगाकर ले चलो .....मैं फाँसी लगाकर मर जाऊँगी..... ।''[4] पिता लक्ष्मी की हर जिद को पूरी करता है, लेकिन घर के बाहर कदम नहीं रखने देता। धीरे–धीरे लक्ष्मी को दौरे पड़ने लगते हैं, और लक्ष्मी पागल जैसे व्यवहार करने लगती है, कभी नंगी होकर छाती पीटते हुए बाप से कहती है–''ले तूने मुझे अपने लिए रखा है .....मुझे खा.... मुझे चबा.... मुझे भोग'' लक्ष्मी के इस तरह के व्यवहार के लिए पिता ही जिम्मेदार है। जैविक आकांक्षाओं को लक्ष्मी कब तक रोक सकती है? बाप की कैद से निकल भागना भी उसके लिए दुस्वार है। परिणामतः कुंठाओं, वर्जनाओं, अतृप्त वासनाओं आदि के कारण वह उन्माद की शिकार हो जाती है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में 'लक्ष्मी' की यही अवस्था होती है। लक्ष्मी के सामने पिता की कैद के सिवा कोई उपाय भी तो नहीं है।''[5]

समकालीन हिन्दी कहानी में महिला कहानी लेखिकाओं में मन्नू भण्डारी का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मन्नू भंडारी ने आपने बदले हुए परिवेश में संस्कार और आधुनिकता के बीच उलझे हुए नारी–मन के द्वंद को बड़ी ईमानदारी से चित्रण किया है। 'मैं हार गयी' (1957), 'यही सच है' (1966), 'एक प्लेट सैलाब' (1968), 'तीन निगाहों की एक तस्वीर' (1968), त्रिशंकु (1978) आदि इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह है। इन्होंने अपनी कहानियों में मजदूर वर्ग की असहाय नारियों की

दरिद्रता, संघर्ष और मानसिकता का मार्मिक चित्रण किया गया है। अन्य महिला कहानीकारों की तुलना में आपका कथा–फलक विस्तृत है।

'यही सच है' कहानी पर फिल्म भी बनी है। नारी मन के अन्तः द्वंद, प्यार का पहला अनुभव और अस्तित्ववादी चिंतन के अनुरूप 'क्षण का महत्व' आत्म विश्लेषण, वासनाओं की तृप्ति के क्षण कहानी के मुख्य सूत्र माने गये है। 'यही सच है' कहनी का वैचारिक आधार कमजोर है। नायिका दीपा का अन्तद्वंद ही प्रमुख है।

''गुरूचरण सिंह ने अभिज्ञापित किया है कि मन्नू भण्डारी की 'यही सच है' कहानी स्त्री–पुरूष सम्बन्धों के बिल्कुल भिन्न रूप को उजागर करती है, परिस्थिति और परिवेश बदलते ही निशीथ के प्रति उसकी घृणा प्रेम में बदलने लगती है और संजय के प्रति उसका प्रेम भाव, कृतज्ञता भाव तक सीमित होने लगता है। उसके लिए निशीथ का स्पर्श भी सच है, और संजय का भी। प्रेम संबंधों का यह चित्रण निरूपण इस कहानी में संवेदनात्मक स्तरों पर हुआ है। जिससे प्रेम संबंध परम्परागत मिथ टूटी है, प्रेम को एक शाश्वत धारणा के रूप में नहीं, परिस्थितियों की सापेक्षता में ग्रहण किया है।''[6]

समकालीन कहानी में ऊषा प्रियंवदा का विशेष स्थान है। नयी कहानी के दौर की बहुचर्चित कहानीकार है। आपकी कहानी 'वापसी' एक समय आलोचकों के मस्तिष्क में छा गयी थी। इसके अवकाश ग्रहण करने के बाद गजाधर बाबू का अपने ही घर में फालतू या पराया हो जाने का बोध और उत्पन्न पीड़ा ने पाठकों को विचलित कर दिया था। यह प्रश्न तो बाद में उठा कि यह अकेलापन अस्तित्ववादी, भाववादी है या मार्क्सवादी? आपकी कहानी संग्रह 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' (1961), 'फिर बसन्त आया' (1961), 'एक कोई दूसरा', (1972), 'कितना बड़ा झूठ' 1972 प्रकाशित हुई।

'हिन्दी कहानी का सफरनामा' में धनंजय वर्मा ने भी स्वीकारा है कि ऊषा प्रियम्बदा की कहानियाँ (एक कोई दूसरा) विदेशी पात्र, पूरी सेटिंग विदेशी, लेकिन उनके पीछे धड़कता हुआ वही भारतीय मानस है, भारतीय कुण्ठाएँ और अभिक्षताएँ हैं, क्योकि आप अपने संपूर्ण अस्तित्व की इकाई को नकार सकते हैं। वह देवयानी जो भारतीयता को अपने व्यक्तित्व से अलग नहीं फेंक पाती, विदेशी परिवेश में एक अन्तद्वंद और व्यवस्थित न हो सकने की पीड़ा लिए हुए हैं।

'प्रतीक्षा' (राजेन्द्र यादव) में यौन कुण्ठाओं को चित्रण किया गया है। नरेन्द्र कोहली की 'सार्थकता' में भी परिवेश जन्य यौन कुष्ठा को उभारने का प्रयास कहानीकार ने किया है।

''मिसेज शर्मा का विचार है कि मिसेज पाण्डे बच्चे को फीड करती करती पति को 'सी ऑफ' करने के लिये आ जाती है। पर कौन जाने ऑफिस जाने से पहले पाण्डे साहब ही फीड लेते हो। बेबी फूड की कमी आखिर वयस्क लोगों के कारण हो गई है। इस देश में।'' तथा कहाँ चलना है। आखिर? मैं उसे निहारते हुए पूछता हूँ, मेरे निहारने का अर्थ यह समझती है और मुस्कुराने लगती है।'' वर्मा–वर्मा के घर।''

''वहाँ नहीं जायेंगे।'' मैं कहता हूँ–''आज छुट्टी का दिन है, वे नहीं रहे होंगे।'' वह शरमा कर कहती है।'' तो बडेराज का विजिट कर आते है।''[7]

कृष्णबलदेव वैद की कई कहानियाँ यौन–सम्बन्धों की विसंगतियों को उजागर यौन–समबन्धों की विसंगतियों को उजागार करती है। 'त्रिकोण', 'सब कुछ नहीं' और नीला अंधेरा इस दृष्टि की उल्लेखनीय कहानी है, त्रिकोणी कहानी में पति–पत्नी के बीच तीसरे (प्रेमिका) की

स्थिति में उत्पन्न 'त्रिकोण' है। 'सब कुछ नहीं' कहानी में यौन सम्बन्धों के बीच पैदा होने वाली मनोवृत्ति को महत्व मिला है, जो व्यक्ति को अकेलापन आत्मपरायेपन की पीड़ा से अभिभूत कर दी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मधुरेश, हिन्दी कहानी अस्मिता की तलाश, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा पृष्ठ 24
2. रोहिताश्व : समकालीनता और शाश्वतता, पृष्ठ 54
3. घनश्यामदास भुतड़ाः समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप पृष्ठ 5
4. राजेन्द्र यादव ''जहाँ लक्ष्मी कैद है'' पृष्ठ 195 अक्षर प्रकाशन 1971
5. राजेन्द्र यादव ''जहाँ लक्ष्मी कैद है'' पृ. 211 अक्षर प्रकाशन 1971
6. गुरूचरण सिंह नरेन्द्र मोहन रचनावली पृ. 69
7. डॉ. भैरूलाल गर्ग आज की हिन्दी कहानी चित्र लेखा प्रकाशन इलाहाबाद पृ. 25

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

भागवतपुराण की लघुकथाओं का भक्तिसाहित्य पर प्रभाव

❐ डॉ0 मनीष कुमार

शोध सारांश

भागवत महापुराण आधुनिक काल में सबसे अधिक पढ़ा व सुना जाने वाला ग्रन्थ है। वेद सम्मत होने तथा वेदों के ही समान रहस्यों का भण्डारण होने के कारण अधिक लोकप्रिय है। इसमें ससांर की सभी विद्यायें तथा लोकव्यवहार की उत्तमक्षियें निबद्ध हैं। आवश्यकता है केवल उनके अध्ययन, चितन और मनन की। पुराणों का श्रवण करने के पश्चात् वेदों उपनिषदों का ज्ञान आत्मसात करने की शक्ति जाग्रत हो जाती है। उनके रहस्यों को समझना सुगम हो जता है, इसीलिए भक्तकवियों ने भी अपनी रचनाओं में सीधे भागवत के ही तत्त्वों का समावेश करने में उद्धत हुए। उनके काव्यों, रचनाओं में न्याय, वेदान्त, मीमांसा आदि के साथ भागवत पुराण के दृष्टान्त अधिक सुगमता से उपलब्ध होते हैं, जिनका इस शोध–आलेख में अध्ययन किया गया है।

श्रीमद्भागवत पाण्डित्य की कसौटी माना जाता है। यह समस्त श्रुतियों का सार है, महाभारत का तात्पर्य निर्णायक है तथा ब्रह्मसूत्रों का भाष्य है। अनेक स्थलों पर श्रुतियों के प्रसिद्ध मन्त्र स्वल्प शब्दान्तर के साथ यहाँ संग्रहित किये गये हैं। 'ब्रह्मात्मैकत्व' का प्रतिपादन प्रधान विषय तथा कैवल्य ही इसके निर्माण का एकमात्र प्रयोजन होने से श्रीमद्भागवत नितान्त वैदुष्यपूर्ण, तर्कबहुल तथा शेमुषीगम्य है। इन दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाने के लिए ही मध्ययुगीन प्रत्येक वैष्णव सम्प्रदाय के बाचार्यों ने इसके ऊपर टीका तथा व्याख्या का प्रणयन कर इसे सुबोध तथा लोकप्रिय बनाने का श्लाधनीय यत्न किया है। टीका–सम्पत्ति की दृष्टि से भी यह ग्रन्थरत्न अनुपमेय है। चित्सुखाचार्य निर्मित आद्य–टीका केवल निर्देशमात्र है, उपलब्ध नहीं। सबसे अधिक प्राचीन तथा प्रमाणिक टीका श्रीधरस्वामी की है, जो नृसिंह भगवान् के प्रसाद से भागवत के रहस्यवेत्ता माने जाते हैं।

पुराणों में रचनाकाल का निर्णय एक झमेले की चीज है। पश्चिमी शिाक्षा के दूषित वातावरण में पुराण के रूप को ठीक–ठीक न समझना कोई नई बात नहीं है। पुराणों की कथाओं, घटनाओं तथा

* ग्राम अनन्तपुर पो0 दन्जीनियरिंग कालेज, (जनता कालेज के बगल में) रीवा (म0प्र0)

कालनिर्देशों के वास्तविक महत्व से अपरिचित आलोचकों की दृष्टि में पुराण एक बड़ा बीहड़ बखेड़ा खड़ा करता है। वे लोग इसे लेखकों की अश्रान्त कल्पना का एक विभ्राट् मानने के अतिरिक्त विशेष महत्व नहीं देते। इसका मुख्य कारण दूषित भावना के अतिरिक्त पुराणों के प्रगाढ़ अनुशीलन का अभाव ही है। अब तक इसी भावना के कारण न तो पुराणों का कोई प्रामाणिक संस्करण ही उपलब्ध है जिसका पाठ अनेक प्रतियों की तुलना के द्वारा निश्चित किया गया हो और न पुराणों के विविध विषय की सहानुभूतिपूर्ण गहरी छान–बीन ही की गई है, परन्तु इधर विद्वानों की रुचि कुछ बदली है। अब वे समझने लगे हैं कि पुराणों की अपने एक स्वतन्त्र शैली है जिसमें वर्णित विषय के बाह्यरूप को हटाकर भीतर पैठने पर उसकी प्रामाणिकता स्वयं झलकने लगती है। प्राचीन इतिहास प्रस्तुत करने में भी 'पंचलक्षण' पुराणों की अपनी एक विशिष्ट दिशा है–

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशे मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चेति पुराणां पञ्चलक्षणम्।।[1]

वे कतिपय देशों के ही एकांगी वृत्त के वर्णन करने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं मानते, बल्कि, ब्रह्माण्ड की सृष्टि से लेकर प्रलय तक महनीय घटनाओं के अंकन में निमग्न रहते हैं। राजवंशों में भी प्रधान का ही उल्लेख किया गया है तथा उन्हीं राजाओं का भी चरित्र चित्रित किया गया है जो उपदेशप्रद होते हैं तथा जिनका चरित्र किसी आदर्श को अग्रसर करने के लिए प्रस्तुत किया गया है। भागवत में इस बात का विशद निर्देश है कि यहां उन्हीं राजाओं के चरित्र का वर्णन है, जो स्वयं आदर्श–चरित्र यशस्वी तथा सदाचार–सम्पन्न थे। 'जायस्व म्रियस्व' की कोटि में आने वाले ऐरे–गैरे राजाओं का वर्णन करने में पुराणकार अपने परिश्रम तथा काव्यशक्ति का दुरपयोग करना नहीं चाहता। विशेष ज्ञान तथा वैराग्य का वर्णन ही ग्रन्थ का प्रधान उद्देश्य है, राजाओं के चरित्र–चित्रण का भी वर्णन नहीं है। यथा–

कथा इमास्ते कथिता महीयसां
विताय लोकेषु यशः परेयुषाम्।
विज्ञान–वैराग्य विवज्ञया विभो
वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम्।।[2]

परन्तु आधुनिक काल में केवल खोजी प्रवृत्ति के विद्वान् पुराणों के इस रहस्य को न समझ कर उनमें आपाततो दृश्यमान विरोध तथा घटनावैषम्य के कारण उन्हें सर्वथा निर्मूल, निराधार तथा अप्रमाणिक बतलाने की धृष्ट घोषणा करते हैं।

यदि गौडपाद के समय से भी पुराणों का कालनिर्धारण किया जाये तब भी गौडपाद का काल आधुनिक गणना के अनुसार भी पृष्ठ शतक से अर्वाचीन नहीं हो सकता। ऐसी दशा में गौडपाद के निःसंदिग्ध उद्धरण के कारण भागवत पृष्ठ शतक से कतिपय शताब्दि प्राचीनतर ही सिद्ध होता है। पुराण के भागवत–माहात्म्य के अनुसार तो श्रीकृष्ण के इस धराधाम के तीस वर्ष छोड़ने के बाद भाद्रशुक्ल नवमी को शुकदेव जी ने महाराज परीक्षित को यह कथा सुनाई थी। फलतः भागवत की रचना कलियुग आरम्भ होने के तीस वर्ष के भीतर ही हुई थी। इस प्रकार भारतीय परम्परा के अनुसार इसे पाँच हजार वर्ष पुराना होना चाहिए।

आधुनिक भारतीय मनीषियों में महर्षि स्वामी दयानन्द ने भी पुराणों में अभद्रता का वर्णन होने का आरोप लगाया है। किन्तु उन्होंने भी पुराणों के महत्त्व को कम नहीं माना है। उनका आशय पुराण के विषय मे यह है कि, पौराणिक कथायें उन्हीं के समझ मे भली प्रकार आ सकती हैं जिन्होंने वेदों का अध्ययन किया हो। अथवा पुराणों की कथाओं को जानलेने के पश्चात् वेदों को

जानना आवश्यक है। क्योंकि, पुराण भी वेदों के ही उपवृहण हैं, वे वेदों के रहस्योद्घाटक हैं। भारतीय संस्कृति में मनुष्य का मुख्योंद्देश्य वेदाध्ययन बताया गया है। न कि, पुराण अध्ययन। महाराज मनु ने वेदाध्ययन के विषय में कहा है– **''ब्राह्मणेन निष्कारणो षडंगोवेदोध्येयोज्ञेयश्च''**

महाराज मनु के कथनानुसार प्रत्येक अध्ययनशील व्यक्ति का कर्तव्य है कि, वह वेदों का अध्ययन अवश्य करे। अतः वेदों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए नियत दिनचर्या की महती आवश्यकता होती है। संसार विभिन्नताओं का क्रीडास्थल है। इसमें श्रमजीवी (शूद्र वर्ग) और सृजनधर्मी (स्त्रीवर्ग) भी है। जिनके वेदाध्ययन मे प्रवृत्त हो जाने से संसार का व्यवहार अवरुद्ध हो सकता है, अतः उनके लिए पुराणों की कथाओं के माध्यम से उचित–अनुचित, धर्माधर्म का परिज्ञान कराना आवश्यक होता है। अतः उनके लिए वेदों के सार रूप पुराणों की कथायें रची गई।

संसार मे जहाँ एक ओर आध्यात्मिक जगत् की रचना की गई है वहीं दूसरी ओर राजनैतिक, लोक भी है, जहाँ प्रत्येक काल में सियासत की अनेकों विचारधारायें पनपती रही हैं। स्थानभेद, संस्कृतिभेद, वर्णभेद, वर्गभेद आदि की प्रबलभावनाओं और अपनी ही संस्कृति को मनवाने की घृणित विचारधाराओं के फलस्वरूप आर्यावर्त में प्रसरित पुराणों के प्रति अभद्रभावना फैलाने के लिए कुछ विद्वेषी जनों द्वारा बलात्कारपूर्वक अभद्रटिप्पणियाँ और प्रक्षेप भर दिये गये जिससे पौराणिक साहित्य का स्वरूप कुछ मैला अवश्य दिखाई देता है किन्तु उनसे सारा का सारा ज्ञान विज्ञान युक्त पुराण साहित्य को नष्ट अथवा उसकी उपेक्षा तो नहीं की जा सकती।

श्रीमद्भागवत के विषय में भी ऐसी ही बेसिर–पैर की बातें विद्वान् लोग करते आये हैं। उसके रचना–काल के निर्णय से पहिले उसके पुराणत्व के ऊपर ही बहुतों को शंका बनी हुई है। 'देवी भागवत' को भी भागवत नाम से सामान्यतः अभिहित होने के कारण यह शंका और भी वढ़ गई है। प्रश्न यह है कि देवी भागवत अष्टादश पुराणों के अन्तर्गत है अथवा श्रीमद्भागवत? पुराणों के वर्णित ग्रन्थ विस्तार तथा रूप–निर्देश का अध्ययन करने पर श्रीमद्भागवत के महापुरात्व में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह जाता है। यह गायत्री से आरम्भ होता है 3 तथा गायत्री से अन्त होता है।4 षष्ठ स्कन्ध में वृत्रासुर के वध की कथा विस्तार से दी गई है। ऐसी दशा में श्रीमद्भागवत को महापुराण मानना ही उचित प्रतीत होता है।

श्रीमद्भागवत के निर्माण का श्रेय त्रयोदश शतक में उत्पन्न बोपदेव को प्रदान कर यह मामला और भी बेतुका बना दिया गया है। डाक्टर भंडारकर के मतानुसार भागवत के 11 वें स्कन्ध (5/37–40) में तामिल देश के वैष्णव सन्तों अतवारों–का स्पष्ट निर्देश होने से यह नवम शताब्दी से पुर्ववर्ती नहीं हो सकता5 परन्तु ये दोनों मत भ्रान्त हैं। भागवत बोपदेव तथा अलवार दोनों से प्राचीनतर है। देवगिरि के यादव राजा महादेव (1260–1271ई.) तथा रामचन्द्र (1271–1308 ई.) के महामन्त्री हेमाद्रि पण्डित के तुष्टयर्थ इनके सभासद बोपदेव ने 'हरिलीलामृत' तथा 'मुक्ताफल' की रचना भगवत पुराण के विषय में की थी। 'हरिलीलामृत' में भागवत के स्कन्धों तथा अध्यायों की विशिष्ट सूची है और एतदर्थ यह 'भागवतानुक्रमणी' के नाम से भी अभिहित किया जाता है।6 'मुक्ताफल' भगवत के नाना रसात्मक कमनीय पद्यों का एक सुलित संग्रह है।7 हेमाद्रि ने 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' में प्रमाण देने के निमित्त भागवत कें श्लोकों को उद्घृत किया है। यदि बोपदेव ही इसके सच्चे रचयिता होते तो 'मुक्ताफल' जैसे संग्रह की न तो कोई आवश्यकता होती और न हेमाद्रि

के, द्वारा प्रमाणार्थ उद्धरण का कोई स्वार्थ होता। तथ्य यह है कि भागवत त्रयोदश शतक में विद्यमान इन ग्रन्थकारों से बहुत प्राचीन है।

द्वैतमत के संस्थापक मध्वाचार्य (जन्मकाल 1999 ई.) ने भागवत के मूल तात्पर्य के प्रकटन के निमित्त 'भागवत–तात्पर्य–निर्णय' नामक स्वतन्त्र ग्रंथ का प्रणयन किया है। श्री रामानुजाचार्य (11 शतक) ने अपने 'वेदान्त–तत्त्वसार' में भागवत की वेदस्तुति (11/89 अ.) से अनेक पद्यों को उद्घृत किया है। अद्वैत–वेदान्त के आचार्य चित्सुख (नवम शतक) के द्वारा निर्मित भागवत–व्याख्या का निर्देश मध्वाचार्य, श्रीधर स्वामी तथा विजयध्वज ने अपने ग्रन्थों में किया है। प्रत्यभिज्ञा–दर्शन के मान्य आचार्य अभिनवगुप्त (10 शतक) ने अपनी गीता–टीका (14/8) में भागवत के द्वितीय तथा एकादश स्कन्ध से कतिपय पद्यों को उद्धृत किया है। माठर ने सांख्यकारिका की माठरवृत्ति में (जिसका चीनी अनुवाद 557 ई. – 569 ई. के बीच में कभी हुआ था) भागवत से दो श्लोकों को प्रमाण रूपेण उपव्यस्त किया है (भाग. 1/6/35, तथा 1/8/52) शंकराचार्य ने (सप्तम शतक) अपने 'प्रबोधसुधाकर' में श्रीकृण्ण के स्तुति–प्रसंग में ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया है जो भागवत में ही उपलब्ध होती है (जैसे मट्टी खाने क बाद मुख के भीतर अखिल ब्रह्माण्ड का दर्शन आदि)। इतना ही नहीं, शंकराचार्य के दादागुरु गौडपादाचार्य ने 'पञ्चीकरण व्याख्या' में 'जगृहे पौरुषं रूपम्' (भाग. 1/3/1) को तथा उत्तरगीता की टीका में 'श्रेयः श्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो' (भाग. 10/14/4) का भागवत के नाम के साथ उद्धृत किया है।

निष्कर्ष रूप मे हम यह अवश्य कह सकते हैं कि, पौराणिकसाहित्य ललितशैली में निबद्ध होने के कारण लोक में व्यापक हो सका और साथ हीं वेदों के उन तमाम अनसुलझे रहस्यों और पहलुओं को सरल तथा सरस लघुकथाओं के माध्यम से समझाने का प्रयत्न किया है। भागवतमहापुराण का वृत्तासुर संग्राम विद्युत और मेंघ की प्राकृतिक घटना का मनोहारी चित्रएर है। भरतचरित्र पुनर्जन्म को ही प्रतिपादित करने वाली लघुकथा है, गज और ग्राह, त्रिकूट पर्वत, इत्यादि सभी कथायें वेदों के ही रहस्यों को उद्घाटित करनेवाली हैं। सनातन धर्म परम्परा में इन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन चिरन्तरकाल से होता चला आ रहा है। अतः वेदों के उपवृहण स्वरूप पुराणों से परवती साहित्य में उनका प्रभाव होना स्वाभाविक ही है। परवर्ती साहित्यकारों ने पुराणों को उपजीव्य बनाकर जिन पक्षों को प्रस्तुत किया है वे सभी पुराणवत ही वेदसिद्ध है।

निष्कर्ष–

1. पंचलक्षण
2. श्रीमद्भागवत महापुराण 12/3/14
3. धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि। भाग. 1/1/1
4. तच्छुद्धं विमलं विशेकममृतं सत्यं परं धीमहि। भाग. 12/13/19
5. भारकर , वैष्णवविजय नामक ग्रथ मे।
6. चौखम्भा संस्कत सीरिज, काशी से 1933 में मुद्रित।
7. कलकत्ता ओरिएण्टल सीरिज से प्रकाशित।

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

प्रजातंत्रीकरण में ग्रामीण महिला नेतृत्व के उभरते प्रतिमान

❐ डॉ. (श्रीमती) दीपाली दास

शोध सारांश

आज जीवन के सभी पहलुओं में नेतृत्व परिलक्षित हो रहा है। पितृसत्ता समाजों में परिवार का नेतृत्व पुरुषों द्वारा किया जाता है, जबकि मातृसत्ता समाजों में परिवार का नेतृत्व स्त्रियों द्वारा किया जाता है। धार्मिक संस्थाओं का नेतृत्व धर्मगुरुओं द्वारा किया जाता है, जबकि आर्थिक संस्थाओं के नेतृत्व औद्योगिक तथा आर्थिक क्षेत्र के व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक मानव समूह के कुछ लक्ष्य होते हैं। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये नेतृत्व की आवश्यकता होती है। इसलिये मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नेतृत्व को प्रारभ्भ से ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है। भारतीय ग्रामीण समुदाय भी इससे अलग नहीं है। ग्रामीण समुदायों में भी अन्य समुदायों की भांति प्रारभ्भ से ही कुछ व्यक्तियों के हाथों में नेतृत्व रहा है। परम्परागत रूप से भारतीय ग्रामीण समुदायों की सामाजिक संरचना में जाति व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इसके परिणामस्वरूप भारत में सामुदायिक नेतृत्व के परम्परागत आधारों में भी परिवर्तन आ रहा है। नेतृत्व से अभिप्राय व्यक्तियों को प्रोत्साहित करने अथवा निर्देशित करने की उस योग्यता से है, जो कुछ निश्चित गुणों से आती है। इस दृष्टि से जो व्यक्ति ग्रामीण जीवन को निर्देशित करते हैं, उन्हे नेता के नाम से जाना जाता है। नेता गांव का एक प्रभावशाली व्यक्ति होता है, जिसमें ग्रामीण ऐसे गुणों को देखते हैं जो उनके उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक हो सकते हैं। यही कारण है कि नेता अपने इच्छित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये अनेक सदस्यों पर नियन्त्रण रखता है।

* एम.ए. (राजनीति शास्त्र), बी.एड.
12/104, अग्रवाल नर्सिंग होम के पीछे, खुटेही, रीवा (म.प्र.)

''ग्रामीण समाज में बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना और कार्यक्रम मानवीय और राजनीतिक जीवन का प्रमुख लक्षण है।'' ग्रामीण नेताओं के चुनाव का आधार वर्ग और जाति न होकर उनकी व्यक्तिगत योग्यता होती है। इसलिये आज की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में ग्रामीण समुदाय का प्रत्येक व्यक्ति गांव का मान्यता प्राप्त नेता बन सकता है और अपनी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति को बदल सकता है, चाहे वह किसी भी जाति का सदस्य क्यों न हो। लूथर के अनुसार ''जो व्यक्ति जनसाधारण की अपेक्षा अन्य व्यक्तियों पर मनोवैज्ञानिक दबाब डालने में अधिक सक्षम हो सकता है और विशेष परिस्थितियों में सामूहिक प्रत्युत्तर दे सकता है उसे हम नेता कह सकते हैं। यहाँ पर नेतृत्व के व्यक्तिगत सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है। नेतृत्व का अभिप्राय आज के सन्दर्भ में नेताओं और उनके अनुसरणकर्ताओं के आमने–सामने के सम्बन्धों से लगाया जाता है। नेता वह व्यक्ति है जो जन समूह पर अपना विशेष प्रभाव छोडता है। प्राचीनकाल में छोटे–छोटे राज्य जनपद कहलाते थे। प्रत्येक जनपद में अनेक विश होते थे जिनका मुखिया विशपति कहलाता था। ग्राम सबसे छोटी इकाई थी और प्रत्येक विश में अनेक ग्राम रहते थे। इनका मुखिया ग्रामीणी कहलाता था। ग्रामीणी ग्राम के वयोवृद्ध और श्रेष्ठ लोगों से परामर्श करके अपना काम करता था। यही ग्राम पंचायत का प्राचीन स्वरूप था। प्राचीन भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है क्योंकि भारतीयों ने अपने आपसी विवादों का निपटारा पंचायतों के माध्यम से किया है। इसके साथ ही ग्राम प्रायः स्वतंत्र थे और उनका शासन चुनी हुई पंचायतों के पास था। ग्राम पंचायत या चुनी हुई कौंसिल को शासन तथा न्याय सम्बन्धी बहुत अधिकार प्राप्त थे। पंचायतें भूमि का वितरण करती थी। कुछ ग्राम पंचायतों के ऊपर एक बड़ी पंचायत (परिषद) होती थी जो अपने क्षेत्र के कार्यों की देखभाल किया करती थी और आवश्यकता पढ़ने पर हस्तक्षेप भी करती थी। भारत ही विश्व का वह प्रथम देश था, जहां पर पंचायत के सदस्यों को 'पंच परमेश्वर' की संज्ञा प्रदान कर उनकी न्यायिक प्रशासनिक सर्वसत्ता को पूर्ण मान्यता प्रदान कर साहचर्य, सहिष्णुता एवं बन्धुत्व की भावना का उदय हुआ था। वस्तुतः भारत में पंचायत का अस्तित्व पूर्णतः प्राचीन था और उस समय वे प्रकार्यात्मक दृष्टि से एक ऐसे दृढ़ आधार के रूप में आ गयी थी, जिस पर हमारी संस्कृति फली–फूली और समृद्ध हुई।

जीवन के विविध आयाम हैं और पंचायतें इन आयामों का सम्पादन सक्षम नेतृत्व के माध्यम से करती थी। ऐसी स्थिति में नेतृत्व को भी विभिन्न समस्याओं का कम से कम प्राथमिक उपचार करना पड़ता है। उसे पुलिस वालों से और उनकी कार्यविधि से परिचय रखना होता है। तहसील और ब्लॉक के अधिकारियों से सम्पर्क रखना होता है, गांव में सामूहिक गतिविधियों के संचालन में अपनी उपस्थिति जतानी होती है। कभी चंदा इकट्ठा करना हो, तो आगे आना होता है। कोई अपने लड़के की पढ़ाई के बारे में राय लेने आए, तो कुछ बताना होता है और जब भी कोई इस भाग–दौड़ में सहयोग मांगे तो उसका साथ ही देना होता है। जीवन के औपचारिक व अनौपचारिक दोनों ही पहलुओं में वह मार्गदर्शक का काम करता है। अतः भारत में प्रभावशाली व्यक्तियों की सूची कई बार केवल नये पद प्राप्त करने वालों तक सीमित नहीं रहती। कई बार प्रधान पद पर चुने गये व्यक्ति शतरंज के मोहरे ही बने रहते हैं जिन्हें कोई और ही चलाता है। कभी बड़े लोग किसी छोटे साथी या कार्यकर्ता को आगे कर देते हैं। नेतृत्व की पहचान के लिये भारत के

ग्रामीण क्षेत्रें में व्यक्ति की प्रतिष्ठा और उसकी सलाह देने की क्षमता पर विशेष ध्यान देना होता है। कुछ व्यक्ति तो ऐसी स्थिति में होते हैं कि उसके प्रभाव में खड़े होने वाले हर पक्ष के लोग उनका आशीर्वाद प्राप्त करना चाहते हैं। सामाजिक दृष्टि से ऐसे व्यक्ति पद विहीन होने पर भी प्रभावशाली होते हैं। कभी–कभी समस्याओं से छुटकारा दिलवाने व्यक्ति भी मौके पर आ जाते हैं या विशिष्ट आयोजनों में अपनी नेतागीरी करने लगते हैं, चाहे पद पर हो या न हो। कुछ व्यक्ति सदाबहार नेता बने रहते हैं या बने रहने का प्रयत्न करते रहते हैं।

भारतीय समाज पितृसत्तात्मक रहा है। इस दृष्टि से परिवारों में महिला बराबरी का नितान्त अभाव रहा है। शायद भारतीय गांवों की महिलाओं के बारे में ही यह कहा जाता था कि विवाह से पहले वे पिता के अधीन रहती है और विवाह के बाद पति के अधीन। अधीनता का यह दंश उसे जीवन भर घेरे रहता है। देश की आधी जनसंख्या महिलाओं की है। भला कोई देश आधी जनसंख्या की उपेक्षा करके किस प्रकार प्रगति और विकास कर सकता है? इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए संसद और विधान सभाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत स्थानों का आरक्षण किया गया है। लोक सभा से लेकर ग्राम पंचायतों तक आरक्षण के माध्यम से महिलाओं को नेतृत्व में सहभागिता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। मध्य प्रदेश में तो वर्तमान सरकार ने इस दिशा में एक कदम आगे बढ़कर स्थानीय निकायों में इनको 50 प्रतिशत का आरक्षण प्रदान कर दिया है।

भारतीय राजनीति में आरक्षण शब्द की शुरूआत सर्वप्रथम अंग्रेजों द्वारा फूट डालो, राज करो की नीति के अंतर्गत निर्मित भारत परिषद अधिनियम 1909 से हुई। इस अधिनियम द्वारा भारत में पहली बाद मुसलमानों को पृथक एवं प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व दिया गया। इसके बाद से निरंतर आरक्षण का स्वहित के लिए प्रयोग किया जाना शुरू हुआ। मुसलमानों के बाद सिक्खों, दलितों और अल्पसंख्यकों को भी आरक्षण दिया जाने लगा।

स्वतंत्राता प्राप्ति के बाद संविधन निर्माण के समय सामाजिक एवं शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के लिए या अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के उत्थान की ओर विशेष ध्यान दिया गया। संविधन के अनुच्छेद 15(4) और अनुच्छेद 16(4) में तो आरक्षण की व्यवस्था है ही, इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 330 से लेकर अनुच्छेद 342 तक लोकसभा और राज्य विधनसभाओं में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और आंग्ल–भारतीयों के लिए आरक्षण का प्रावधन हे, परन्तु इन अनुच्छेदों में कही भी महिला आरक्षण का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। आरक्षण के लिए गठित विभिन्न आयोगों में से किसी ने भी महिलाओं के लिए अलग से आरक्षण की सिपफारिश नहीं की।

महिलाओं को आरक्षण देने की बात सबसे पहले भूतपूर्व प्रधनमंत्राी स्व. राजीव गांधे ने उठायी थी, क्योंकि उस समय शाहबानो प्रकरण के कारण महिलाओं का उनसे मोहभंग हो चुका था, परंतु अचानक उनकी मृत्यु हो जाने से महिला आरक्षण की बात वहीं की वहीं रह गयी। उसके बाद विभिन्न दलों की कई सरकारें बनी और समय–समय पर महिला आरक्षण विधेयक को संसद में पेश करने की कोशिश की गयी, परंतु हमेशा किसी ने किसी नेता द्वारा विरोध करने के कार्यक्रम में उन्होंने इसे पारित करवाने की भरपूर कोशिश की, परन्तु उनके सरकार में शामिल गठबंध्न दल के वरिष्ठ नेता शरद यादव के विरोध के कारण यह विधेयक पारित नहीं हो सका।

जब भाजपा के नेतृत्व में गठबंध्न सरकार बनी तो पहली बार इस विधेयक को संसद में पेश

किया गया, तो कुछ भिन्न और विचित्र स्वरूप ही देखने को मिला। महिला आरक्षण विधेयक के विरोधियों ने लोकसभा में इस विध्येक को पेश तो नहीं ही होने दिया, बल्कि उन्होंने इसके विरोध में कुछ ऐसा रूख अपनाया, जिससे संसद की गरिमा धूमिल भी हुई। लोकसभा और विधनसभाओं में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देने का मामला पुनः राजनीतिक दलों के मध्य तीव्र मतभेद के कारण एक बार टल गया और इस बार आरक्षण विधेयक को टालने में प्रमुख भूमिका निभायी सपा और राजद के अध्यक्ष ने।

विवादास्पद महिला आरक्षण विध्येक का प्रारूप क्या है ? सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है। तत्कालीन प्रधनमंत्रीा अटल बिहारी बाजपेयी के नेतृत्व वाली भाजपा सरकार ने महिला संबंधी 84वां संविधन संशोध्न विधेयक निर्मित किया, जिसके कुछ प्रावधन इसप्रकार हैं :–

1. संविधन के अनुच्छेद 330 के खण्ड (1) में लोकसभा में महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित रहेंगे।

2. अनुच्छेद 330 खंड (2) के अधीन आरक्षित स्थानों की कुल संख्या के जहां तक संभव हो, एक–तिहाई स्थान, यथास्थिति अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं के लिए आरक्षित रहेंगे।

3. किसी राज्य या संघ राज्य में लोकसभा के लिए प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या के जहां तक संभव हो एक–तिहाई स्थान जिनके अंतर्गत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या भी है, महिलाओं के लिए आरक्षित रहेंगे और ऐसे स्थान उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्रा में भिन्न–भिन्न चुनाव क्षेत्राों को चक्रानुक्रम द्वारा आवंटित किये जा सकेंगे।

विश्व परिप्रेक्ष्य में यदि महिलाओं की स्थिति पर ध्यान केन्द्रित करते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान में भारत में संसद में महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं, तो बुरी भी नहीं कही जा सकती है। क्योंकि प्राचीनकाल से ही महिलाओं के साथ जैसा भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जा रहा है, उसके आधार पर 6.6 प्रतिशत महिलाओं की स्थिति सम्मानजनक कही जा सकती है।

महिला आरक्षण को लेकर जिस प्रकार का विवाद बार–बार खड़ा किया जाता रहा है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक चुनावी मुद्दा बन गया है और इसे निकट भविष्य में सुलझा पाना मुश्किल है। अच्छा तो यह होगा कि विधयिकाओं में आरक्षण देने की जगह महिलाओं को शैक्षणिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में विकास के पर्याप्त अवसर प्रदान किये जायें और समाज में ऐसा वातावरण निर्मित किया जाए कि महिलाएं स्वयं को निर्भीक और स्वतंत्रा महसूस कर सकें, देश के विकास में सहभागी बन सकें।

नेतृत्व की अवधारणा–जे. पी. चिताम्बर का मत है कि प्रत्येक समाज की शक्ति संरचना में कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो लोगों को प्रोत्साहित करते हैं, प्रेरणा देते हैं, मार्गदर्शन करते हैं अथवा लोगों को क्रिया करने के लिए प्रभावित करते हैं। ऐसी क्रिया को हम नेतृत्व और ऐसे व्यक्तियों को हम नेता, शक्ति धारण करने वाले, शक्ति मानव, शक्ति केन्द्र अथवा शक्ति अभिजात कह सकते हैं।

जर्मन राजनीतिशास्त्री रिचर्ड हिमट ने कहा है कि कुछ सामान्य हितों के लिए एक व्यक्ति एवं समूह के बीच बनने वाले सम्बन्ध तथा इस प्रकार से व्यवहार किया जाना जो उसके द्वारा निर्धारित हो।

मैकाइवर और पेज के अनुसार नेतृत्व से हमारा अभिप्राय व्यक्तियों को प्रोत्साहित करने अथवा

निर्देशित करने की उस योग्यता से है, जो पद के अतिरिक्त गुणों से आती है। इस आधार पर जो व्यक्ति ग्रामीण जीवन को निर्देशित करते हैं, उन्हें नेता के नाम से पुकारा जाता है। नेता गांव का एक प्रभावशाली व्यक्ति होता है जिसे ग्रामीण लोग सम्मान देते हैं। समुदाय के लोग उसका अनुसरण करते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में नेता का सम्बन्ध, परिवार, जाति और अन्य कारणों से सम्मानजनक होता है। नेता का समूह में एक विशिष्ट पद होता है। वह सभी सदस्यों का केन्द्र बिन्दु होता है। इच्छित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये अनेक सदस्यों पर नियंत्रण रखता है। अतः नेतृत्व का उदय समूह के अन्दर से ही होता है, विकसित होता है और प्राप्त होता है।

ग्रामीण नेतृत्व में जातीय संरचना की दृष्टि से आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक शक्ति उच्च जाति के पास होती है। मजूमदार के अनुसार मध्यम जाति समूह में अहीर जाति अधिक शक्तिशाली है क्योंकि इस जाति को उच्च जाति समूहों से प्रश्रय मिल गया है। यह जाति शारीरिक बल प्रयोग में लाते हैं। निम्न स्तरीय जाति समूह आर्थिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण शक्तिशाली नहीं है। आज के ग्रामीण नेतृत्व का स्वरूप वैयक्तिक से सामूहिक, वंशानुगत से निर्वाचित नेतृत्व की दिशा में गतिशील होता दिखाई पड़ता है। आज प्रजातंत्र की यह नीति है कि परम्परा के बन्धन को तोड़कर तार्किकता और कुशलता, जो आधुनिकता के प्रमुख आधार हैं, का अनुसरण किया जाय।

पश्चिमी देशों में जीवन का चक्र कई भागों में बटा है और उसमें हर एक के विशेषज्ञ बढ़ते जा रहे हैं। उनमें हर एक पेशे के अपने संगठन हैं उनके अपने नेता हैं। भारत में गांवों का जीवन उस दृष्टि से उतना विभाजित नहीं है और जीवन के विविध पक्ष एक साथ चलते हैं। ऐसी स्थिति में नेतृत्व को भी विभिन्न समस्याओं का कम से कम प्राथमिक उपचार करना पड़ता है। उसे पुलिस वालों से और उनकी कार्यविधि से परिचय रखना होता है, तहसील और ब्लॉक के अधिकारियों से समपर्क रखना होता है, गांव में सामूहिक गतिविधियों के संचालन में अपनी उपस्थिति जतानी होती है। कभी चंदा इकट्ठा करना हो, तो आगे आना होता है। कोई अपने लड़के की पढ़ाई के बारे में राय लेने आता है, तो कुछ बताना होता है और जब भी कोई इस भाग–दौड़ में सहयोग मांगे, तो उसका साथ भी देना होता है। जीवन के औपचारिक व अनौपचारिक दोनों ही पहलुओं में वह मार्गदर्शक का काम करता है। अतः भारत में प्रभावशाली व्यक्तियों की सूची कई बार केवल नये पद प्राप्त करने वालों तक सीमित नहीं रहती। कई बार प्रधान पद पर चुने गये व्यक्ति शतरंज के मोहरें ही बने रहते हैं जिन्हें कोई और ही चलाता है। कभी बड़े लोग किसी छोटे साथी या कार्यकर्ता को आगे कर देते हैं। नेतृत्व की पहचान के लिये भारत के ग्रामीण क्षेत्रें में व्यक्ति की प्रतिष्ठा और उसकी सलाह देने की क्षमता पर विशेष ध्यान देना होता है। कुछ व्यक्ति तो ऐसी स्थिति में होते हैं कि प्रभाव में खड़े होने वाले हर पक्ष के लोग उनका आशीर्वाद प्राप्त करना चाहते हैं। सामाजिक दृष्टि से ऐसे व्यक्ति पद विहीन होने पर भी प्रभावशाली होते हैं। कभी–कभी समस्याओं से छुटकारा दिलवाने व्यक्ति भी मौके पर आ जाते हैं या विशिष्ट आयोजनों में अपनी नेतागिरी करने लगते हैं, चाहे पद पर हो या न हो। कुछ व्यक्ति सदाबहार नेता बने रहते हैं या उसका प्रयत्न करते रहते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि किसी समाज के नेतृत्व का स्वरूप और उसकी क्षमता का समाज की अपनी प्रवृत्ति से गहरा सम्बन्ध है। हमारे गांव के जीवन के कई पक्ष एक साथ जुड़े

हैं। अतः नेतृत्व भी कई प्रकार के प्रश्नों का हल करता है। एक सफल नेतृत्व गांव और शहर दोनों में क्रियाशील रहता है। इस परिवर्तन के साथ गांव का नेतृत्व इस प्रक्रिया को अपने समर्थकों के हित में अधिक सरलता से ला सकने में उसकी सार्थकता है। पंचायती राज व्यवस्था में अब जबकि गांवों में वोट के आधार पर नये पद सृजित होते हैं, संख्याओं का महत्व बढ़ गया है। कल तक के बहुसंख्यक, जो आर्थिक दृष्टि से निम्न स्तर पर थे और उस स्थिति को जाति प्रथा से बनाये रखा जा सकता था। आज जाति की संख्या में नवीन शक्ति देखे जा सकते हैं। कल तक अपने को उच्च समझने वाली जातियों को इस नवीन स्थिति से कुछ आघात लगा है। अब धर्म, भू–स्वामित्व और सत्ता की त्रिमूर्ति टूट रही है। भारत के कई भागों में ब्राह्मण व अन्य कई जातियां शहर की ओर उन्मुख हुई हैं। असली किसान भूमि के मालिक बन रहे हैं और सत्ता भी बिखर रही है। आन्द्रे बेतीई महोदय ने अपने अध्ययन से स्पष्ट किया है कि उत्तर भारत में देखा जा सकता है कि जिन गांवों में एक जाति के सदस्य बहुत बड़ी संख्या में है, उनमें आपस में ही गुट बन जाते हैं और हर नेता अपने आप के पिछड़े समूहों का शुभ चिन्तक जताता है। कभी–कभी तो इन समूहों के छोटे नेता बड़े समूहों की गुटबाजी का लाभ उठाकर चुनाव भी जीत जाते हैं और वैसे भी यदि एक गुट का जीत गया तो हारा हुआ व्यक्ति पिछड़े वर्ग पर होने वाले उत्पीड़न के विरोध में आवाज उठाता है तथा इस स्थिति में भी पिछड़ा वर्ग कुछ राहत का आभास करता है।

नेतृत्व सम्बन्धी गुण :

1. **आत्म विश्वास** : यह एक अच्छे नेता में आत्मज्ञान पर आधारित आत्मविश्वास होना चाहिए। इस गुण के द्वारा ही वह अन्य व्यक्तियों के विश्वास को प्राप्त करने में समर्थ हो सकेगा।

2. **स्फूर्ति एवं सहिष्णुता** : बर्नाई ने स्फूर्ति को शक्ति, चेतना और सजगता का मिश्रण अथवा सहिष्णुता बतलाया है। यह गुण उसके अनुभव एवं ज्ञान में वृद्धि करता है और उसके व्यक्तिगत प्रभाव को भी बढ़ाता है।

3. **सम्प्रेषण की योग्यता** : एक अच्छे नेता में निर्देशों एवं विचारों तथा आदेशों को अन्य व्यक्तियों को संप्रेषित करने की योग्यता होनी चाहिए।

4. **सत्यनिष्ठा** : नेतृत्व सर्वोत्तम ढंग से उसी समय कार्य करता है, जबकि वह सद्भावना, निष्कपटता तथा सत्यनिष्ठा, नैतिक सुदृढ़ता एवं सच्चाई पर आधारित होता है।

5. **निर्णायकता** : यह गुण नेता में निर्णय लेने से सम्बन्धित होता है।

6. **उत्साहित करने की योग्यता** : एक नेता में अपने अनुयायियों को प्रभावित करने की पर्याप्त योग्यता होनी चाहिए।

7. साहस : बिना साहस के कोई भी सद्गुण प्रभावी नहीं होते, क्योंकि विश्वास, आशा तथा दया आदि सभी सद्गुण नहीं रह पाते जब तक कि उनका प्रयोग करने के लिए साहस का आश्रय नहीं लिया जाता है।

निष्कर्ष :

1. अधिकांश महिलाओं ने स्वीकार किया है कि वे राजनीति में अपनी इच्छा से नहीं, बल्कि परिवार के सदस्यों की इच्छा से आई हैं जो उनकी राजनीतिक निर्भरता को स्पष्ट करता है। अतः महिलाओं को स्वयं इस मानसिकता से आगे बढ़कर स्वयं निर्णय लेने की क्षमता को विकसित करने की आवश्यकता है।

2. महिला जनप्रतिनिधि शिक्षा एवं जागरुकता के अभाव के कारण न तो अपने अधिकारों का उपयोग कर पा रही हैं और न ही उन्हें अपने उत्तरदायित्वों का ज्ञान है। इनके उत्तरदायित्वों का निर्वाह सामान्यता इनके परिवार के सदस्यों द्वारा ही सम्पन्न किये जा रहे हैं। अतः महिला जनप्रतिनिधियों को अपनी इस स्थिति से उबरना होगा तथा इस प्रवृत्ति को बदलने की आवश्यकता है। इसके लिए महिला जनप्रतिनिधियों को अपने अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक किए जाने की आवश्यकता है।

3. जिला पंचायत की महिला जनप्रतिनिधियों की जागरुकता कम स्तर अत्यन्त निम्न पाया गया, जिसके लिये सामाजिक तथा राजनीतिक रूप से जागरुक महिलाओं के इस ओर लाने के लिये प्रेरित किए जाने की आवश्यकता है।

ये वे कारण हैं, जो महिलाओं को आजादी के 69 वर्षों बाद भी समाज से बाहर आने के मार्ग में सबसे बड़ी बाधाएं हैं। इन बाधाओं से बाहर आए बिना महिलाओं का सशक्तीकरण सम्भव नहीं है। इसके लिए महिलाओं को स्वयं प्रयास करना होगा। उन्हें शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करना होगा तथा चूल्हे चौके से बाहर आना होगा। उन्हें स्मरण रखना होगा कि समस्या उनकी है और समाधान भी उन्हें ही खोजना होगा। उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनना होगा। शालीनता के साथ पर्दे से बाहर आना होगा। उन्हें भारतीय समाज में हो रहे परिवर्तनों से परिचित होना होगा तथा आत्मविश्वास को विकसित करना होगा। उन्हें केवल अपने वर्तमान पर ही सन्तुष्ट नहीं रहना होगा तथा जीवन के हर क्षेत्र में दूरदृष्टि का परिचय देना होगा। उन्हें जागरुक होकर पुरुष की वैशाखी से बाहर आना होगा।

सन्दर्भ :

1. Arulselam, M., 'Tamil Nadu Panchayat and Municipal Laws', Vol. 1, Madras, malathi Publications, 1994.
2. अग्निहोत्री, गुरू राम प्यारे,, 'रीवा राज्य का इतिहास', मध्य प्रदेश शासन, साहित्य परिषद, भोपाल, 1972.
3. Blunt, E.A.H. 'Caste System in northern India', 1931.
4. Bhatt, G.D. 'Emerging Leadership Pattern in Rural India, An Empirical Study', New Delhi. MD Publications Pvt. ltd., 1994.
5. बघेल, डॉ. डी.एस. 'राजनैतिक समाजशास्त्र', विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, नई दिल्ली, 2005.

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत उपभोक्ताओं के अधिकार

❒ डॉ. सुशील कुमार मिश्र

अधिनियम के उद्देश्य—

उपभोक्ताओं के हितों के सर्वोत्तम संरक्षण के लिए और उस प्रयोजन के लिए उपभोक्ता विवादों तथा उससे संबंधित मामलों के निपटारे के लिए उपभोक्ता परिषदों तथा अन्य प्राधिकरणों की स्थापना के लिए उपबंध करने के लिए अधिनियम।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की धारा 2 (घ) के अनुसार

'उपभोक्ता' से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो किसी प्रतिफल के लिए संदाय कर दिया है या कोई वस्तु भाड़े पर लेता है या उपयोग करता है किन्तु इसके अन्तर्गत वाणिज्यिक प्रयोजन तथा निःशुल्क सेवा नहीं आता।

टीवी पर देखे वॉशिंग पाउडर के एक लुभावने विज्ञापन को देखकर मिसेज सुमन से रहा नहीं गया। अगले ही दिन वो पास की शॉप में गईं और उन्होंने वॉशिंग पाउडर खरीद लिया, उस पाउडर को वो इस्तेमाल करने जा रही थी कि तभी उन्हें एक सहेली ने बताया कि वह वाशिंग पाउडर देखने में ही अच्छा है, जबकि इस्तेमाल करने पर वो बिल्कुल बेअसर है, मिसेज सुमन ने अपनी सहेली की बात तुरन्त मानी और उस पाउडर को वापस करने के लिए दुकानदार के पास जा पहुँची। दुकानदार ने यह कहकर कि वह बेचा गया सामान वापस नहीं लेता, मिसेज सुमन को वाशिंग पाउडर बदलने से इंकार कर दिया, मिसेज सुमन के पास चूंकि बिल नहीं था, इसलिए वह 'खून का घूट' पी कर रह गई, उन्होंने मन ही मन उस दुकान से सामान न खरीदने का फैसला किया और लौट आई। अगर मिसेज सुमन को अपने अधिकारों का ज्ञान होता, तो उन्हें नुकसान नहीं उठाना पड़ता। दरअसल, उपभोक्ता छोटी-छोटी बातों में लापरवाही बरतते हैं, जबकि सर्तकता बरतकर हम कई परेशानियों से बस सकते हैं।

अक्सर यह देखा गया है कि उपभोक्ता जल्दबाजी में खरीददारी करते हैं और इस वजह से सामन खरीदते वक्त एक्सपायरी डेट या बैच नम्बर नहीं चेक कर पाते। बाद में दुकानदार से झगड़ा करने से अच्छा है कि सामान खरीदने से पहले उपभोक्ता थोड़ा सा समय दें तथा सभी सामानों को अच्छी तरह से चेक करनी चाहिए, उसके बाद ही सामान का पेमेंट करना चाहिए, अगर उपभोक्ता को लगे कि सामान में कुछ गड़बड़ है, तो सामान फौरन बदल लेना चाहिए।

यदि दुकानदार उपभोक्ता को जानबूझकर कोई ब्रांड देना चाह रहा हो, तो उपभोक्ता उससे उस खास प्रोडक्ट का पर्चेज बिल मांगकर ये देख सकते हैं कि कहीं उसे इसमें कोई कमीशन तो नहीं मिल रहा या फिर कोई ऐसी स्कीम तो नहीं है।

यदि कोई सामान किसी खास स्कीम के तहत ले रहे हैं, तो पहले दुकानदार से उस स्कीम की पूरी जानकारी लें, आधी-अधूरी जानकारी के साथ लेने पर नुकसान उठाना पड़ सकता है।

उपभोक्ताओं के लिए बिल का महत्त्व—आमतौर पर उपभोक्ता जान-पहचान की दुकान होने के कारण

* ग्राम : रमकुँई, पोस्ट : भोलागढ़, तहसील : हुजूर, जिला : रीवा (म.प्र.), मो. 9907226426

दुकानदार से बिल नहीं मांगते जिसका दुकानदार पूरा फायदा उठाते हैं, वे कभी पुराना माल ग्राहकों को दे देते हैं, तो कभी अपने फायदे के लिए घटिया माल ग्राहकों के गले मढ़ देते हैं, जिसका खामियाजा ग्राहकों को अपनी मेहनत की कमाई गवा कर भुगतना पड़ता है। इसलिए उपभोक्ता को चाहिए कि दुकानदार से बिल जरूर ले ताकि माल या सामान के खराब होने पर उस दुकानदार के खिलाफ कार्यवाही कर सके।

● खरीददारी के सबूत के तौर पर बिल बहुत जरूरी होता है। अगर उपभोक्ता दुकानदार के जवाब से सन्तुष्ट नहीं हैं, तो सीधे कम्पनी को लिख सकते हैं।

● बिल न होने पर गारन्टी कार्ड मान्य नहीं होता।

● बिल का फायदा यह है कि दुकानदार उपभोक्ता को नकली उत्पाद नहीं बेच सकता।

● बिना बिल के ली गई किसी दवा ने नुकसान होने पर दुकानदार और कम्पनी उस उत्पाद की जिम्मेदारी से मुकर जाते हैं, लेकन सही बिल होने पर वे ऐसा नहीं कर सकते।

● अगर दुकानदार और कम्पनी उपभोक्ता शिकायत पर कारवाई नहीं करते हैं या उपभोक्ता उनकी कारवाई से सन्तुष्ट नहीं हैं, तो उपभोक्ता को यहाँ केसा दर्ज कराने के लिए बिल होना जरूरी है।

● दवाई के नकली होने पर उपभोक्ता दवाई कम्पनी के अलावा राज्य सरकार के ड्रग कंट्रोलर को भी शिकायत कर सकते हैं।

● अगर उत्पाद 'आईएसआई' (ISI) मार्कवाला है, तो उपभोक्ता इसकी खराब क्वालिटी की शिकायत 'ब्यूरो ऑफ इंडियन स्टैंडर्ड' में कर सकते है, 'आईएसआई' (ISI) सर्टिफिकेट खराब उत्पाद के बदले आपको नया उत्पाद देने की गारन्टी देते हैं।

उपभोक्ताओं को बिल लेते समय क्या देखना आवश्यक है?

उत्पाद का नाम,

उत्पाद की डिटेल्स जैसे—बैच नम्बर, खरीदने की तारीख,

एमआरपी (MRP) और चुकाई जाने वाली कीमत आदि बिल पर लिखे होने चाहिए। उपभोक्ता यह अवश्य ध्यान दें कि दवा और खाने की चीजों पर लिखी एक्सपायरी डेट बिल पर लिखी हो।

आज ज्यादातर उपभोक्ता जागरूक नहीं है, इसलिए उनका शोषण होता है, अगर जागरूक उपभोक्ता बिल की मांग करता है, तो उस भारी-भरकम वैट का बहाना बनाकर बेवकूफ बना दिया जाता है, यदि कोई ऐसी बात हो तो उपभोक्ता को कंज्यूमर कोर्ट की सहायता लेनी चाहिए। ज्यादातर दुकानदार लेबल या स्टिकर लगाकर पुराने उत्पादों को ज्यादा कीमत पर बेचते हैं, ऐसा करना अपराध हैं, अगर किसी उपभोक्ता के साथ कोई दुकानदार ऐसा करता है, तो इस मामले में उपभोक्ता को निम्न अधिकार प्राप्त हैं।

● एमआरपी (MRP) से ज्यादा कीमत परर प्रोडक्ट (वस्तु/उत्पाद) बेचना दंण्डनीय अपराध हैं।

● दुकानदार एमआरपी (MRP) के लेबर के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं कर सकता।

● एमआरपी (MRP) छपा लेना चाहिए, उस पर बढ़े हुए रेट का स्टिकर लगाकर सामान बेचना गलत हैं।

● यदि उत्पाद पर एमआरपी (MRP) कम लिखा है, तो दुकानदार बढ़े रेट्स का हवाला देकर ज्यादा पैसे नहीं वसूल सकता। पुराने प्रोडेक्ट को नए एमआरपी पर नहीं बेचा जा सकता।

● दुकानदार उपभोक्ता के सामान पर पहुँचाने के नाम पर अतिरिक्त चार्ज नहीं वसूल सकता।

● केवल होटल या रेस्टोरेंट मिनरल वॉटर या कोल्ड ड्रिंक पर एमआरपी (MRP) से ज्यादा मूल्य वसूल सकते हैं, लेकिन अगर आप होम डिलिवरी ऑर्डर करते हैं तो एमआरपी (MRP) से ज्यादा नहीं वसूल सकते।

● एयरपोर्ट आदि पर एयरपोर्ट टैक्स या फिर कस्टम टैक्स के नाम पर होने वाली ओवरचार्जिंग गलत हैं। किसी भी उत्पाद पर सिर्फ सर्विस टैक्स वसूला जा

सकता है और ऐसी किसी शॉप या स्टॉल पर सर्विस टैक्स भी नहीं वसूला जा सकता।

● उपभोक्ता एमआरपी (MRP) से कम पैसे देने के लिए दुकानदार से मोल-भाव कर सकते हैं।

अगर उपभोक्ता के साथ ज्यादा चार्जिंग का मामला बनता है तो उपभोक्ता वहां के मैनेजमेंट को लिखित शिकायत कर सकते हैं। साथ ही यदि उपभोक्ता चाहे तो कंज्यूमर कोर्ट के विकल्प का भी उभोक्ता का सहारा ले सकता है उपभोक्ता कोर्ट में उपभोक्ता निम्न प्रकार से शिकायत कर सकते हैं—

● ज्यादा वसूली की शिकायत सादे कागज पर लिखकर उसकी तीन कापी कंज्यूमर कोर्ट में जमा कर सकते हैं।

● उपभोक्ता कोर्ट में शिकायत दर्ज कराने की परिसीमा 2 वर्ष उपभोक्ता अधिनियम में प्रावधानित है साथ ही उपभोक्ता कोर्ट में परिवाद दायर करने के लिए वकील की आवश्यकता नहीं है।

● शिकायत दर्ज कराने के लिए प्रार्थना पत्र में अपना नाम, पता, दूसरे पक्ष का नाम व पता, खरीदी गई वस्तु की जानकारी, वसूली की कीमत, उत्पाद की मात्रा, खरीदने की तारीख, खरीदारी का सबूत, जैसे-बिल आदि के अलावा यह भी लिखना चाहिए। कि उपभोक्ता कैसा हर्जाना चाहते हैं।

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

सच्ची मित्रता का आदर्श : कृष्णसुदामाकथा

❐ डॉ. (श्रीमती) ममता द्विवेदी

शोध सारांश

कृष्णसुदामाकथा भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित है। सुदामा एक अकिंचन ब्राह्मण थे। महर्षि संदीपनि के आश्रम में दोनों साथ-साथ पढ़ते थे। दोनों में प्रगाढ़ मित्रता थी। अध्ययन समाप्त होने के बाद दोनों में गृहस्थ आश्रम में प्रवेश किया। कृष्ण द्वारकाधीश हुए और सुदामा एक दरिद्र ब्राह्मण। मित्रता निर्वाह का वास्तविक समय आया तो कृष्ण ने सुदामा को धन-धान्य से पूर्ण कर दिया, सारे ऐश्वर्यों की भेंट चढ़ा दी, और उनके समस्त कष्टों को हमेशा के लिए नष्ट कर दिया।

सुदामा एक सर्वथा अकिंचन ब्राह्मण थे। वे अत्यन्त अभावग्रस्त होकर भी प्रसन्नतापूर्वक गृहस्थ-धर्म का पालन करते थे। सुदामा स्वयं तो फटे-पुराने चिथड़ों में रहते ही थे, उनकी धर्मपत्नी के पास भी तन ढकने को पूरे वस्त्र नहीं थे। रहने के लिए घास-फूंस की एक जीर्ण झोपड़ी थरी और सम्पतित के नाम पर थे दो-चार मिट्टी के पात्र। यदि भिक्षा में कुछ न मिलता तो ये जल पीकर ही संतोष कर लेते। उनके मन में तनिक भी क्षोभ नहीं होता था। वे बड़े ब्रह्मज्ञानी, विषयों से विरक्त, शान्तचित्त और जितेन्द्रिय थे। पति के सुख में सुखी रहने वाली ब्राह्मणी भी सब अवस्थाओं में सन्तुष्ट रहती थी। दरिद्रता का पूरा परिकर उनके यहाँ निवास करता था। सुदामा को श्रीकृष्ण सखा होने का सौभाग्य प्राप्त था। दरिद्रता उस सौभाग्य को छीन न सकी थी।

कृष्णस्यासीद् सखा कश्चिद् ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः।
विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः॥
यदृच्छयोपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी।
तस्य भार्या कुचेलस्य क्षुत्क्षामा च तथाविधा॥

गुरुदेव महर्षि सांदीपनि के गुरुकुल में सुदामा और श्रीकृष्ण साथ-साथ पढ़ते थे। दोनों में प्रगाढ़ मित्रता थी। एक बार गुरुपत्नी ने इन दोनों को ईंधन लाने के लिए आज्ञा दी। दोनों मित्र ईंधन लेने के लिए जंगल निकल पड़े। कुछ देर बाद रात्रि होने से अन्धकार छा गया, घनघोर वर्षा आरम्भ हो गयी, जिससे दोनों मित्र मार्ग भूल गये। रात्रि भर दोनों एक वृक्ष के नीचे पड़े रहे। प्रातः गुरु जी दोनों को खोजते हुए आये। उनकी आतुरावस्था पर गुरु जी का हृदय द्रवित हो उठा। उनकी कृपा हुई, अमोघ आशीर्वाद मिला और गुरु कृपा से सुदामा को संपूर्ण वैदिक ज्ञान एवं मन्त्र तत्काल उपलब्ध हो गये। अध्ययन समाप्त हो गया। सुदामा अपने प्यारे सखा श्रीकृष्ण की मधुर स्मृति लेकर अपने घर लौटे।

---

* र

'विप्र-पत्नी बड़ी साध्वी थी। पातिव्रत्य-धर्म का पालन करते हुए वह सदैव पति की सेवा में तत्पर रहती थी। उनका प्राणाधार था पति सेवा और सुदामा के जीवन का आधार था अपने सखा श्रीकृष्ण की मधुर स्मृति।

ब्राह्मण पत्नी घासफूस के विस्तर पर आराम से सोती थी। उसने कभी सुन्दर वस्त्राभूषण, धातु के बर्तन, स्वादिष्ट भोजन आदि देखे ही न थे। उसने कभी पति से इन वस्तुओं की चाह भी नहीं की थी।

अपने आहार की भी ब्राह्मण पत्नी ने कभी चिन्ता न की। भरपेट भोजन न मिलने के कारण वह भी अत्यधिक दुर्बल थी। जिस दिन भिक्षा में कुछ नहीं मिलता, सुदामा तो व्रत करके संतोष कर लेते थे और इसी में अपना अहोभाग्य समझते थे, परन्तु बेचारी ब्राह्मणी पति को निराहार देखकर उद्विग्न हो उठती थी। पति का जर्जर तन, देख-देखकर उसका हृदय दहल उठता था।

एक दिन सुदामा की पत्नी, दुर्बलता के कारण थर-थर काँपती हुई पतिदेव के पास आयी और बोली, ''स्वामिन्! मैंने सुना है द्वारकाधीश श्रीकृष्ण आपके मित्र हैं, सखा हैं। यदि आप उनके पास चले जायेंगे और उनको मालूम होगा कि आप अन्न के बिना पीड़ित हैं तो वे आपकी ओर से न माँगने पर भी आपके अभाव का निवारण कर देंगे।''

पतिव्रता पतिं प्राह म्लायता वदनेन सा।
दरिद्रा सीदमाना सा वेपमानाभिगम्य च।।
तमपैहि महाभाग साधुनां च परायणम्।
दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुम्बिने।।[2]

सुदामा पत्नी ने कहा कि आजकल वे भोज, वृष्णि और अन्धक वंशी यादवों के स्वामी के रूप में द्वारका में ही निवास कर रहे हैं। वे इतने उदार हैं कि अन्य लोग तो वस्तुओं को उठा-उठाकर देते हैं, लेकिन वे अपने आप को ही दे देते हैं। ऐसी स्थिति में यदि वे अपने भक्तों को सांसारिक पदार्थ दे दें तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है?

आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः।
स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति।।[3]

सुदामा पूर्णतः निस्पृह थे। संतोष उनका परम धन था, वे उसे छोड़ना नहीं चाहते थे। सौन्दर्य निधि के रूप-सौन्दर्य के दर्शन की इच्छा तो उनकी भी थी, अतः इस लालसा को ठुकराना सुदामा के लिए सहज नहीं था। उन्होंने सोचा, 'धन की तो कोई बात नहीं है; सबसे बड़ी लाभ की बात यह है कि श्रीकृष्ण का दर्श हो जाएगा।'

स एवं भार्यया विप्रो बहुशः प्रार्थितो मृदु।
अयं हि परमो लाभ उत्तमश्लोकदर्शनम्।।[4]

अपनी साध्वी पत्नी से कहा, 'कल्याणि! बिना किसी उपहार के खाली हाथ मित्र के पास कैसे जाऊँ? घर में कुछ देने योग्य वस्तु हो तो लाकर दे दो।' विप्र-पत्नी ने एक कपड़े का फटा हुआ टुकड़ा लिया और उसमें लपेटकर भेंट दे दी। वह भेंट क्या थी—चार मुट्ठी चिवड़ा। वह भी घर में नहीं था। बेचारी ब्राह्मणी गाँव में गयी और दो-चार घरों से चार मुट्ठी चिपटा चिवड़ा माँगकर ले आयी।

याचित्वा चतुरो मुष्टीन् विप्रान् पृथुकतण्डुलान्।
चेलखण्डेन तान् बद्ध्वा भर्त्रे प्रादादुपायनम्।।[5]

चिवड़ों की उस पोटली को उन्होंने बगल में दबा ली और द्वारका की ओर चल पड़े। सुदामा जैसे दुर्बल व्यक्ति के लिए मार्ग तय करना सरल काम न था, परन्तु त्रिभुवन सुन्दर प्यारे सखा के दर्शन की लालसा मार्ग बीहड़ता को भुलाये हुए थी। वे मार्ग में यह सोचते जाते थे कि, 'मुझे प्रिय सखा श्रीकृष्ण के दर्शन कैसे होंगे।'

कृष्णसन्दर्शनं मध्यं कथं स्यादिति चिन्तयन्।[6]

अब ब्राह्मणदेवता द्वारका पहुँच गये। द्वारका के वैभव ने उन्हें विस्मित कर दिया। ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ देखकर वे आश्चर्य में डूब गये। अतिथि का आदर श्रीकृष्ण के महल के द्वारपालों का परम लक्ष्य था। ब्राह्मण के लिए उनके दरबार में कोई रोक-टोक नहीं थी, सब फाटक पार करके पहुँच गये वहाँ, जहाँ श्रीकृष्ण थे। उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण अपनी प्राणप्रिया रुक्मिणी जी के पलंग पर विराजमान थे। जब उनकी दृष्टि दूर से ही ब्राह्मण पर पड़ी तो वे उठकर दौड़ पड़े और उन्हें हृदय से लगा लिया।

तं विलोक्याच्युतोदूरात् प्रियापर्यंकमास्थितः।
सहसोत्थाय चाभ्येत्य दोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा॥[7]

प्यारे सखा के अंग-स्पर्श से वे अत्यन्त आनन्दित हुए। उनकी आखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। इसके बाद प्रभु सुदामा को ले जाकर अपने पलंग पर बिठाया और उनके पॉव धोकर उनका चरणोदक अपने सिर पर धारण किया। महलों को पवित्र करने के लिए चरणोदक छिड़का गया। प्रभु ने विधिवत् चन्दन, धूप, दीप आदि से ब्राह्मणदेवता की पूजा की, आतरी उतारी।

धूपेः सुरभिभिर्मित्रं प्रदीपावलिभिर्मुदा॥[8]

अब नगर के स्त्री-पुरुषों और दासी-दासों ने देखा कि इनके तन पर तो मलिन और फटा-पुराना कपड़ा है, शरीर में धूल-मिट्टी लगी हुई है, ये दुबले-पतले हैं, नसें दीख रही है, स्वयं रुक्मिणी जी चामर लेकर डुला रही हैं और श्रीकृष्ण इनकी पूजा कर रहे हैं, तब यह दृश्य देखकर सभी लोग विस्मित हो गये – ने जाने इस दीन दरिद्र ने कौन-सा पुण्य किया था, जो स्वयं लक्ष्मीपति इसकी सेवा में संलग्न हैं। अपनी पत्नी रुक्मिणी जी को पलंग पर छोड़कर इन्हें बलराम जी की तरह हृदय से लगा लिया है—

विस्मितोऽभूदतिप्रीत्या अवधूतं सभाजितम्
पर्यंकस्थां श्रियं हित्वा परिष्ववतोऽग्रजो यथा॥[9]

सुदामा जी को भोजन कराया गया और फिर वे विश्राम करने लगे। दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़ कर अपने पूर्वजीवन की उन आनन्दायक घटनाओं की चर्चा करने लगे, जो गुरुकुल में रहते समय घटित हुई थी। 'भैया। तुमने इनते दिन मेरी कोई खबर ही नहीं ली। गुरु जी हमें कितना प्यार करते थे। सुदामा के पैर दबाते हुए रमानाथ कह रहे थे।

कहाँ मैं पापी, अत्यन्त दरिद्र और कहाँ श्रीनिकेतन श्रीकृष्ण, फिर भी उन्होंने मुझे हृदय से लगाया। इतना ही नहीं, उन्हांने मुझे अपनी प्रिया के पलंग पर सुलाया। मैं थका हुआ था, इसलिए स्वयं रुक्मिणी जी ने अपने हाथों पंखा झलती-झलती रही। ओह! देवताओं के आराध्य देव होकर भी उन्होंने मेरी अत्यन्त सेवा की, मेरे पाँव दबाये।

अहो ब्रह्मण्यदेवस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया।
यद्दरिद्रतमो लक्ष्मीमाश्लिष्टो बिभ्रतोरसि॥
काहं दरिद्रः पापीयान् क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः।
ब्रह्माबन्धरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः॥
निबासितः प्रियाजुष्टे पर्यंके भ्रातरो यथा।
महिष्या वीजित श्रान्तो वालव्यजनहस्तया॥[10]
शुश्रूषया परमया पादसंवाहनादिभिः।
पूजितो देवदेवेन विप्रदेवेन देववत्॥[11]

सुदामा चित्रिलिखित से बैठे थे, उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। मुख से वाणी नहीं निकल पा रही थी।

प्रिय सखे। आपने अपने अनुरूप स्त्री से विवाह किया या नहीं? घर-गृहस्थी में तो आपका मन था ही नहीं, फिर भी कई लोग निष्काम भाव से भी गृहस्थाश्रम-धर्म का पालन करते हैं।

अपि ब्रह्मन् गुरुकुलाद् भवता लब्धदक्षिणात्।
समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्योढासदृशी न वा॥[12]

सुदामा के मौन से वे समझ गये कि वे गृहस्थ हो गये हैं। क्या आपको उस समय की बात याद है, जब हम दोनों एक साथ गुरुकुल में रहते थे। वस्तुतः गुरुकुल में ही धर्म की सच्ची शिक्षा प्राप्त होती है। पिता तो केवल जन्म मात्र देता है। उपनयन-संस्कार करके सत्कर्म की शिक्षा देने वाला दूसरा गुरु है, जो मेरे समान पूज्य है। ज्ञानोपदेश करके परमात्मा को प्राप्त कराने वाला तीसरा गुरु है, जो मेरा स्वरूप ही है। ज्ञान देने वाले गुरु से ही लोग संसार-सागर के पार जाते हैं।

स वै सत्कर्मणां साक्षाद् द्विजोतेरिह सम्भवः।
आद्योंऽग यत्राश्रमिणां यथाहं ज्ञानदो गुरुः॥[13]

इस प्रकार बड़ी देर तक बातें होती रहीं। इतने में तनिक मुस्कराकर कृष्ण ने कहा – क्यों भैया। भाभी ने मेरे लिए अवश्य ही कुछ उपहार भेजा होगा? अब तो सुदामा का मुँह लटक गया, उनकी विचित्र स्थिति थी। वे कृष्ण ऐश्वरी देखकर जमीन में गड़े से जा रहे थे। सोचने लगे कि इनकी देने लायक मेरे पास क्या है? भला क्या

ये चार मुट्ठी चिवड़ा देने योग्य हैं? नहीं, नहीं, मैं इनको चिवड़ा नहीं दूँगा। 'मुझसे भी छिपा रहे हो?' करुणानिधान ने अपने प्यारे मित्र का हाथ खींच लिया। चिवड़े में लिपटी पोटली फर्श पर गिर पड़ी और चिवड़ों के दाने बिखर गये। रमानाथ दोनों हाथों से बटोरकर उन चिउड़ों को बड़े प्रेम से पाने लगे। ऐसा लगा था मानो वे कई दिनों से भूखे हों। 'सखे। भाभी द्वारा मेरे लिए प्रेम से भेजे गये इतने स्वादिष्ट चिउड़े इतनी देर तुमने मुझे क्यों छिपाये? वाह-वाह, यह तो मेरे लिए अत्यन्त प्रिय भेंट लाये हो। जब से मैं ब्रज से आया हूँ, इस द्वारिका में ऐसा चिवड़ा कभी नहीं मिला। यह तो केवल मुझे ही नहीं, सारे विश्व को तृप्त करने के लिए पर्याप्त है।

नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे।
तर्पयन्त्यंग मां विश्वमेते पृथुकतण्डुला॥[14]

सुदामाजी रात्रिभर श्रीकृष्ण के महल में ही विश्राम किया। प्रातः उठकर उन्होंने सखा श्रीकृष्ण से आज्ञा माँगी। श्रीकृष्ण ने अपने मित्र को रोकने का बहुत आग्रह किया। सभी महारानियों ने भी सुदामा से आतिथ्य का सुअवसर देने की प्रार्थना की, परन्तु उन्हें बड़ा संकोच हो रहा था। वे अपने घर को चल दिये। द्वारकाधीश अपने मित्र को पहुँचाने बहुत दूर तक पैदल साथ आये। सुदामा जैसे आये थे, वैसे ही, उन्हीं फटे वस्त्रों में जा रहे थे। श्रीकृष्ण ने उन्हें कुछ भी न दिया। एक मुट्ठी अन्न या एक वस्त्र तक सुदामा को नहीं मिला। उन्होंने श्रीकृष्ण से कुछ माँगा भी नहीं। कुछ लज्जित-से उनके दर्शन जनित आनन्द में मग्न अपने घर की ओर चल पड़े।

स चालब्ध्वा धनं कृष्णान्न तु याचितवान् स्वयम्।
स्वगृहान् व्रीकितोऽगच्छन्महद्दर्शननिर्वृतः॥[15]

श्रीकृष्ण-स्मृति में लीन सुदामा आगे बढ़ रहे थे। उनके पाँव जमीन पर पड़ रहे थे, परन्तु मन प्यारे सखा की मधुर स्मृति में रम रहा था– 'वे दीनानाथ कितने दयालु हैं। मुझ नगण्य को भुजाओं में बाँध लिया। प्यारे प्रभु ने वे न खाने योग्य चिउड़े कितने प्यार से खाये। वे प्रभु की कृपावत्सलता पर विमुग्ध थे, वे मानो अपने आपसे ही कह रहे थे–

अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत्।
इति कारुणिको नूनं धनं मेऽभूरि नाददात्॥[16]

प्रभु की मधुर स्मृति में डूबे सुदामा ने जाने कब अपने गाँव पहुँच चुके थे। एकाएक वे चौंक पड़े–'अरे। मैं कहीं वापस द्वारका तो नहीं पहुँच गया हूँ।' सामने ही उनके घर की जगह एक विशाल महल खड़ा था। आसपास मनोहर उद्यान-उपवन लगे थे। पास ही सरोवर में कमल के पुष्प विकसित हो रहे थे। सुदामा ने आसपास के मकानों को बहुत ध्यान से देखा। वे सोचने लगे कि यह द्वारका तो नहीं है, परन्तु अपनी झोपड़ी न देखकर वे विस्मित थे। उन्होंने देखा कि उनकी अगवानी के लिए हाथ में आरती की थाल लिए एक लक्ष्मी-जैसी सुन्दरी आ रही है। किसी परस्त्री की ओर न देखने वाले सुदामा ने मुख मोड़ लिया। तभी मधुर स्वर सुनायी दिया–'देव। इस दासी को कृतार्थ करें।' सुनकर सुदामा चौंक पड़े। यह वाणी तो उनकी साध्वी पत्नी की ही थी, वे कुछ भी समझ न सके। 'कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ।' सुदामा अपनी आँखें मलने लगे।

'स्वामिन्। यह आपके चरणों की दासी है। ब्राह्मणपत्नी ने पति के चरण पकड़ लिए वह नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों से अलंकृत थी। उसके साथ की दासियाँ भी नूतन वस्त्राभूषण पहने हुए थीं। वे महल में गये। महल के अन्दर की शोभा तो और भी निराली थी। स्वर्ण की चौकियाँ, रत्नमय पलंग और मखमली गद्दों से सुशोभित कक्ष। बहुत से दास और दासियाँ जगह-जगह अपने का पर नियुक्त थे। अब सुदामा को अपने प्यारे सखा श्रीकृष्ण का कृपा-विलास समझ में आया। वे मन-ही-मन कहने लगे– 'मैं जन्म से ही भाग्यहीन और दरिद्र हूँ। मेरी इस सम्पत्ति समृद्धि का कारण क्या है? अवश्य ही परमैश्वर्यशाली श्रीकृष्ण के कृपाकटाक्ष के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं हो सकता।'

नूनं बतैतन्मम दुर्भगस्य
शश्वद्दरिद्रस्य समृद्धिहेतुः।

महाविभूतेरवलोकतोऽन्यो
नैवोपपद्येत यदून्तमस्य॥[17]

सुदामा अनासक्त भाव से अपनाा जीवन व्यतीत करने लगे। उनके अन्दर सकाम भावना तो थी ही नहीं। भोग मिलने पर भी उनका चित्त उधर नहीं गया। वे भगवान् के ध्यान द्वारा अपना अहंकार निवृत्त करके यह अनुभव करने लगे कि जो सृष्टि दिखायी पड़ रही है, यह सब स्वप्न है, माया का खेल हैं उन्होंने अपनी मनोवृत्ति को भगवान् में लगा दिया। उन्होंने मन-ही-मन आकांक्षा की।

तस्यैव में सोहृदससख्यमैत्री
दास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात्।
महानुभावेन गुणालयेन
विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसंगः॥[18]

हमारी कामना है कि सच्ची मित्रता का यह आदर्श आज वास्तविकता में परिणत हो जाय।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. भागवत 10,8,6,7
2. भागवत 10,80,8,10
3. भागवत 10,80,11
4. भागवत 10,80,12
5. भागवत 10,80,14
6. भागवत 10,80,15
7. भागवत 10,80,18
8. भागवत 10,80,21
9. भागवत 10,80,24
10. भागवत 10,81,16-17
11. भागवत 10,81,18
12. भागवत 10,80,28
13. भागवत 10,80,32
14. भागवत 10,81,09
15. भागवत 10,81,14
16. भागवत 10,81,33
17. भागवत 10,81,34
18. भागवत 10,81,36

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

व्याकरणशास्त्रं लोकजीवनं च

❐ डॉ. द्वारिका नाथ त्रिपाठी

व्याक्रियन्ते – व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेन इति व्याकरणं। वि आङ् उपसर्ग पूर्वकं डुकृञ्करणे इत्यस्मात् धातोः करणे कृते ल्युटि प्रत्यये व्याकरणशब्दस्य निष्पत्तिर्भवति । अत्र व्याकरणस्य शास्त्रं उतवा व्याकरणं च तत् शास्त्रं अत्र षष्ठी अथवा कर्मधारय समासं कृत्वा व्याकरणशास्त्रं इति समस्त पदं निष्पद्यते। इदं व्याकरणशास्त्रं विश्वमनीषाधारभूतं, ज्ञानविज्ञानाध्यात्मपरिपूर्णं, ब्रह्मस्वरूपवेदसंरक्षकं पुराणेतिहासधर्मशास्त्रदर्शन–साहित्यादिविषयाणां नियामकं चास्ति।

अत्र लोकजीवनादारभ्य मुक्ति पर्यन्तं सर्वे लोकव्यवहाराः सूत्रवृत्तिवार्तिकभाष्यमाध्यमेन संक्षेपतोभिहिताः। व्याकरणं शास्त्रमस्तीति प्रमाणं शेषावतारेण भगवतापतञ्जलिना स्वमहाभाष्यस्य पस्पशाह्निकारम्भे अथशब्दानुशासनं इत्यस्य व्याख्यां कुर्वन् आचष्टे यत्शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम्।

पाणिनीय व्याकरणे लौकिक शब्दानां वैदिक शब्दानां च अनुशासनं त्रिमुनिभिः पणिनि कात्यायनपतञ्जलिभिः कृतम्। भारतीयमनीषा स्वीकरोती यत् सर्वेषां विश्वज्ञानानां धरातलः वेदोऽस्ति। वेदाध्ययनाभावे जीवनं नो व्यर्थं अस्ति। अत एव पाणिनीय व्याकरणे लौकिकशब्दानां – यथा गौरश्वः पुरुषोहस्ती शकुनिर्मृगो ब्राह्मण इति। एवं वैदिकशब्दानां – सन्नोदेवीरभिष्टये, इषेत्वोर्जेत्वा, अग्निमीडे पुरोहितम्, अग्न आयाहिवीतय इति। ऊभयोर्लौकिक वैदिकयोः शब्दानां अनुशासनं कृतम् पतञ्जलिना।

वयं सर्वेजानीमः यत् लोकवेदयोरभेदान्वयः समवायसम्बन्धश्चेति। लोकाभावेवेदः, वेदाभावेलोकश्चानाश्रितौ भविष्यतः। अत एव व्याकरणस्य प्रयोजनं वेदसंरक्षणार्थं, ऊहार्थं, आगमार्थं, लघ्वर्थं चासंदेहार्थं प्रतिपादयन् रक्षोहागमलघ्वसंदेहाः पञ्चप्रयोजनानि पस्पशाह्निके उक्तानि।

लोक व्यवहारे जातस्य पुत्रस्य नामकरणव्यवस्था दरीदृश्यते। तत्र पञ्चमस्य संस्कारस्य विषये पतञ्जलिनोक्तं दशम्यां पुत्रस्य–दशम्युत्तरकाले पुत्रस्य जातस्य नाम विदध्याद्। घोषवदाभ्यन्तरन्तस्थः स्थमवृद्धं त्रिपुरुषानूकमनरिप्रतिष्ठितम्। तद्धिप्रतिष्टि–तमम् भवति। द्वयक्षरं चतुरक्षरं वा नाम कृतं कुर्यात् न तद्धितमिति। न चान्तरेण व्याकरणं कृतस्तद्धिता वा शक्या विज्ञातुम्।

लोक जीवने अभिवादनस्य प्रमुखं स्थानमस्ति। अभिवादनं शिष्टाचारद्योतकं विनम्रता प्रतीकं, आयुर्विद्यायशोवलानां सम्बर्धकंचाऽस्ति।

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपशेविनः,
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोवलम्।

इति मतं परिपोशयन् भाष्यकारेण पतञ्जलिना व्याकरण प्रयोजने आख्यायते अविद्वान्सः –

---

* एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग धर्म समाज स्नातकोत्तर महाविद्यालय अलीगढ़(उ0प्र0)।

अविद्वान्सः प्रत्यभिवादे नाम्नो येन प्लुतिं विदुः,
कामं तेषु तु विप्रोष्य स्त्रीष्विवायमहं वदेत्।

अभिवादे स्त्रीवन्माभूमेत्यध्येयंव्याकरणम्। अथ च पाणिनिनाऽप्याख्यातम् प्रत्यभिवादेऽशूद्रे (पा.अ. 8/2/83) इत्यनेन सुत्रेण अशूद्र विषयक प्रत्यभिवादवाक्यस्यान्तिमाक्षरटेः प्लुतोभवति।

लोकजीवने कस्यचिदपि शुभारम्भस्य प्राक् मङ्गलाचरणस्य व्यवस्था वर्तते। ताम् परिपुष्यन्तः पाणिनिना अइउण् इत्यस्मिन् सूत्रे सर्वप्रथमं वासुदेववाचकं अकारोच्चारणं, वार्तिककारेण कात्यायनेन स्व प्रथमे वार्तिके ब्रह्मनित्यं जगन्मिथ्यानुसारं नित्यवाचकसिद्धशब्दं प्रयुङ्क्ते – सिद्धेशब्दार्थसम्बन्धे इत्यत्र सिद्ध शब्दस्य उच्चारणं, पतञ्जलिनाभाष्यारम्भे मङ्गलद्योतकम् अथ शब्दस्य विधानं च भर्तृहरिणा वाक्यपदीये अनादि निधनं ब्रह्मेत्यादिना कृतम्।

लोकजीवनस्य कृते अर्थधर्मकाममोक्षं इति पुरुषार्थ चतुष्टयं प्रमुखं लक्ष्यं अस्ति। तत्र पुरुषार्थचतुष्टये अर्थं प्रथमं लक्ष्यं अस्ति। यस्य धर्मादिलक्ष्य साधने अर्थस्य महती भूमिका वर्तते। अत एव महर्षिणा अष्टाध्याय्यां वृद्धिरादैच् 1/1/1 इति सूत्रं लिखित्वा मन्ने मङ्गलं आचरितम्, तथापि वृद्धि शब्दः संज्ञातिऽरिक्तेर्थे धनादि वर्धन द्योतकः। तात्पर्यं यत् धनवृद्धिः, जनवृद्धिः, पदवृद्धिः, विद्यावृद्धिः, आयुर्वृद्धिश्चेति बहुस्वर्थेषुवृद्धिप्रयोजनं अस्ति।

लोकजीवने सर्वेवांछन्ति यत् वयं सर्वे परस्परं मिलित्वैव संयुक्त रूपेण निवसामः। सर्वेषां विचारः शुद्धं सात्विकं च भवेत्। एतदर्थं प्रायेण लोकाः प्रयतन्तेऽपि। तदुदिश्य महर्षिः अष्टाध्याय्याम् – परः संनिकर्षः संहिता द्वारासंदेशं ददौ। यत् वर्णानामतिशयितः संनिधिः संहिता संज्ञः स्यात् अर्थात् परस्परं सर्वेजनाः संहितावत्मिलित्वा निवसन्तु। एवं म्लेच्छशब्दानां चापशब्दानां प्रयोगं न कुर्वन्तु यतोहि तेऽसुराः हे अरयः हे अरयः इत्यनयोः स्थाने हेलयोहेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवुः। अथ च दुष्ट शब्दानामपि उच्चारणं विनाशस्य कारणं भवति। एतत् प्रयोजनद्वयं पतञ्जलिना उक्तम्। स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधाद्।

लोक व्यवहारस्य कृते व्याकरणशास्त्रस्य षुष्ठुज्ञानं परमावश्यकमस्ति। यदि कश्चिद् जनः स्वरतोवर्णतोवा शुद्धोच्चारणं एकस्यापि शब्दस्य कुर्यात्। तर्हि स्वर्गलोकः तेन प्राप्यते। कथ्यते यत् एकः शब्दः सम्यग ज्ञातः स्वर्गेलोके कामधुग्भवति। पतञ्जलिनापि यस्तु प्रयुङ्क्ते इति प्रयोजनंमाचष्टे–

यस्तु प्रयुङ्क्ते कुशलो विशेषे शब्दान् यथावद् व्यवहारकाले,
सोऽनन्तमाप्नोति जयं परत्र वाग्योगविद् दुष्यति चापशब्दैः।

तात्पर्यं यत् यः मनुष्यः कुशलतापूर्वकं व्यवहारकाले शुद्धान् शब्दान् प्रयुङ्क्ते सः परत्र अनन्तं जयं प्राप्नोति।

मानव जीवनस्य कृते सर्वाधिकं महत्वपूर्णं शब्दाः एव। शब्दाभावे मानवाः परस्परं व्यवहर्तुम् अक्षमाः भविष्यन्ति। मधुरशब्दप्रयोगकारणात् जनाः सज्जनाः भवन्ति, कटु शब्दप्रयोगकारणात् जनाः दुर्जनाः मन्यन्ते। शब्दस्य अनन्ताः शक्तयः। माननीय उच्चतम न्यायालयस्य कश्चिद् न्यायाधीशः कथयेत् चेत् प्रधानमन्त्रीणः व्यक्तित्वम् तत् पदानुकूलो न वर्तते, तु प्रधानमन्त्रिमहोदयोऽपि स्वपदं त्यक्ष्यति। अनेन शब्दस्यानन्तशक्तिरनुमीयते। एवं न्यायाधीशस्य एकेनैव वाक्येन सम्पूर्णं भारतवर्षम् प्रभावितम् भविष्यति। कश्चिद् पिता स्वपुत्रमाचष्टे–

यद्यपि बहुनाधीशे तथापि पठ पुत्र व्याकरण,
स्वजनः श्वजनोमाभूत् सकलः शकलं सकृच्छकृदिति।

तात्पर्यं यत् व्याकरणशास्त्र – लोकजीवनयोर्मध्ये न काचिल्लक्ष्मणरेखाऽस्ति। व्याकरणशास्त्रं पौनः पुण्यं लोक जीवनेभ्यः मर्यादां स्थापितवान्। सर्वाणि कार्याणि लोकजीवनस्य व्याकरणानुसारमेव प्रचलन्ति। यदि समाज शब्द मध्ये आङ् उपसर्गस्य प्रयोगो न भवेत्

तु समाजः समजो भविष्यति समज शब्दः पशुसमूहवाचकोऽस्ति। परञ्च सम् आङ् उपसर्ग पूर्वकं अज् धातोर्निष्पन्नः समाजशब्दः सम्यक् प्रकारेण मर्यादापूर्वकं अजनशीलः समाजशब्दः मानवसमूहानां कृते प्रयुङ्क्ते।

समाजे यत्किञ्चिदपि भवति तत् व्याकरणशास्त्रानुसारमेव। वयं अवगताः स्मः यत् अस्माकं लोक जीवने अप शब्दानामपि यदा कदा प्रयोगः श्रूयते कृयते चाऽपि। एतदपि महर्षिपाणिनेः अष्टाध्याय्यां मिलति यथा नाऽदिन्या क्रोशे पुत्रस्य (8/4/48) इत्यस्य सूत्रस्य वृत्तौ दीक्षितेन लिखितम् वर्तते। यत् पुत्र शब्दस्य न द्वेस्त आदिनि शब्दे परे आक्रोशे गम्यमाने। पुत्रादिनि त्वमसिपापे – इत्यपशब्द प्रयुक्ते वाक्ये पुत्रशब्दस्य उकारोत्तरवर्ति तकारस्य द्वित्वं अनचिचेत्यनेन प्राप्तं तथापि नाऽदिन्याक्रोशेपुत्रस्येति निषेधान्न भवति। एवमेव (तत्परे च) इति वर्तिकेन पुत्र पुत्रादिनि त्वमसिपापे, इत्यस्मिन वाक्येऽपि अपशब्द कारणात् प्रथमपुत्रशब्दे तकारस्य द्वित्वनिषेधोजातः। अतः सोर्षम् कथितुम् शक्यते यत् व्याकरणशास्त्रं लोकजीवनं च परस्परं वागर्थाविवसम्पृक्तौ स्तः। अत एव लोकमङ्गलकामनया भगवता पतञ्जलिना त्रयोदश प्रयोजनानि कथितानि – यथा तेऽसुराः दुष्टः शब्दः, यदधीतम्, यस्तु प्रयुङ्क्ते, अविद्वांसः, विभक्तिंकुर्वन्ति, यो वा इमाम, चत्वारि, उतत्वः, सक्तुमिव, सारस्वतीम्, दशम्यां पुत्रस्य, सुदेवो असि वरुणेति। यद्यपि एतेभ्यः किञ्चित् उदाहरणं स्वशोधपत्रे मया पूर्वम् एव प्रदत्तं परञ्च इह समवाय रूपेण सर्वेषां त्रयोदश गौण प्रयोजनानां परिगणनं आवश्यकमस्ति। इमानि सर्वाणि त्रयोदश प्रयोजनानि लोकजीवनहितायैव कृतानि। एतेभ्यः प्रयोजनेभ्यः पूर्वमपि पञ्चप्रयोजनानां उल्लेखोऽस्ति, परञ्च तेषां रक्षोहागमलघ्वसंदेहाः पञ्चप्रयोजनानि प्रायेण वेदविषयकाणि सन्ति। परञ्च त्रयोदशानां तूल्लेखः केवलं लोक जीवनायैव प्रतिभाति। अतः व्याकरणशास्त्रं सर्वथा लोकजीवनस्य कृते एव कृतम् इति मम् तननमस्तीति दिक्।

संदर्भ :–

1. रक्षोहागमलघ्वसंदेहाःप्रयोजनम्। (पा.म.भा. पस्पशाह्निकम्)
2. अथ शब्दानुशासनं। शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमधिकृतम् वेदितव्यम्। (पा.म.भ. पस्पशाह्निकारम्भे)
3. केषां शब्दानां – लौकिकानां वैदिकानां च। (पा.म.भा. पस्पशाह्निकारम्भं)
4. तावेवायुतसिद्धौ द्वौ विज्ञातव्यौ ययोर्द्वोः अनस्य देकमपराश्रित मेवावतिष्ठते। (केशवमिश्र तर्कभाषा प्रत्यक्ष खण्डं)
5. दशम्यां पुत्रस्य (पा.म.भा. पस्पशाह्निक प्रयोजनान्तर्गतम्)
6. (क) अविद्वांसः। (पा.म.भा. पस्पशाह्निक प्रयोजनान्तर्गतम्)
   (ख) प्रत्यभिवादे सूत्रे (पा.अ. 8/2/83)
7. (क) अथ शब्दानुशासनं (पा.म.भा. पस्पशाह्–निकारम्भं)
   (ख) सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे (का. वा. 1/1)
   (ग) अनादि निधनं ब्रह्म शब्दत्वं यदक्षरं, विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः। *(वा.प.ब्र.का.)*
8. वृद्धिरादैच् (पा.अ. 1/1/1)
9. (क) परः सनिकर्षः संहिता (पा.अ. 1/4/109)
   (ख) तेऽसुराः दुष्टः शब्दः (पा.म.भा. पस्पशह्–निकाऽन्तर्गतम्)
10. यस्तु प्रयुङ्क्ते कुशलो विशेषे शब्दान् यथावद् व्यवहारकाले, सोऽनन्तमाप्नोति जयं परत्र वाग्योविवदुष्यति चाप शब्दैः। (पा.म.भा. पस्पशाह्निकाऽन्तर्गतम्)
11. इषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाऽभिविधौ च यः, एतमातंङितं विद्यात् वाक्यस्य मरणयोर्ङित्। (भट्टोजिदीक्षित प्रकृतिभाव सन्धौ)
12. नाऽदिन्याक्रोशे पुत्रस्य। (पा.अ. 8/4/48)

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

वामनपुराणे सरस्वत्याः वैषिष्ट्यम्

❐ डॉ.सूर्यनारायण गौतमः

शोध सारांश

वामनपुराणे भगवत्पादच्छ्रीव्यासेन भगवतच्छ्रीविष्णोः वामनावतारकथा विस्तरेण वर्णिता। तत्र अवतारधारणकारणं विलिख्य भौतिकानां समास्तानां पदार्थानां वर्णनञ्चकार। व्यासदेवस्य चिन्तनं अलौकिकमासीत् अतः तेन चिन्तितम् पर्यावरण रहितं समाजं दुःखावसाद ग्रसितो मा भूदिति विचिन्त्य तेन स्वरचनाभिः नदीभ्यः, वृक्षवनस्पतिभ्यश्चोद्धृत्य जनानां चेतांसि तान् प्रति सम्यकाकृष्टानि।

भारतीय संस्कृतौ वेदानन्तरं पुराणान्येव पूज्यतरमस्थानं लभन्ते इति विषयं केन नावगम्यते? न केवलं वेदान्तरं खलु पुराणानि पूज्यान्यपितु स्वयं पुराणानि 'पंचमो वेद' इति लोकमान्यताऽपि विद्यते। चतस्राः वेद संहिताः पंचमो पुराण संहिता। वेदेषु यानि विषयानि निबद्धानि तानि सर्वाणि पुराणेष्वेव विस्तरेण स्थितानि। वेदाः कठिनाः खलु जनश्रुति अतो वेदानां सिद्धान्तप्रतिपादने सरस सुमधुर भाषया पुराणानि अग्रगण्यानि। पुराणानां महत्त्वं प्रतिपादने श्रीव्यास महाभागेन स्वयमेवोक्तम्–

'पुराण सहिता पुण्याः कथा धर्मार्थसंश्रिताः।'[1]

पौराणिक्याः कथाः धर्मार्थकाममोक्षप्रदाः। ताः न केवलं जनान् धार्मिकोन्मादं प्रयच्छन्ति अपितु प्राग्जनानामाहार–विहार, शयन, कृषि, वाणिज्यादि भौतिकव्यवहार शिक्षामपि प्रयच्छन्ति।

वामन पुराणे मुख्यतया त्रिविक्रम रूपधारिणं भगवतः श्रीविष्णोः पराक्रमः प्रदर्शितः। तस्य मूलाधारः वेद एव। यथा–

त्रीणि पदानि विचक्रिरे त्रेधा निदधे पदम्।
स मूढमस्यपा ग्वुं सुरे स्वाहा।।[2]

इदमाख्यानं वेदमन्त्रस्य भावोऽति कठिनं वेदे वर्तते खलु। जनसामान्य कृते तु अनर्थकमेव। अतोऽस्य मन्त्रस्य व्याख्याने भगवत्पादः श्री व्यासः वामनावतार रूपिणं कथां सर्ज्य सरला सरसा सुमधुरा मनोहरा भाषया जनानां मध्ये उपस्थापयामास। येन जनसामान्य मध्येऽपि वेदस्य अतिगंभीरं, वैज्ञानिकतत्त्वंञ्च विद्यते

अस्माकं शोध–विषयः पुण्यतमायाः सरस्वत्याः नद्याः माहात्यम्यम् विद्यते अतः तस्याः विषये चर्चां करिष्ये। श्रीवामनपुराणस्याद्यं परिचयं प्रदास्यते मया संक्षिप्तेन। वामनपुराणे पंचनवति अध्यायाः तासु

* एसो. प्रोफे. (संस्कृत) श्री जे. जे. टी. विश्वविद्यालय, झुन्झुनू (राज.)

द्विनवतिसप्तसतोत्तरपंचसहस्र (5792) श्लोका राराजन्ते।

श्रीवामनपुराणस्य द्वात्रिंशत्तमेऽध्याये लोमहर्षण सूतस्य ऋषि संवादे च ऋषयः पृष्टवन्तः। भो महात्मन् सूत! कुरुक्षेत्रे प्रवह्यमाना सरस्वती इत्यभिधाना लोकविश्रुता सलिला कथमुत्पन्ना ? यस्यामुभयोर्पार्श्वे नैकतीर्थानि पापमोचनानि विराजन्ते खलु। यथा –

कथमेषां समुत्पन्ना नदीनामुत्तमा नदी।
सरस्वती महाभागा कुरुक्षेत्रप्रवाहिनी।।[3]

ऋषीणां जिज्ञासु वचोभिराकृष्टमनसोयुतः लोमहर्षको लोमहर्षणः गभीरया सुमधुरया वाचा उवाच–स्मरणमात्रेणैव पापमोचयिन्याः सरस्वत्याः उद्भवः एकस्मिन् प्लक्ष वृक्षतः जातः। इयं पावनी नदी सहस्रान् पर्वतान् भिन्द्य द्वैत वने प्रविष्टा एषा जनुश्रुतिः।[4] अस्याः माहात्म्य प्रकटने वामनपुराणे उक्तम् यत् न केवलं सामान्यजना एव प्रणिपत्य नमस्कुर्वन्ति अपितु ऋषयः महर्षयः अपि नतेनमूर्धना प्रणिपत्य नमस्कुर्वन्ति।[5] वामनपुराणे नद्याः स्तुतौ सरस्वतीं प्रति उक्तम् तत्र सा लोकानां जननी, देवानामरणिः चास्ति। सा तु सदासद्मोक्षप्रदा सार्थकं पदं, यौगिकक्रियायुतं पदार्थानामिव प्रविष्य स्थितास्सन्ति।[6]

नद्याः स्तुतौ अग्रैवोक्तम्–यथा काष्ठे अग्निः, पृथिव्यां गन्धः भवत्येव तथैव नद्याऽभ्यान्तरे सकलजगत्सहितं ब्रह्मोऽपि निवसति।[7] तत्र इयमपि उक्तम् यत् चराचरवस्तूनामवस्थितिः ओंकारे एव। जगत्यां यत्किमपि अस्त्वित्त्वयुतं अस्त्वित्त्वविहीनं च वर्तते तत् सर्वत्रोंकारस्य त्रयो मात्राः अनुस्यूताः खलु। भूर्भुवः स्वरादयः त्रयो लोकाः, ऋगादि त्रयो वेदाः, अन्वीक्षिकी प्रभृति त्रिस्राः विद्याः, गार्हपत्यादि त्रयोग्नयः, सूर्यचन्द्रादि त्रयो ज्योतींषि, धर्मादिकाममोक्षादिवर्गाः, सत्त्वरजतमादि त्रयो गुणाः ब्राह्मणादि त्रयो वर्णाः, त्रयो देवाः, वात–पित्तादि त्रयो धातवः, जागृत स्वप्न सुसुप्ति त्रिस्रावस्थाः, पितामहादि त्रयो पितरः ओंकारस्य मात्रास्वरूपा एव। सोऽपि नद्यामेव निहितम्।[8]

न केवलं अनेन विधानेन महत्त्वम् विहितमपितु अग्रेऽपि उक्तम्– ब्रह्मवादिनः नद्याः शक्तौ सोमसंस्था, हविः संस्था, तथा च पाकसंस्थायाः कर्माणि सम्पादयन्ति। अर्धमात्रास्थिता नद्याः अनिर्देश्य–पदमधिकारी, अक्षयः दिव्यश्चापरिणामी विद्यते खलु।[9]

चान्ते उक्तम् नद्याः माहात्म्यवर्णने– अहं नद्याः माहात्म्यम् सम्पूर्ण इन्द्रियेभ्यः कर्त्तुमक्षमः। यतोऽहि नद्याः स्वरूपं धर्ममयं, सर्जनमयं, ज्योतिर्मयं च विद्यते। तामेव विश्ववासः, विश्वरूपः, विश्वात्मा च निगदन्ति बुधाः।[10]

सरस्वती कामधेनुमिवस्तुता। तां नित्यपदार्थानां तथा च अनित्य पदार्थानां, सूक्ष्मपदार्थानां, भूमिस्थ पदार्थानां अन्तरिक्षस्थितपदार्थानां यद्वा अन्यस्मिन्स्थाने स्थितानां पदार्थानि च सन्ति तेषां सिद्धिः सरस्वत्याः आराधनेननायासेनैव जायते।[11]

वामनपुराणे विष्णुजिह्वा मन्यते सरस्वत्याम्। सालस्यरहिता ब्राह्मणाधीना च वर्तते।[12] सरस्वत्याः स्थानम् कुरुक्षेत्रे एव विद्यते। श्रीवामनपुराणे मार्कण्येय वचनम् विद्यते खलु–

आद्यं ब्रह्मसरः पुण्यं ततो रामहृदः स्मृतः।
कुरुणा ऋषिणा कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम्।।
तस्य मध्येन वै गाढं पुण्या पुण्यजलावहा।।[13]

सरस्वत्याः प्रवाहः प्रतीचीं दिशि वर्तते। सरस्वत्याः तटे सहस्राणि तीर्थानि सन्ति तत्र कोटि ऋषयः तां सेवन्ति च। तीर्थानां महत्त्वं प्रतिपादने श्रीवामनपुराणे उक्तम्–

ये स्मरन्ति च तीर्थानि देवताः प्रणियन्ति च।
स्नन्ति च श्रद्दधानश्च ते यान्ति परमां गतिम्।।[14]

सरस्वत्याः प्रवाहस्य प्रवाहेण कुरुक्षेत्रस्य महत्त्वं महत्तरम् इति व्यासेनोक्तम्–

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् कुरुक्षेत्रं स बाह्यभ्यन्तः शुचिः।।[15]

श्रीवामनपुराणे चतुर्विध मुक्तिसाधनानि व्यासेनोक्तम्। यथा–

ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा।
वासः पुसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरुक्ताचतुर्विधा।।[16]

अतः वयम् कथयतुं शक्नुमः यद्वामनपुराणे उल्लिखिता सरस्वती इत्यभिधाना नदीस्तुतिः न केवलं आधुनिक काले प्रासगिका अपितु तस्या प्रासंगिकता सार्वकालिका एव। यतो हि मानवजीवनस्य मुख्योद्देश्यं चतुर्विध पुरुषार्थ प्राप्तिः इति शास्त्रप्रमाणम्। तत्कृते नद्याः सर्वदा सहायिका एव अतः मानव जीवने तस्यां सर्वोत्कृष्टम् स्थानमिति सिद्धम्।

सन्दर्भाः–

1. महाभारत आदि पर्व 1/16
2. शुक्ल यजुर्वेद संहिता
3. वामनपुराणे 32/1
4. प्लक्षवृक्षात् समुद्भूता सरिच्छेष्ठा सनातनी।
   सर्वपापक्षयकारी स्मरणादेव नित्यशः।।
   (वामनपुराणे 32/3–4)
5. तस्मिन्प्लक्षे स्थितां दृष्ट्वा मार्कण्डेयो महामुनिः।
   प्रतिपत्य तदा मूर्ध्ना तुष्टावाथ सरस्वतीम्।।
   (वामनपुराणे 32/5)
6. त्वं देवि सर्वलोकानां माता देवारणिः शुभा।
   सदासद् देवि यत्किंचिन्मोक्षदार्य्यवत् पदम्।।
   (वामनपुराणे 32/6)
7. दारुण्यवसितो वह्निर्भूमौ गन्धो यथा ध्रुवम्।
   तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः।।
   (वामनपुराणे 32/8)
8. ओंकारक्षरसंस्थानं यत् तद् देवि स्थिरास्थितम्।
   तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद् देवि नास्ति च।।क।।
   त्रयोलोकास्त्रयो वेदास्त्रैविद्यं पावकस्थितम्।
   त्रीणि ज्योतींषि वर्गाश्च त्रयो धर्मादयस्त्रयः।।ख।।
   त्रयो गुणास्त्रयो वर्णास्त्रयो देवास्तथा क्रमात्।
   त्रैधातवस्तथावस्थाः पितरश्चैवमादयः।।ग।।
   एतान्मात्रात्रयं देवि तव रूपं सरस्वति।
   विभिन्नदर्शनामाद्यां ब्रह्मणो हि सनातनीम्।।घ।।
   (वामनपुराणे 32/9–12)
9. अनिर्देश्य पदं त्वेतदर्द्धमात्राश्रितं परम्।
   अविकार्यक्षयं दिव्यं परिणामविवर्जितम्।।
   (वामनपुराणे 32/14)
10. स विष्णुः स वृषो ब्रह्मा चन्द्रर्कज्योतिरेव च।
    विश्वावासं विश्वरूपं विश्वात्मानमनीश्वरम्।।
    (वामनपुराणे 32/16)
11. येऽर्था नित्या ये विनश्यतिन् स चान्ये,
    येऽर्थाः स्थूला ये तथा सन्ति सूक्ष्माः।
    ये वा भूमौ येऽन्तिरिक्षेऽन्यतो वा,
    तेषां देवि त्वत् एवोपलब्धिः।।
    यद्वामूर्तं यदमूर्तं समस्तं,
    यद्वा भूतेष्वेकमेकं च किंचित्।
    यच्च द्वैते व्यस्तभूतं च लक्ष्यं,
    तत्सम्बद्धं त्वत्स्वरैर्व्यञजनैश्च।।
    (वामनपुराणे 32/21–22)
12. प्रत्युवाच महात्मानं मार्कण्येय ं महामुनिम्।
    यत्र त्वं नेष्यते विप्र तत्र यास्स्यामतीन्द्रिता।।
    (वामनपुराणे 32/23)
13. वामनपुराणे 32/24
14. ये स्मरन्ति च तीर्रिनि देवताः प्रीणयन्ति च।
    स्नन्ति च श्रद्यधानश्च ते यान्ति परमां गतिम्।।
    (वामनपुराणे 33/5)
15. अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां बतोपि वा।
    यः स्मेरत् कुरुक्षेत्रं स ब्राह्याभ्यन्तरः शुचिः।।
    (वामनपुराणे 33/6)
16. ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा।
    वसुः पुसां कुरुक्षेत्रे मक्तिरुक्ता चतुर्विधा।।
    (वामनपुराणे 33/8)

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

नारदीयपुराणे गणितज्योतिषम्

❐ डॉ. देवेन्द्र कुमार तिवारी

शोध सारांश

पुराणवाङमयेषु नारदीयपुराणस्य महत्वं वेदाङ्दृष्ट्याऽपि दृश्यते। भारतीयजन्मानसेषु ज्योतिषशास्त्रं प्रति समादरभावो विद्यते। त्रिकन्धं ज्योतिषमुच्यते। अत्र त्रिकन्धेषु गणितज्योतिषविषये नारदीयपुराणस्य विचारः प्रस्तुयते। ज्योतिषशास्त्रमादौ ब्रह्मणा प्रोक्तम्। अस्य शास्त्रस्य ज्ञानमात्रेण मानवानां धर्मसिद्धिर्जायते। ज्योतिषं शास्त्रं वेदस्य नेत्रं प्रोक्तम्। ज्योतिषं शास्त्रं त्रिस्कन्धं शास्त्रं वर्तते। ज्योतिषशास्त्रे चतुर्लक्षश्लोकाःप्रोक्ताः। गणितं, जातकं (होरा), संहिता चास्य स्कन्धत्रयं प्रोक्तम्। गणितज्योतिषम् परिकर्मणः ग्रहाणां गतेः स्फुटक्रियायाश्च स्पष्टं वर्णनं विदधाति। ग्रहाणां योगान्तरं गुणनं, भजनम्, वर्गः, वर्गमूल, घनम्, घनमूलञ्च, परिकर्म प्रकीर्तितम्। अनुयोगे दिक्देशकालज्ञानं चन्द्रसूर्यादीनां ग्रहाणामुदयास्तं, ग्रहाणां छायाधिकारः, चन्द्रशृंगोन्नतिः, ग्रहयुतिश्च पातमहापातादीनां साधनञ्च विस्तरेण प्रकीर्तिताः। जातकस्कन्धे राशिभेद–ग्रहयोनि–वियोनि–गर्भाधान–जन्म–अरिष्ट–आयुदाय–दशाक्रम–कर्माजीव–अष्टकवर्ग–राजयोग–नाभसयोग–चन्द्रयोग– प्रव्रज्यायोग–राशिशील–ग्रहदृष्टिफल–ग्रहभावफल–जन्मकाल–राशि–द्रेष्काण–नवांशप्रभृतीनां सम्यक् वर्णनं विहितम्। एवञ्च ज्योतिषं शास्त्रं मानवानां पथप्रदर्शकं शास्त्रं विद्यते।

ज्योतिषशास्त्रे संहितास्कन्धे ग्रहचार–वर्षलक्षण–तिथि–दिन–नक्षत्र–योग–करण–मुहूर्त–उपग्रह–सूर्य–संक्रान्ति–ग्रहगोचर–चन्द्र–तारा–बलं–लग्न–ऋतुविचार–गर्भाधान–पुंसवन–सीमंतोन्नयन–जातकर्म नामकरण– अन्न–प्राशन–चूडाकरण–कर्णवेध–विवाह–प्रतिष्ठा–गृहलक्षण–यात्रा–गृह–प्रवेश– वृष्टिहान– कर्मवैलक्षण्य– उत्पत्तिप्रभृतीनां विस्तरेण वर्णनं प्रस्तुतीकृतम्। ज्योतिषशास्त्रस्य मूलं गणितस्कन्धमेव वर्तते। यतो हि स्कन्धत्रयं गणितस्कन्धेऽवलम्वितं विद्यते। गणितं विना ज्योतिषशास्त्रस्य कस्यचिदपि स्कन्धस्य ज्ञानं सम्यङ् नोपलभ्यते। अतः आदौ गणितस्कन्धस्यैव वर्णनमत्र प्रस्तुतीक्रियते।

नारदीय–पुराणे गणितज्योतिषस्यादौ एकस्मादारभ्य परार्द्धसंख्यां यावत् संख्यानां प्रसंख्यानम् कृतं विद्यते। एकं दशशतं–सहस्त्रम् अयुत–लक्ष–प्रयुत–कोटि–अर्बुद–अजखर्व– निखर्व–महापद्म–शंकु–जलधि–अन्त्य–मध्य–परार्द्धं यावत् दशगुणोत्तराः–संख्याः प्रकीर्तिताः। इकाईतः समारभ्य दशगुणोत्तराः संख्याः स्थानमानेन सन्निरूपिताः।

* अतिथि विद्वान् शास. संस्कृत महाविद्यालय, भितरी जिला–सीधी (म.प्र.)

एकस्मिन् दशगुणनात् दश संख्या भवति। दशसंख्यायां दश गुणनात् शतं भवति। एवञ्च शतसंख्यायां दशगुणनात् सहस्त्रसंख्या भवति। संख्यानां स्थानमानं दश संख्यया निर्धारितम्। संख्याः स्थानमानेन दशगुणोत्तराः निर्धारिताः। यथास्थानीया–नामंकानां योगः क्रमादुत्क्रमतो वा विधेयः। गुण्यस्यांतिमांकेन गुणकेन गुण्यम्। तदनन्तरं पार्श्ववर्तिनो अंका अपि गुण्याः। एवमंकानां गुणनेन गुणनफलं लभ्यते। एवमेव भाज्यात् भागफलमपि प्राप्तव्यम्। भाजकेन सह सगुणनात् यावत् भाज्येन शुद्धयेत् तावदेव लब्धं भागफलं प्रोक्तम्–

'एकं दश शतं चैव सहस्त्रायुतलक्षकम्।
प्रयुतं कोटिसंज्ञा चार्बुदमब्जं च खर्वकम्।।
निखर्वं च महापद्मं शंकुर्जलधिरेव च।
अन्त्यं मध्यं परार्द्धं च संख्या दशगुणोत्तराः।।
मादुत्क्रमतोवापि योगः कार्योत्तरं तथा।
हन्यात् गुणेन गुण्यं स्यात्तेनैवोपांतिमादिकान्।।[1]

समांकद्वयसंगुणनेन वर्गः स्यात् गणितभाषायां वर्गः कृतिरित्युच्यते। यथा (3X3=9) (4X4=16) (8X8 =64) वर्गसंख्यानां वर्गमूलमानयनायान्तिमकात् विषमान्त्यक्त्वा मूलं क्रमात् न्यसेत्। अन्तिमे विषमे यावत् विभजेत् तावद् विभाजनीयम्। एवं वर्गमूलमानीय पृथक् न्यसेत्। यथा–''समांकतोऽयोवर्गः स्यात्तमेवाहुः कृतिं बुधाः।

अंत्यात्तु विषयात्यक्त्वा कृतिं मूलं न्यसेत् पृथक्।।2

तदनन्तरं द्विगुणितेन मूलेन समेंऽकेविभजेत्, लब्धिश्च विषमात् शोधयेत्। द्विगुणितं पंक्तौ न्यसेत्। एवं मुहुर्मुहुः क्रियया पंक्तेरर्धः वर्गमूलं कृतिमूलं या लभ्यते। यथा–वर्गमूलम् (कृतिमूलम्)

पंक्तिः	25
2	625
2	4
45	225
5	225
50	XXX

समांकानां त्रिःगुणनफलं घनः प्रोच्यते। घनस्य दक्षिणभागतः प्रथमेंके विषमचिन्हं प्रकुर्यात् (रेखारूपं), तस्य वामभागे पार्श्ववर्तिनोर्द्धयोंरकयोः समारेखा (––) विदध्यात्। एतल्लक्ष ''अघन'' समं वा कथ्यते। एवमेवान्तिमांकं यावत् एकघनं द्विघनं चिन्हं विधेयम्। विषमघने घनं विशोध्यम्। यावत् घनं शोध्यते तावत् शोधनीयम्। तं घनं पृथक् न्यसेत्, तस्य घनमूलं कुर्यात्, तस्य घनमूलस्य वर्गे न्यसेत्, ततश्च तम् त्रिगुणं विधेयम्। आद्यंके विभजेत्, लब्धिं च पृथङ्न्यसेत्। लब्धेश्च वर्गं कुर्यात्। ततश्च अन्त्यप्रथममूलांकं त्रिगुणं विदध्यात् तश्च पश्चादंकात् तं शोधयेत्। पृथङ् न्यस्तं लब्धिघनं अग्रिमत् घनांकात् विशोधयेत्। एवमेव क्रियासमभिव्याहरणेन घनमूलं सिद्धं भवति। घनमूलं लभ्यते। यथा–

समत्र्यङ्कहतिप्रोक्तो घनस्तं त्रिविधिः पदे।
प्रोच्यते विषमं त्वाद्यं समेद्वे च ततः परम्।।
विशोध्यं विषयादन्त्याद् घनं तन्मूलमुच्यते।
त्रिध्नात् भजेन् मूलकृत्या समं मूले न्यसेत् फलम्।।
तत्कृतित्वेन निहिताह्न्यिघनीं चापि विशेधयेत्।
घनं च विषमादेवं घनमूलं मुहुर्भवेत्।।[3]

नारदीये पुराणं भिन्नानामपि समाधानं प्रस्तौति। हराणां परस्परसंगुणनेन तथैव चांशानां संगुणनेन तुल्यानि भिन्नानि भवन्ति। भागप्रभागे अशेनांशः हरेण हरं गुणयेत्। भागानुवंधे भागापवाहे च यद्येकः अंकः स्वांशेनाधिकः ऊनो वा स्यात् तदा तत्रस्थे हरहरेण गुण्यम्। ततश्च स्वांशेनाधिकः ऊनितेन चांशेन गुणनं विधेयम्। भागानुवन्धे हरांशानां योगं विधाय, भागापवाहे च हरांशानामन्तरं कृत्वा गुणनं विधेयम्।

अनेन विधिना भागानुबन्धस्य भागापवाहस्य च फलं सिद्धयेत्। यत्र हरो न स्यात् तत्रैकं हरं प्रकल्पयेत् भिन्नस्य गुणनप्रक्रियायां अंशेनांशः गुणयेत् हरेण हरञ्च गुणयेत्। ततश्च विभजेत्। अनेन विधिना भिन्नस्य गुणनफलं प्राप्यते। यथा (2/7x3/8) अत्र द्वौ, त्रयश्चांशौ स्तः। सप्त, अष्ट च हरौ स्तः। अत्रांशेनाशं गुणयेत् (2x3=6) हरेण हरञ्च गुणयेत्।

(7x8=56)। ततः हरमंशेन विभजेत् (56÷6) = (3/628 3/28)।[4]

भिन्नसंख्यानां भागहारे भाजकस्य हरमंशं च परिवर्त्य (हरमंशंमंशं च हरं कृत्वा भाज्यस्य हरांशाभ्यां सह गुणन–प्रक्रिया विधेया। एवं भागफलं लभ्यते यथा – (4/5 ÷ 2/5) भाजकस्य हरांशपरिवर्तनात् = (2/1x1/1) 2 एतदेव भागफलं लब्धम्।[5]

भिन्नसंख्यानाम् वर्गानयनमपि पुराणे निर्दिष्टम्। भिन्नसंख्यानां वर्गमानयनाय संख्यायाहरांशयोः पृथक्–पृथक् वर्गसाधनं विदध्यात्। एवमेव घनसाधनमपि विधेयम्। एवमेव वर्गमूलानयनमपि हरांशयोरेव पृथक्–पृथक् कार्यम्। यथा (3/7 संख्यायाः वर्गः 3/7; 3/7 =9/49 अस्य वर्गमूलं 3/7 स्यात्। घनश्च (3/7; 3/7; 3/7=27/343 स्यात्।

पुराणे विलोमविधिनाराशीनां ज्ञानाय विधिः प्रदिष्टोऽस्ति। विलोमविधिना राशिज्ञानाय दृश्येहरं गुणकं विधाय गुणकं चहरं विधाय, वर्गंमूलं, मूलञ्च वर्गं विधाय, ऋणं धनं, धनं च ऋणं कृत्वा विपरीता क्रिया विधेया। विपर्ययविधिना इष्टसंख्या लभ्यते। अत्र वैशिष्ट्यं यत्रांशः संयुक्तस्तत्र हरेणांशं विशोध्य हरकल्पना विधेया, अंशश्च तथैव स्यात्। तदा दृश्ये राशौ विलोमक्रिययाभीष्टा संख्या लभ्यते। यथा–

'छेदं गुणं गुणं छेदं वर्गंमूलं पदं कृतिम्।
ऋणं स्वं स्वमृणं कुर्यात् दृष्ये राशिप्रसिद्धये।।
अथ स्वांशाधिकोने तु लवाख्योनोहरोहरः।
अंशस्त्वविकृतस्तत्र विलोमे शेषयुक्तवत्।।
उद्दिष्टराशिः संक्षिप्तो हुतोंऽशौ रहितः पुनः।
इष्टघ्नदृष्टेनैतेन भक्तराशिरनीशितः।।[6]

पुराणे संक्रमणगणितस्य प्रश्नानां समाधानमपि कृतं वर्तते। संक्रमणविधौ प्रोक्तं यत् 'संक्रमण' विधौ द्वयोः संख्ययोर्योगान्तरं ज्ञातं चेत्तदा योगं द्विः स्थाप्य एकत्र अन्तरं संयुज्यार्धं विदध्यात् तदा द्वयोरेका संख्योपलब्धा भवेत्। अन्यत्र चान्तरं विधायार्द्धं प्रकुर्यात्। तदापरा संख्या लब्धा स्यात्। एवं राशिद्वयी ज्ञाता चेत्, वर्गसंख्यासु यदि द्वयोः वर्गमूलं ज्ञातं यस्या वर्गसंक्रमणं ज्ञातं स्यात्तदा द्वितीया संख्योपलब्धा स्यात्। एवञ्च राशिद्वयी ज्ञाता भवति। वर्गसंख्यायां यदि द्वयोः राश्योः वर्गान्तरं ज्ञातं चेत् तदा वर्गान्तरेषु अन्तरस्य भागेन या लब्धिर्जायते तदैव तस्य योगः। योगस्य ज्ञाने सति वर्गस्यान्तरेण विभजेत् या लब्धिः स्यात् सैव तयोर्योगः। योगे ज्ञाते सति पूर्वोक्तप्रकारेण संख्या नेया। अनेन विधिना राशिद्वयानयनं कार्यम्[7]

नारद–पुराणम् वर्गकर्मगणितप्रक्रिया यानिष्टज्ञानाय विधिः प्रोक्तः। इष्टस्य वर्गं कृत्वा, वर्गमष्टगुणं विधेयम्। तत्रैकं विशोध्यम्। तदनन्तरमर्धं विदध्यात्। तत्पश्चात् तमिष्टेन विभजेत्। तदा एका संख्या लब्धा स्यात्। अथवादष्टं कल्पयित्वा द्विगुणितमिष्टमेकेन विभजेत्। लब्धिमिष्टेन योजयेत् तदा प्रथमा संख्या लब्धा स्यात्। द्वितीयसंख्या एकः स्यात् द्वे संख्ये ते एव स्याताम् द्वयो वर्गयोः योगान्तरे एकन्यूनेऽपि वर्गाङ्कः एवावशिष्यते। कस्यापीष्टस्य वर्गस्य वर्गस्तथा तस्य एव धनं विधाय पृथक्–पृथक्, अष्टगुणं कार्यम्। ततः प्रथमे एकस्य योगेन द्वयोर्ज्ञानं स्यात्, विधिरेष व्यक्ताव्यक्तयोरुपयुक्ता प्रोक्ता। यथा–

गजघ्नीष्टकृर्तिध्यैका दलिता चेष्टभाजिता।
एकोऽस्य वर्गो दलितः सैको राशिः परो मतः।।
द्विगुणेष्टहृतं रूपं श्रेष्ठं प्राग्रूपकं परम्।
वर्गयोगान्तरेष्येके राश्योर्वगौ स्त एतयोः।।
इष्टवर्गकृतिश्चेष्टघनोऽष्टग्रौ च सैककौ।
एपीस्यानासुभे व्यक्ते गणितं व्यक्तमेव च।।[8]

संदर्भ स्रोतः–

1. नार0 पु0 अ0 54/12–15
2. नार0 पु0 अ0 54/16
3. नार0 पु0 अ0 54/18–21
4. नार0 पु0 अ0 54/21–25
5. नार0 पु0 अ0 54/26–27
6. नार0 पु0 अ0 54/28–30
7. ना0पु0 अ0 54/30–31
8. ना0पु0 अ0 54/32–34

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

महाभाष्ये भारतीय संस्कृतेः विविध आयामाः

❐ मनोज कुमार पाण्डेयः

महाभाष्यकारेण उक्तम्—आचार्यशीलनेन देशशीलनेन च यदुच्यते तस्य तद्विषयता प्राप्नोति।[1] अर्थात् शास्त्रीरीत्या तथा च देशकालादि रीत्या यः आचारणं करोति स एव सिद्धः भवति स्व जीवने समाजे च। महर्षिणा स्वभाष्ये उल्लिखितं यत् वर्ण व्यवस्था उभय विधौ स्तः। जन्मना जातिः कर्मणा जातिश्च। अत्र अहं वैयाकरणमनुशृत्य भारतीय संस्कृते विविध आयाम विषये चिंतयिष्यमि। यथा—

(1) वर्णव्यवस्था–

महाभाष्ये वर्ण व्यवस्थायाः उल्लेख कृतः। तस्मिन्काले ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि चत्वारो वर्णाः आसन्। ते स्वनिर्धारित कर्मानुसारं स्वानि-स्वानि कर्माणि कुर्वन्ति स्म। परं च मुख्यरूपेण तदा जन्मानुसारमेव जाति निर्धारणं भवति स्म।

जन्मना जातिः—ईदृशे सुभिक्षे संपन्नपानीये बहुमाल्य फले देशे मनुष्याः किम् समान धर्मिणः समान रूपाः समान गुण विशिष्टाः या वसन्तिस्म, उत् विभिन्न जातीया विभिन्न रूपा विभिन्न गुण विशिष्टा वेति विचार्यमाणे सर्वेऽपि यत्र सुखेन निर्वहन्ति स्मयेति वक्तुंपार्यते। जातयस्यापि यथा संभवं यत्र तत्रोदाहरणेषु प्रतिपन्ना उल्लेखनीया एवेति जाति लक्षणं प्रथमत् प्रदर्श्यते। ''अतिशयने तं विष्ठनौ''[2] इति सूत्रे ''यदप्युच्यते जातेर्नेति वैक्तव्यमिति। न वक्तव्यं। जननेन या प्राप्यते सा जाति न चैतस्यार्थस्य प्रकर्षा प्रकर्षौ स्तः।''

इत्यनेन जन्मना या प्राप्यते सा जातिरिति गुणोपष्टम्भादिना न जातिरिति प्रति पादयति। यथा काका जातमात्रे प्राणिनि काकत्वं, सुकाज्जात मात्रे च शुकत्वं, मनुष्याज्जात मात्रे मनुष्यत्वं शूद्राज्जात मात्रे शूद्रत्वं क्षत्रियजात्रत्वे क्षत्रिय जाते च क्षत्रियत्वमिति। इति जाते मात्रे वस्तुनि तत्तज्जातिमत्वंमस्त्वेवेति। भाष्यार्थश्च - तं विठिनौ प्रत्ययौ जार्तेभवन्ति इति वक्तव्यमिति क्षिप्य या जननेनैव प्राप्नोति तत्र कः प्रसंगः प्रकर्षाप्रकषयोरिति। जातेर्नेति न वक्तव्यमिति। जोतेर्नेति वक्तव्यमित्यस्यैवोदाहरणम् प्रसंगे 'वृक्षो अयं' 'प्लक्षो अयं' इत्युदाहृतम्' यत्र तृणानि लता गुल्मानि वा वर्तन्ते वा वृक्षास्तत्र महान्तं सुक्षायं महत्फलं वृक्षमेकमुपलब्भ्य वृक्षो अयं इत्युच्यते।

तत्र लता वीरुधादिभ्यो वृक्षे अतिशयः संप्रतीयते। स एव व्यक्तावपलग्भ्यमानो अतिशयो वृक्षत्व जाता वाप्युपलब्भ्यत इति जातिवाच्यकाद्वक्ष सब्दात्व विष्ठनौ प्राप्नुतस्तदर्थं जातेर्नेति वक्तव्यमिति सम्प्रतिपन्नम्, जन्मना प्राप्यमाने वस्तूनि व कश्चिदतिशय इति समाधत्ते कश्चिद्राजग्रह उत्पद्यते, कश्चिभिक्षु गृहे, तयोर्बालकयोः को गुणतिशयः? एवं च जन्मना जाता ब्राह्मणो, जन्मना जातो क्षत्रियो जन्मना जातश्च शूद्र इत्यर्नरयोर्न को पि दृश्यो विशेषः केवलं जाति भेद दर्शनात्तेषां भिन्न संस्कारा भवन्ति इति एव। यथा काकाज्जायते शिशौ नस्तनपान संस्कारः काकेन क्रियते न वा गो वत्से काकवत् मुखे नान्यरस संसकारं गौर्विधत्ते तथा क्षत्रिय वालकत्वे भिन्नः संस्काराः, शूद्र वालके चान्ये ब्राह्मण वालके चान्ये इति जाति भेद निमित्तं संस्कारभेदमित्तेव, न कश्चित्तेषां वालकानां दृश्यः प्रकषाश्चप्रकशर्षश्च भाष्यकार समये केषांचनेष्ट।

---

* व्याकरणाचार्य, ढेकहा, रीवा (म.प्र.)

अतैव पुंयोगादाख्यायां[3] इति सूत्रे—त्रीणि यस्यावदातानि विद्यायोनिश्च कर्म च। एतच्छिवं विजानीहि ब्राह्मणाग्रस्य लक्षणम्। इत्यादीनि ब्राह्मणदीनां लक्षणान्युपसंग्रहीतानि भाष्ये।

अथ संस्कार भेदो अपीदानीं अस्याभिर्नाभिप्रेयते, ये संस्काराः ब्राह्मण बालकेषु क्रियते त एव क्षत्रिय बालकेषु अन्येषु वेत्याग्रहश्चेत्, क्षत्रिय बालका ब्राह्मण संस्कारैः संक्रियमाण अज समूहे पाल्यमानों व्याघ्र शिशुर्वकं दृष्टा अज शब्द शत्रुं दृष्ट्वा यज्ञोपवीतं प्रदर्शयेयुः। एवं च जन्मना जानिमभिमन्यमानास्तदा नीतिनीयाः सुखेनैव कालं व्यतिचक्रमुः।

जातिभेदा—

जातिभेद समाश्रयाणादेव च प्रत्यभिवादे शूद्रे[4] इति सूत्रे ''भो राजन्य विशां वेति वक्तव्यं। राजन्य इन्द्र व महिं भोः। आयुष्मानेधीन्द्रवर्मा[3] नः। विषइन्द्रपालतो ऽहं भोः। आयुष्मानेधीन्द्रपालिता[4] ''इत्यादिना राजन्यवैष्ययोविकल्पेन, शूद्र ब्राह्मणयोश्च नित्यं प्लुतं विधाय सर्मवम पालितदाशास्तत् जाति विशेषा अवि प्रदर्शयन्ते। ब्राह्मणदीनां लक्षणं चाकारि भाष्यकृता तेन तुल्यं क्रिया चेद्वन्तिः[5]। इत्यत्र'' सर्वएते सब्दा गूढसमुदायेषु वर्तन्ते–ब्राह्मणा क्षत्रियो वैश्यः शूद्र इति। आतश्च गुण समुदाये, एवं ह्याह—

तपः श्रुतश्च योनिश्चेत्ये तद्ब्राह्मण कारकम्।
तपः श्रुताभ्यां यो हीनो जाति ब्राह्मण एव सः॥

तथा गौरः शुच्याचारः आचार्य पिंगलः, कपिलकेशः इत्येतानाभ्यान्तरान्ब्राह्मण्ये गुणान् कुर्वन्ति। समुदायेषु च शब्दा वृत्ता अवयवे स्वपि वर्तन्ते। एवमयं ब्राह्मण शब्दः समुदाये वृत्ता के अवयवोष्वपि वर्तते'' इत्यादि लक्षणानि ब्राह्मणादीनां तत्तज्जाति विशिष्टनामुक्तानि विराजन्ते प्राचीनानाम्। अत्र हि तेन तुल्यं क्रिया चेदित्युक्तो तृतीयान्तेन ब्राह्मणादि शब्देन क्रिया समानाधि करणे वति प्रत्यये विधीयते। ब्राह्मणेन तुल्यमधीते क्षत्रिय इत्यादौ ब्राह्मण क्षत्रिययोरध्ययन क्रिया तुल्या प्रतीयते। तत्र क्रियया सामानाधिकरण्यमनुपपन्नमिति प्रत्ययो न स्यादित्याक्षिप्य समुदाये वृत्ताः शब्दाः अवयवोष्वपि वर्तन्त इति। अवयव बोधक शब्देनापि तेषां समानाधि करण्यं, तैलं भुक्ता मित्यादौ यथा समुदायपि वर्तमानस्तैल शब्दो भुक्ताया मात्रा तत्रापि व्यवहृयते। तथा क्रियादावपि अवयवे ब्राह्मण शब्दस्य सत्वेन न समानाधिकरण्यस्यानुपपत्तिः। अतैव शौचाचार विहीने केवल जन्मना जाति मात्रे अपि तत्तच्छब्द व्यवहार उपपद्यते। गौरः शुच्याचार इत्यत्र गौर पदेन गौर वर्ण विशिष्टो न, किन्तु—

अष्ट वर्षा तु या दत्ता सुतशील समन्विते।
सा गौरी तत्सुतो यस्तु स गौरः परिकीर्तितः॥

इति धर्म शास्त्राभिप्रायेण गौरी पुत्र एवं गौर पद वाच्यः। तथा च स्त्रीणामभ्युन्नतिकामयरपि विवाहवयो मर्यादाकरणम् शास्त्र विरुद्धं विशुद्ध वर्णोत्पत्ति प्रतिवन्धकमिति दूरतः परिवर्जनीयमेवेति। एतादृशामेव लक्षणं ब्राह्मणादीनां नञ्[6] इति सूत्रे विस्तरेणोक्तमिति तत् एवावगन्तव्यम्।

(2) संस्कार व्यवस्था

मानव जीवनं संस्कारैरेवसमृद्धां भवति तथा च तं चर्मोत्कर्षतांमुच्चैः नयति। स प्रकृतिं संस्कारैरलंङ्कृंतं करोति। तं स्वीययाचेतनया जाग्रतं कृत्वा सर्वोत्कर्षतांचनयति। तेषु च सद्भाविननां वैचित्र्यचित्रं समावेशयति दूषितानितस्य मलानि। सुवर्णः प्राकृतिकः अस्ति, किन्तु स्वर्णकारः तस्य मलानि दूरी करोति, निर्मल च विदधाति तदा सुवर्णस्य आभूषणानि निर्मितानि भवन्ति।

वैद्यः लौहखण्डं, अग्नौ प्रक्षिप्यं तं संस्कारितुं करोति, तथा तं लौहखण्डं लौहखण्डेनैव संकुट्य लौहभष्मं निर्मापयति। संस्काराः प्रकृतेः परिमार्जनं कुर्वन्ति। प्राकृति प्रवृत्तीनामुन्नयनं कुर्वन्ति। तान् मर्यादितं संयमितं च कुर्वन्ति येन नैतिकतत्वस्याभि वृद्धिर्भवति। ते कण्टका कीर्णाभूमिं स्वच्छं, निरापदं, आलोकितं, प्रशस्तंञ्च कुर्वन्ति। दोषाणां निराकरणं कृत्वा गुणानाामाधानं कुर्वन्ति नरं नारायणं कुर्वते। पुरुषं पुरुषोत्तमञ्च चन्द्रः षोडश कलाभिः सम्पन्नं भूत्वा पूर्णं भवति, तथैव मानव जीवनमपि षोडश संस्कारैः समृद्धो भूत्वा परिपूर्णं भवति।

मानव जीवनाय संस्काराण्यमूल्यनिधयः केनाप्युक्तमपि यथा—

संस्कारेण विनादेवि देह शुद्धिर्नजायते।
ना संस्कृतोऽधिकारीस्यात् दैवे पैत्ये च कर्मणि॥
अतो विप्रादिभिर्वर्णैः स्व स्व वर्णोक्त संस्कृताः।
कर्तव्या सर्वथा यत्नैरिहामुत्र हितेप्सुभिः॥

संस्कार स्वरूपम्—

''वस्तूनि भोनाऽनुरूपं योगाऽनुरूपं[7] वा निर्माणस्य कला संस्कारः''

सनातनशास्त्रेषु रूपं, क्रियां समाख्यांञ्चेत्यस्य त्रयस्य संस्कृत करणस्या पूर्वविधाया वर्णनमस्ति।

''देवः, ऋषिः पितरः परमेश्वरप्रसादस्य तथा दैवी सम्पदायाः अभिव्यञ्जकः कर्मभावश्च संस्कार वर्तते''।

एवं सत्ता स्फूर्तिः सुखोपलब्धिश्च संस्कारस्य[8] फलमस्ति। संस्कार-कर्मताद्विप्रकारिका भवति-गुणाधानेन, दोषापनयनेन च।

यथा—बीजपुरस्य पुष्पं (विजौरी नीवू) लाखरसेन उपसिन्चनं (भावितं) कृते तस्य फलमभ्यन्तरात् रक्तवर्णभवति् इदं गुणाधानं संस्कारः।

कुसुमे वीजापुरादेः यल्लाक्षाद्युपसिच्यते।
तद्रूपस्यैव संङ्न्तिः फलेतस्येतिवासना॥

मलिनादर्शे इष्टिकाचूर्णस्याक्षेपणात् दर्पणः संस्कृतं भवति—

''इदंदोषापनयनस्योदाहरणम्''।

आत्मा निर्गुण, निरंशं, निष्क्रियं, निर्विकारं, विभुः सच्चिदानन्दः, ब्रह्मस्वरूपोऽस्ति अत एवं सः द्विविध संस्काराणम् विषयः गर्भाधानं, गर्भवृद्धिः, जन्म, बाल्यावस्था, कुमारवस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था मृत्युश्च-एताः नवसंख्याकाः अवस्थाः स्थूलशरीरस्य वर्तन्तें

निषेकगर्भजन्मानि वाल्यकौमारयौवनम्[9]॥
वयोमध्यं जरामृत्यु रित्यवस्थातनोर्नव॥

सकारान्नेन जलेन च निराकारेण (अमूर्त) बुभुक्षा पिपासयाः निवृतिः सर्वानुभव सिद्धमस्ति। मूर्तोषधीनां सेवनेनमूर्तरोगाणांनिवारणमपि सर्वानुभव सिद्धमस्ति। मूर्तोषधीनां सेवनेनमूर्तरोगाणांनिवारणमपि सर्वानुभव सिद्धम्। तद्वदेव स्थूल शरीरस्य संस्कृते सति करणत्मकस्य सूक्ष्मस्य वीजात्मक कारण शरीरस्य च शुद्धिरनुभव गम्यः।

यमादि—अष्टाङ्ग योगानां सेवनेन त्रिविध शरीरस्य शुद्धिः आगम-उत्पत्ति तथा अनुभूति सम्मतमस्ति। हिंसाऽसंतोषादायः गर्हितभावेन्द्रियाणिच अन्तः करण निष्ठानि संति। प्रतिपक्ष्या हिंसा संतोषादिकस्य सेवनेन तेषां निवारणं मुक्तियुक्तं वर्तते। मलविक्षेपहेतुभूतहिंसादिकस्य निवारणेन मनः शुद्धिः स्थैयन्च स्वानुभव सिद्धमस्ति।

सन्दर्भेऽस्मिन्नागमं प्रमाणं यथा—

अहिंसयेन्द्रियासंन्यासैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः।
तपसश्चणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम्॥[10]

अर्थात् अहिंसा, इन्द्रियेषु विषयाणामनाशक्तिः (इन्द्रियनिग्रहरूपधर्मः) वैदिकानि नित्य कर्माणि यथा सम्भवं कृच्छचान्द्रायणाद्युपवास रुपाणामुग्रतपः सम्यम् दर्शनस्य सोपानाः। एतानां साधनांनांसमुपासकाः ब्रह्मपदमपि प्राप्नुवन्ति। यथा—

प्राणयामैर्दहेद्दाषान् धारणाभिश्च किल्विषम्।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्॥[11]

योगचूड़ामण्युपनिषदष्वप्येदतु क्तम्। यथा—

आसनेनरुचं हन्ति प्राणायामेन पातकाम्।
विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण मुंचति॥
धारणाभिर्भनोधैर्य याति चैतन्यमद्भुतम्।
समाधौ मोक्षमाप्नोति त्यक्त्वाकर्मशुभाशुभम्॥[12]

अर्थात् आसनेन रोगाणां क्षयः, प्राणायामेन पातकानां क्षयः, प्रत्याहारेण योगिनां मनोविकारस्य शमनं भवति। धारणाभिश्च। चिद्रूपिणि आत्मायां मनः प्रतिष्ठितो भवति, समाधिना शुभाशुमं कर्मणां परित्याग कृत्वा मोक्षलाभं लभते।

वस्तुतः व्याकरण दृष्टया सम+कृञ्+घञ् तः निष्पन्नस्य संस्कार शब्दस्यानेका अर्थाः सन्ति। अस्य प्रयोगः संस्कृतिः, प्रशिक्षणम्, शिक्षण्, सौजन्यम्, पूर्णता, व्याकरणजन्य शुद्धिः संस्कणम्, परिष्करणम्, शोभा, अलंकरणम् आभूषणम् प्रभावः, स्वरूप, क्रियादिभिरर्थेषु भवति। दार्शनिक दृष्ट्याऽस्यन्योऽप्यर्था भवितुं शक्नुवन्ति—

''प्रोक्षणादिजन्य संस्कारो यज्ञानां पुरोडाशेषु[13]'' स्नानाचमनादिजन्याः संस्काराः देहे उत्पद्यमानानि तदमिधानानि जीवे कल्प्यते, संस्कार व्यवहाराऽसाधारणं कारण''[14] संस्कारः संस्कारस्त्रिविधिः वेगोभावना स्थिति स्थापक्रश्च। आत्मशरीरऽन्यतरनिष्ठो विहित क्रियाजन्यो अतिशय विशेषः संस्कारः''[15]

अनेनास्पष्टम्यत् संस्कारः यज्ञाङ्गभूत पुरोडाशस्य सिद्धिः भवतु या भावाभिव्यक्तये आत्मव्यंजस्य शक्तिरस्तु अथवा शरीरिकक्रियाणं मिथ्यारोपः इदमस्त्येका आत्मशुद्धिः। ज्ञान यत्र ज्ञेयात् मुक्तस्मिन तत्रैवेयमेकः आत्मशुद्धिः तथेयमेव शुद्धतापवित्रता आत्म संस्कारोऽस्ति। चेतना यत्र निर्विषयास्ति, सैवाऽनुभूतिः सैवात्मसंस्कारः।

मानवजीवनस्येतेषु संस्कारेषु न तु कस्यचित् ज्ञातुः कर्म, नहि ज्ञेय एवंः इदं परिष्कारः अभूतपूर्वम्। शब्दमाध्यमेनेनं सुष्पष्टं करणमसम्भवमेव। मालिनतापकर्षणादेव संस्कारः भवति। इदमेव कारणमस्ति यत् यास्करेण संस्कारणांपाकयज्ञेष्वन्तर्भावं कृतम् पाकयज्ञस्य चत्वारो भेदाः अनेन विहितम्। हुतः, प्रहुतः, प्राशितः इति। तथा कथितान् सर्वान् संस्कारान् पारस्करः यज्ञेष्वन्तर्हितं कृतवान् संस्काराः जीवनस्य विभिन्नावसरान् महत्वं पवित्रतां च ददते। जीवन विकासस्य प्रत्येकचरणाश्रू केवलं शरीरिक क्रियाः एवं नहि[18] अपित्वस्याः संबंधः मनुष्यस्य बुद्धिः भावना आत्मिकैरभिव्यक्तिभिर्वतते यम्प्रति सावधानं भवितव्यम् एतेष्वेव विचारेषु विश्वासेषु च समाजस्य स्थापनानिहिताऽस्ति इत एव तेषां कृते पोषणमप्युपलभ्यते। पारस्कराचार्यस्य मतानुसारं त्रयोदश संस्कारा सन्ति ते निम्नाङ्कितानि—

विवाहः, पुंसवनम्, सीमन्तोन्नयनम्, जातकर्म, नामकरणम् निष्क्रमणम्, अन्नप्रासनम्, चूड़ाकरणम्, उपनयनम्, केशान्तः समावर्तनम्, अन्तयेष्टिश्च।

पारस्करणे संस्कारणाम् संख्या विषये मध्यमं मार्गमेव वरमन्यत्। मनुरिवनह्येते षोडश संस्कारस्य पृष्ठ पोषकाः न हि आवूवलायनेव एकादश संस्कारणां स्त्रष्टा। वैखानस्य सदृशमष्टादशानां संस्कारणां प्रियः। एभिर्त्रयोदश संस्कारान्येव स्वीकृतम्। विवाह संस्कारस्य गणना सर्वप्रथमनेन कृतम्। यतो हि विवाहः मानव जीवनस्यावश्यकं परिहार्य संस्कारमस्ति।

सन्दर्भ

1. महाभाष्य भाग-1, कार्यशब्दवादनिरासः पृ. 379
2. अष्टाध्यायी 5.3.55
3. महाभाष्य 4.2.48
4. महाभाष्य अ.8 पा. 2 सू. 6 अ
7. कल्याण-संस्कारांक, जनवरी 2006
8. अनन्त श्री विभूषित ऊर्ध्वाम्नायं श्री काशी सुमेरुपीठाधीश्वर जगदगुरु शंकराचार्य स्वामी श्री चिन्मयानन्द सरस्वती (कल्याण संस्काराङ्क-2006) भाग. 11-22, 46
9. मनु. 6/75
10. मनु 6/72 एवं श्रीमद्भाग, 3,28,11
11. योगचूणामणौ, वाचस्पत्यं भागे 5 पृष्ठ 5188
12. विवेक चूडामणिः स्वामी शंकराचार्य
13. तर्कभाषा, पृष्ठ 483 (चौखम्भा संस्करण)
14. वाचस्यत्यम्, भाग-5
15. आत्म शरीरान्यतरानिष्ठोविहित क्रियाजन्योऽति-शयविशेषः संस्कारः वी.मि.सं. भा. 1 पृष्ठ 132

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

एकार्थीभावष्यपेक्षाभाववादिनां मतानि

❐ गोविन्दसिंह पैंकरा
❐ घनश्यामदास साकेत

समासे सामर्थ्यस्य महन्महत्वं विद्यते। तत्र सम्बद्ध सङ्गतः संसृष्टो वार्थः समर्थ इति। समर्थस्य भावः सामर्थ्यम्। तच्च सामर्थ्यं द्विविधं व्यपेक्षालक्षणम्[1] एकार्थीभाव-लक्षणश्च[2]। तत्र स्वार्थपर्यवसायिनां पदानामाकाङ्क्षादिवशाद्यः परस्परान्वयः तत् व्यपेक्षापभिधं[3] सामर्थ्यम्। विशिष्टा अपेक्षा व्यपेक्षेति व्युत्पत्तेः सम्बद्धार्थः समर्थ इति व्युत्पत्तेश्च। इदं च राज्ञः पुरुषः इत्यादिवाक्य एव भवति। तत्र च एकैकस्य शब्दस्य यो यः सन्निहितो योग्यश्च तेन तेनान्वयो भवति। यथा राज्ञः पुरुषोऽश्चेति, राज्ञो देवदत्तस्य च पुरुषइति ऋद्धस्य राज्ञः पुरुषः इति च।

एकार्थीभावलक्षणसामर्थ्यं तु प्रक्रियादशायां प्रत्येकमर्थत्वेन पृथग् गृहीतानां पदानांसमुदायशक्ताा विशिष्टैकार्थपतिपादकतारूपम्। सङ्गतार्थ, समर्थः संसृष्टार्थः समर्थ इति व्युत्पत्तेः। सङ्गति संसर्गश्च एकीभाव एव। यथा सङ्गतं घृतं तैलेनेति एकीभूतमिति गम्यते यथा व संसृष्टोऽग्निरिति। एकरभूत इति गम्यते इति साष्याच्च। इदं च सामर्थ्य राजपुरुष इत्यादिवृत्तावेवं अतएव श्रद्धस्य राजपुरुष इत्येवं राज्ञि पुरुषविशेषणे ऋत्वविशेषणे ऋत्वविशेषणं नान्वेति, विशिष्टस्य एकपदार्थतया ''पदार्थःपदार्थनान्वेति न तु पदार्थकदेशेन'' इति न्यायेन राज्ञः पदार्थकदेशत्वात्। न चैवं देवदत्तस्य गुरूकुलमित्यादावनन्वयापत्तिः, तत्रापि देवदत्तोत्तरषष्ठ्यर्थस्य गुरूणाऽन्वयादिति वाच्यम्।[4] देवदत्तस्य प्रधानीभूत-कुलेनैवान्वयात्। तत्र गुरूणा गुरूणा कुलस्य उत्पाद्यत्वसम्बन्धेनान्वयः। देवदत्तेन तु कुलस्य तदीयगुरूत्पाद्यतयान्वयो मुरूगर्भः। उक्तं च हरिणा—

सम्बन्धिशब्दसापेक्षो नित्यं सर्वः समस्यते।
वाक्यवत्सा व्यपेक्षा हि वृत्तावपि न हीयते॥

अपि च

समुदायेन सम्बन्धो येषां गुरूकुलादिन।
संस्पृश्यावयवांस्ते तु युज्यते तद्वतासह॥

एतेन अयः शुलदण्डाजिनाभ्यां ''ठक्ठञौ''[5] इति सूत्रे भाष्ये शिवस्य भगवतो भक्तः इत्यर्थे शिवभागवत इतयादि व्याख्यातम्। एकार्थीभावश्चयमलौकिकविग्रहवाक्ये कल्प्यते। लादेशभूतशतृशानचोः अप्रथमानाधिकरणेनार्थेना-योगादेशानुपपत्तिः तस्य क्वापि प्रयोगाभावा- दित्याक्षिप्य आदेशे समानाधिकरणं दृष्ट्वा अनुमानद् गन्तव्यं प्रकृतेरपि तद्भवति इति ''लट्शतृशानची''[6] इति सूत्रभाष्ये समाहितम्। सिद्धानां शब्दानामन्वाख्यानत् पचन्तं देवदत्तं पश्येत्यादिप्रयोगदर्शनात् स्थानिनोऽपि लस्य प्रक्रियार्थ कल्पितस्य अप्रथमासमानाधिकरणमनुमियते इति कैयटः अत्र प्रक्रियार्थ कल्पितस्येतयुक्तया अन्यस्यापि प्रक्रियार्थं कल्पितस्य यबोधकत्वकल्पना सूचिता। अलौकिकविग्रहवाक्यं श्रूयमाणानां च पश्शब्दानां क्लृप्तशक्तित्यागे मानाभावात् प्रत्येकशक्तिसहकृतया समुदायशक्तया विशिष्टोपरिस्थितिः। उक्तञ्चात्र भूषणसारे—

---

* व्याख्याता एवं शोधार्थी, शासकीय वेंकट संस्कृत महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** सहायक शिक्षक एवं शोधार्थी, शासकीय वेंकट संस्कृत महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

समासे खलु भिन्नैव श्शक्तिः पङ्कजशब्दवत्।
बहूनां वृत्तिघर्माणां वचनैरेव साधने।
स्यान्महद् गौरवं तस्माद् एकार्थीभाव आश्रितः।।[7]

ततश्च अयमेकार्थीभावः जहत्स्वार्थाऽजहत्स्वार्था चेति। तदुक्तम् ''समर्थः पदविधिः''[8] इति सूत्रभाष्ये-अथ तेषामेवं ब्रुवतां किं जहत्स्वार्थावृत्तिर्भवति, आहोस्विदजहत्स्वार्थाः? किं चातः? यदिजहत्स्वार्थावृत्तिः राजपुरुषमानयेत्युक्ते पुरुषमात्रस्याऽऽनयनं प्राप्नोति औपगवमानयेत्युक्तेऽपत्यमात्रस्य। अथाऽजहत्स्वार्थावृत्तिः उभयोर्विद्यमानस्वार्थयोर्द्विवचनं प्राप्नोति। का पुनर्वृत्तिन्याय्यः? जहत्स्वार्थाः ननु चोक्तम् राजपुरुषमानयेत्युक्ते पुरुषमात्रस्याऽऽनयनं प्राप्नोति, औपगवयमानयेत्युक्ते अपत्यमात्रस्येति? नैष दोषः जहदाप्यसौ स्वार्थ नात्यन्ताय जहाति यः परार्थविरोधी स्वार्थस्तं जहाति। अथवा पुनरस्तु अजहत्स्वार्थावृत्तिः ननु चोक्तम् उभयोर्विद्यमान-स्वार्थयोर्द्वयो-र्द्विवचनमिति द्विवचनम् प्राप्नोतीति?

कसयाः पुर्द्विवचनम् प्राप्नोति? प्रथमायाः। न प्रथमासमर्थो राजा। षष्ठ्यास्तर्हि प्राप्नाति, न षष्ठीसमर्थः पुरुषः। प्रथमायास्तर्हिप्राप्नोति। ननु चोक्तम्-न प्रथमासमर्थो राजेति? अभिहितः साऽर्थोऽन्तर्भूतः प्रातिपादिकार्थः। तत्र प्रातिपदिकार्थे प्रथमेति प्रथमाया एवं द्विवचनं प्राप्नोति। संघातस्यैकार्थ्यान्नावयसङ्ख्यातः सुबुत्पत्तिः। संघातस्यैकत्वमर्थः तेनाऽवयवसङ्ख्यातः सुबुत्पत्तिर्न भविष्यति, इति ''इदूतौ च सप्तम्सर्थे''[9] इति सुत्रेऽपि अथक्रियमाणऽप्यर्थग्रहणे कस्मादेवात्र न भवति? जहत्स्वार्था वृत्तिरति। अथाऽजहत्स्वार्थायां वृत्तौ दोषः एवं? अजहत्स्वापर्थायाश्च न दोषः समुदायऽर्थोऽभिधीयते इत्युक्तम्। तत्र जहाति पदानि स्वार्थ यस्यां सा जहत्स्वार्था इति व्यधिकरणपदको बहुब्रीहः विवरणं भूषणसारे[10]। जहति (शत्रन्तप्रयोगः) स्वानि त्र वृत्तिघटकीभूतपदानि यं स जहत्स्वः तादृशोऽर्थो यस्यामिति समानाधिकरणपदकोऽपि बहुब्रीहिः सम्भवतीति परे। पूर्वत्र विवरणे सप्तमीविशेषणे बहुब्रीहौ'[11] इति सूत्रे सप्तमीग्रहणाजापकाद्व्यधिकरणपदको बहुब्रीहिरिति बोध्यम्। क्रमेण द्वयोर्लक्षण्माह मञ्जूषायाम्[12]—

अवयवार्थनिरपेक्षत्वे सति समुदायार्थबोधिकात्वं जहत्स्वार्थत्वम्। अवयवार्थसंवलितसमुदायार्थाबोधिकात्व-मजहत्स्वार्थात्वम्। रथन्तरं सामभेदाः शुश्रूषा सेवेति उदाहरणम् राजपुरुष इत्यादावन्त्याः।

अत्रेदं तात्पर्यम् - परार्थाभिधानं वृत्तिः। तच्च यथा राजपुरुष इत्यादौ राजशब्दः पुरुषस्यार्थस्यापि पुरुषशब्दो राजशब्दस्यार्थस्यापि बोधकः। वाक्यावस्थायां तु राज्ञः पुरुष इत्यत्र राजशब्दः केवलं स्वार्थस्यैव बोधकः पुरुषशब्दश्च। तेनोक्तं परस्य शब्दस्य योऽर्थस्तस्याभिधानं शब्दान्तरेण यत्र स वृत्तिरित्यर्थः। यथा राजपुरुष इत्यत्र राजशब्देन वाक्यावस्थयामनुक्तः पुरुषार्थोऽभिधीयते इति।

वस्तुतस्तु शब्दस्य नित्यत्वाच्छब्दे पदानि पदे वर्णा इव निरर्थकाः काल्पनिकाश्च। पदानि हि केवलं स्पष्टतयार्थबोधनायैवं तथा काल्पनिकत्वेन विभक्तानां पदानां तेषामर्थानाञ्चैकीभावतया एकार्थीभावो वृत्तिरित्युक्तम् एवञ्च यद्यपि श्शब्दान्तरमेव वृत्ति अवद्यव वर्णवदनर्थकाः सादृश्यात्तत्वाध्यवसायं पदानमाश्रित्य पृथगर्थानमेकार्थीभव इति। सा चैकार्थीभावरूपवृत्तिः प्राचीनमतानुसारेण कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तेषु कल्प्यते। नव्यास्त्वेकशेषे वृत्तिं न मन्यन्ते, तत्रान्यशब्दार्थान्वितस्वार्थोपस्थापकताऽभावात्। लघुमञ्जूषायामपि वृत्तेश्चातुर्विध्यमेवोक्तं यथा-वृत्तिश्चतुर्धा, समासतद्धितकृत्सनाद्यन्तधातुभेदादिति। सा च वृत्तिर्द्विधोक्ता जहदजहत्स्वार्थभेदात् तत्र पदानि यत्र स्वार्थं जहति सा जहत्स्वार्था, यथा रथन्तरमित्यादौ। पदमिदं हि अवयवभूतरथतृखजर्थमुपेक्ष्य सामविशेषं बोधयति। एवमेव श्शुश्रूषा इति अवयवार्थभूतश्रवणेच्छारूपकमर्थमुपेक्ष्य सेवारूपार्थं बोधयति। महाभाष्यकारेणाप्युक्तम्।[13] यः परार्थविरोधीस्वार्थस्तं जहति इति।

यत्र तु पदानि स्वार्थ न जहाति अपितु तत्संवलितावयवार्थ बोधयन्ति साऽजहत्वस्वार्थाः यथा राजपुरुष इत्यादौ। ता हि राजपुरुषशब्दो सम्भूय स्वार्थसंवलितराज-सम्बद्धपुरुषपं समुदायार्थं बोधयतः। तत्र जहत्स्वार्थाया-मेकार्थीभावः अजहत्स्वार्थां तु व्यपेक्षैव। ''समर्थः पदविधिरिति सूत्रे समर्थपदमेकार्थीभसामर्थ्यस्यैव बोधकमिति। तैनैकार्थीभावसामर्थ्ययुक्तपदयो पदानां वा समास इति बोध्यम्।।''

व्यपेक्षाभाववादिनां मतानि

व्यपेक्षाभाववादिनो हि नैयायिकाः मीमांसाकाश्च एकर्थीभावलक्षणसामर्थ्य न स्वीकृर्वति। अर्थात् समासे श्शक्तिर्नास्ति तन्मानुसारेण। राजपुरुष इत्यादौ तु राजशब्दस्य लक्षणया राजसम्बन्धवदभिन्न इत्यर्थबोधत् पुरुषेणान्वयः राजशब्दस्येत्थं पदार्थैकदेशत्वान्न तत्र ऋद्धस्येत्यादि विशेषणान्वयः। यतो हि - पदार्थः पदार्थेनान्वेति न तु पदार्थैकदेशेन सविशेषणानां वृत्तिर्न वृत्तस्य च विशेषणयोगी नेति। नैव च घनश्यामः निष्कौशाम्बिः गोरथ इत्यादीनामप्रयोगात् नामि ''विभाषा''[14] इति पाणिनीयं सूत्रमेवावश्यकं तत्र लक्षणाय राजसम्बन्ध्यभिन्न इति कथनाय समासस्य राजसम्बन्धवान् इति कथनाय विग्रहस्यैव सम्भवान्न विभाषाकरणावश्ययकतेति।

अपि चोच्यते तार्किकैः पङ्कजशब्दवतसमासेऽपि समुदाये शक्तिरिति यदुच्यते तन्न। पङ्कजपदे तु तङ्क+जन+ड इत्यवयवभूतार्थज्ञानं विनापि कमलमित्यर्थबोधात्तत्र समुदाये शक्तिः किन्तु राजपुरुष इत्यादौ तु अवयवार्थशक्तिग्रहं विना लक्षणया विशिष्टार्थबोधसम्भवात् राजपदादिशक्ताग्रहे न चित्रगुरित्यादौ चित्रा गौर्यस्येति षष्ठयर्थबहुब्रीहित्वेन इति।

राजपुरुष चित्रा गौर्यस्येति षष्ठयर्थबहुब्रीहित्वेन लक्षणासम्भवेऽपि षष्ठ्यर्थभिन्नस्थले तु न लक्षणासम्भवस्तथासत्यनेकनिमविरोधादिति न वाच्यं प्राप्तोदक इतयत्रप्राप्तमुदकं यं स इति षष्ठायर्थेतरबहुब्रीहिवापि उदकपदे लक्ष्पाणास्वीकारात्। पूर्वपदभूतस्य प्राप्तशब्दस्य तु योगिकत्वेन तत्र प्र+आप्+क्त इति धातुप्रत्ययतदर्थज्ञानगम्यतया विलम्बेनैव लक्षणाप्राप्तेः। अपि च प्रत्ययोहि सन्निहितपदार्थसम्बद्धस्वार्थ बोधयतीति उदकपदेनैवतदर्थज्ञापनाच्चेति। प्रतयेकं वर्णानां वाचकत्वेऽपि घआदिपदे चरमवर्णस्यैवार्थबोधकत्व समर्थनाद् विशिष्टे एवातिरिक्ता शक्तिः विशिष्टे एवं सङ्केतसग्रहसम्भवत्। प्राप्तोदक इत्यत्रापि नितान्तनैकट्येन प्रत्ययान्वसौलभ्यायोत्तरपदे एवं लक्षणेतिसारमिति तार्किकादीनाम्मतम्

यदि हि व्यपेक्षापक्षमाश्रित्य समासे शक्तिर्नैवस्वीक्रियते तदा समुदायस्यार्थवत्ताभावेन तस्य प्रातिपदिकत्वमेव न स्यादर्थवत् एवं तन्नियमात्। राजपुरुष इत्यत्र व्यपेक्षावादिमते प्रत्येकमर्थत्वेऽपि समुदायस्य दशडिमादिवदर्थाहीनत्वान्न प्रातिपादिकत्वप्राप्तिः ''कृत्तद्धितसमासाश्चेति''[15] सूत्रे समासग्रहणं निमार्थमेव'।

नियमस्तु सिद्धिमनुसृत्यैव भवति तेन राज्ञः पुरुष इत्यादेर्न प्रातिपदिकत्वम्। किञ्च समासे शक्तासवीकारे अवयवानां सार्थकत्वेऽपि विशिष्टस्य अर्थवत्तवाभावेन शक्यार्थाभवान्नहि तत्र शक्यसम्बन्धरूपलक्षणाया अपि प्रवृत्तिरिति नहि तस्य लाक्षणिकार्थवत्तयाऽप्यर्थवत्त्वं यतः स्वाद्युत्पत्तिः स्यात्। तथा सति अपदस्य प्रयोगनिषेधात् सर्वेऽपि प्रयोगा व्यवाहारबाह्याः स्युः।

अपि च समासे शक्तयाभावे विशिष्टेऽर्थवत्ताभावकन प्रातिपदिकत्वाभावादपदत्वेन प्रयोगविलय आपद्यते तदा भाष्यसिद्धं ति इत्यारभ्यः सुपः पकारेण तिप्प्रत्यहारमाश्रित्य तत्पर्युदासेन ''अतिप्प्रतिपादिक-मितिसूत्रं पठ्यतां तस्यार्थः सुपतिङ्भिन्नं प्रातिपदिकमिति। ततश्च ''कृत्तद्धित-समासाश्च''[16] इति सूत्रं नियमयर्थमस्तु इति कथ्यते चेत्सत्यमेव, किन्तु प्रत्येकं वर्णेषु तन्निवारणाय सूत्रे अर्थवत्त्वग्रहणमावश्यकमेव येन समासे सैव स्थितिः। प्रतिपदिकत्वकार्य स्वयमेवार्थवत्वं ज्ञापयति। यदेवार्थयुक्तं तदेव प्रातिपदिकमिति। समासोऽप्यर्थवान् प्रातिपदिकत्वात् नार्थहीनं प्रातिपदिकं यथा अभेदपक्षे भूसत्तायामित्या-द्यनुकरणशब्द इति।

यदुक्तं 'पदार्थः पदार्थेननन्वेति न तु पदार्थैकदेशेन तथैव वृत्तस्य विशेषयोगे त्यपि तत्तु लाक्षणिकार्थापेक्षया समासे एकार्थीभावेऽवयवानां पृथगर्थाभावेन विशेषणयोगा-सम्भवत् तत्र फलितं भवति न तु भवत्सम्मते व्यपेक्षावादिमते। भवतान्तु (नैयायिकानां तु) अपूर्वनियमकल्पनमिति गौरवमेवेति।

न च तार्किकादिसम्मतं प्रत्ययानां सन्निहितपदार्थगत-स्वार्थबोधत्वमेवोपयुक्तं तथा सति उपकुम्भमित्यत्र समीपाथे अर्धपिप्पली इत्यत्र अर्धार्थे च विभक्तर्थान्वयः स्यात्। न च तदभिष्टम्। अस्मत्पक्षे तु प्रत्याना प्रकृत्यर्थान्वितस्वार्थ-बोधकत्वात् तेषां समुदायोत्तरमेवोत्पत्तेः समुदायस्यैव प्रकृतेरर्थवत्त्वाच्च न दोष इति।

यदि राजपुरुष इतयत्र लक्षणा सवीक्रियते तदा किं सा राजपदादेः सम्बन्धिनी उताहो सम्बन्धे वेति प्रश्नः न हि समबन्धिनि लक्षणा सम्भवति, तथा सति तस्य राज्ञः पुरुष इति विग्रह एवासिद्धः स्यात्। वृत्तिसमानार्थवाक्यस्यैव

विग्रहत्वं सम्भवति न हि राज्ञः पुरुष इति विग्रहस्यस राजसम्बन्धी पुरुष इत्यर्थस्य च न समानार्थकत्वं। विग्रहविग्रह्वयमाणयोः समानार्थकत्वाभावे ततः शक्तिनिर्णयोऽपि न स्यात् यद्धि नितान्तमभीष्टम्। यदि हि वृत्तिसमानार्थकवाक्यस्यैवविग्रहत्वं तदा वैयाकरण इत्येतस्य व्याकरणमधीते द्वति पाचक इत्यस्य पचति इति च कथं विग्रहो वृत्तिसमानार्थत्वाभावादिति चेदुच्यते कृदन्ततद्धितान्तप्रयोगयोर्विग्रहवाक्यगतमाख्यातं यत्किञ्चिदेव विग्रह्यमाणस्यार्थबोधकं भवति न तु सर्वाशतः। कृदन्ततद्धितान्तप्रयोगयोराश्रयस्य (कर्तुः) प्राधान्यं व्यापारस्य गौणतां आख्याते तु व्यापारस्य प्राधान्यमाश्रयस्य गौणतेति। तेन तथाविधस्स्थले न दोष इति। न हि रथन्तरशब्दात् रथिकस्यापि बोधो भवति रूढिर्योगार्थमपहरतीति न्यायात्। पङ्कजशब्दात् न च अवयवार्थमनपेक्षय समुदायार्थमात्र-बोधोऽपि न तत्र रूढिविरोधिनी तत्रैव जहत्स्वार्थाया विषयत्वात् अत्र तु न तथेति। चतुर्विधो हि शब्दः रूढ-यौगिक-योगरूढ यौगिकरूढ भेदात्। तत्र अवयवार्थमनपेक्ष्य समुदायार्थबोधकत्वं रूढत्वं यथा रथन्तरमिति। यत्र चावयवार्थसंवलितसमुदायार्थ-बोधकत्वं योगरूढत्वं यथा पङ्कजमिति। यत्र चावयवशक्त-यैवार्थबोधकत्वं तद्यौगिकत्वंयथा पाचक इति। यत्र चावयवशक्तया समुदायशक्ताा चार्थबोधकतवं यौगिरूढत्वं यथा मण्डपशब्दो मण्डपानकर्तरि भवनविशेषऽर्थे चेति।

पङ्कजशब्दे इव समासे अवयवार्थेतरासमुदायरूपा शक्तिः। यदि पङ्कजशब्दे योगार्थः सवीक्रियते तदा तस्माछैवालादैरपि प्रतीतः स्यात् तेषामपि पङ्कजन्यतवात्। समासे विशेषणालिङ्गसंख्याद्ययोगः एकार्थीभावे न्यायसिद्धः व्यपेक्षापक्षे तु वचनं कर्तव्यम्। विशेषणयोगो यथा राजपुरुष इत्यत्र ऋद्धस्येत्यादिविशेषणयोगः लिङ्गायोगे यथा- कुक्कुट्या अण्डं कुक्कुटाण्डं, मृग्याः क्षीरं मृगक्षीरम्। सांख्ययोगो यथा राज्ञः राज्ञेर्वा पुरुषः राजपुरुष इति। लाघवार्थमपि ढकार्थीभाव आश्रयितव्य इति।

एवञ्च व्यपेक्षावदिमते घटपआवितयत्र चकारनिषेधः घनश्याम इतयत्र इवशब्दनिषेधश्च। एवमेववन्यत्रापि तत्पक्षसिद्धये बहुविधव्युत्पत्तिभञ्जनञ्च कर्तवयम्। एकार्थीभावपक्षे तु सर्वस्य न्यायसिद्धत्वान्न तथादोष इति। घटपटावित्यत्र लक्षणाया साहित्यबोधे चकारेनिषेधः कर्तव्यः एकार्थीभावपक्षे तु साहित्ययद्यवच्छिन्ने एवं शक्तिस्वीकारात् स्वत एवं तन्निवृत्तिरूक्तार्थानां प्रयोगनिषेधात् प्राप्तोदक इत्यस्य उदककर्तृकप्राप्तिकर्मग्राम इत्यर्थः किन्तु व्यपेक्षावादिमते पृथक्शक्तिस्वीकारात् कर्त्रर्थे कृतास्य उदककर्तृकप्राप्तिकर्मग्राम इत्यर्थः किन्तु व्यपेक्षावदिमते पृथक्शक्तिस्वीकारात् कर्त्रर्थे कृतास्य क्तप्रत्ययस्य कमार्थे लक्षणा कर्तव्या भवति। ततोऽपि नामार्थयोरभेदान्वयव्युत्पत्त्या उदकाभिन्नं प्रप्तिकर्म इत्येव बोधे भवति। यदि उदकस्य कर्तृत्वेन प्राप्तावन्वयः क्रियते तदा नामार्थयोरभेदान्वय इति व्युत्पत्तेर्भञ्जनं स्यात् एकार्थीभापपक्षे तु विशिष्टार्थवाचकत्वात् द्वयोः प्राप्तिपदिकार्थयोरभावान्न स दोष इति वक्तुम् शक्यते।

सन्दर्भग्रन्थाः—

1. परस्पराकाङ्क्षारूपा व्यपेक्षा। महाभारत 2.1.1 प्रदीपः
2. यत्र पदान्युपसर्जनीभूतस्वार्थानि निवृत्तस्वार्थानि वा प्रधानार्थोपानाद् व्यर्थानि अर्थान्तरभिधायीनि वा स एकार्थीभावः। महाभारत 2.1.1
3. पा. सू. 2.1.1 तत्त्वबोधिन्याम्
4. पा. सू. 2.1.1 तत्त्वबोधिन्याम्
5. पा. सू. 5.2.76
6. पा. सू. 3.2.124
7. वै. भू. सा. कारिका 31.22
8. पा. सू. 2.1.1
9. पा. सू. 2.2.35
10. वै. भू. सा. समासादिवृत्यर्थे
11. पा. सू. 2.2.35
12. प. ल. म. समासादिवृत्यर्थे
13. महाभारत 2.1.1
14. पा. सू. 2.1.11
15. पा. सू. 1.2.46
16. पा. सू. 1.2.46

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

व्याकरणशास्त्रीयं धात्वर्थसमीक्षणम्

❒ डॉ. रावेन्द्र कुमार मिश्र

व्याकरणशास्त्रं वेदपुरुषस्य मुखस्थानीयमस्ति 'मुखं व्याकरणं स्मृतम्'। मुखत्वादेव वेदाङ्गेषु इदं मुख्यम्। शब्दार्थयोः विश्लेषणमाधारीकृत्य अस्य व्याकरणस्योदय एतद् भूमण्डले भारतवर्षे एवाभवत्। व्याकरणस्य साक्षात् सम्बन्धो वेदेन सह वर्तते। यतोहि वेदेऽनेकपदानां व्युत्पत्तयः समुपलभ्यन्ते, यैः व्याकरणस्य प्राचीनत्वं सिद्ध्यति। महर्षिः पतञ्जलिः व्याकरणशास्त्रस्य प्रयोजनं महाभाष्ये प्रस्तुतवान्, यस्मिन् समुद्धरणे वेदस्य ऋचः प्रकाशितवान् तथा च तासां व्याकरणपरकमर्थमपि चक्रे। फलतः प्राचीनाचार्याणां दृष्टौ व्याकरणं वेदस्यैवाङ्गमस्ति।

व्याकरणमेकं शास्त्रं विद्यते यस्य स्वकीया स्वतंत्रसत्तास्ति। विचारप्रकटनस्य साधनं भाषा कथ्यते, तस्याः भाषायाः समीचीनार्थेषु संकेतानुरूपं वैज्ञानिकनियमनं व्याकरणस्य कर्तव्यमस्ति। अथवा एवं वक्तुं शक्यते यद् भाषायाः विश्रृंखलितं प्रवाहम् आवध्य सुरसरितामिव धर्मार्थकाममोक्षरूप– पुरुषार्थचुतुष्टयस्य प्रदात्रीं भाषां स्वनियमानां दृढतरैराबद्धुं सामर्थ्यं स्थापयति तदेव व्याकरणम्। अतः संक्षेपेण भाषायाः विचाराणञ्च क्रमबद्धेतिहासस्य बन्धनकारकं शास्त्रमेव व्याकरणमस्ति। अतः उक्ताशयेन स्पष्टं भवति, यत्संस्कृतभाषायाः सम्यग्बोधनाय संस्कृतव्याकरणस्य ज्ञानमनिवार्यं वर्तते। यतो हि व्याकरणज्ञानं विना संस्कृतभाषायाः सफलतापूर्वकमध्ययनं भवितुं नार्हति। व्याकरणमेव संस्कृतस्य कठिने चैवं दुरूहे शब्दसमूहे प्रवेशनस्यैकमात्रं साधनमस्ति।

व्याकरणशास्त्रस्य काव्यशास्त्रेण सहापि सम्बन्धो वर्तते। काव्यशास्त्रतत्त्वज्ञानामनुसारं सद्यः परनिर्वृतिं काव्यस्य परमं प्रयोजनं भवति। संस्कृतवाङ्मये काव्यकर्तॄणामेकान्यापि परम्परोपलभ्यते या व्याकरणादिक्लिष्टशास्त्र– व्युत्पत्तिकरणमेव स्वकाव्यस्य परमं प्रयोजनं मनुते। शास्त्रप्रधानं काव्यं शास्त्रकाव्यमुच्यते यथा– भट्टिमहाकविप्रणीतं रावणवधाख्यं महाकाव्यं तन्नाम्नैव 'भट्टिकाव्यमिति' ख्यातिं लेभे। एवंभूतेषु काव्येषु कविवैयाकरणेन नारायणभट्टेन विरचितं 'धातुकाव्यम्' वर्तते। यद् वासुदेवप्रणीतस्य 'वासुदेवविजयम्' इति नाम्ना चर्चितस्य काव्यस्य शेषपूर्तये विरचितं धातुकाव्यं त्रिसर्गात्मकमस्ति। यस्मिन् 1944 धातूनां काव्यत्वेन प्रयोगोऽस्ति। महाकविना श्रीमता नारायणभट्टविदुषा प्रतिपादिते धातुकाव्यनामके ग्रन्थेऽस्मिन् 1944 संख्याकपरिमितानां धातूनां प्रतिपादनं काव्यरूपेण कृतं चास्ति। प्रतिपादितग्रन्थे उल्लिखतानां समस्तधातूनां सुबन्ततिङ्गन्तादिरूपेण प्रयोगाः दरीदृश्यन्ते। समस्तकाव्ये धातुभिः निष्पन्नाः शब्दाः पद्यरूपेण निबद्धाः सन्ति।[1]

किन्नाम् व्याकरणशास्त्रमिति जिज्ञासायां व्याक्रियन्ते असाधुशब्देभ्यः साधुशब्दाः पृथक्क्रियन्ते बोध्यन्ते येन तद्व्याकरणम् इतिकरणव्युत्त्या[2]

* वार्ड क्र. 3, इन्दिरा कालोनी, बलौदा बाजार, (छ.ग.)

असाधुशब्दावधिक साधुशबदकर्मकपृथक्कृति– पूर्वकसाधुशब्दविषयकज्ञानकरणं व्याकरणम्। यथा– ग्रावी, गोणी, गोता इत्येवमादिभ्यः साधुशब्देभ्यो 'गो' इति साधुशब्दस्य पृथक्कृतिपूर्वकं ज्ञानं व्याकरणादेव सम्भवति। पृथक्करणञ्च गच्छतीति गौः औणादिकः डो प्रत्ययः[3] गम्धातोः कर्त्रर्थे इत्येवं प्रकृतिप्रत्यय– विभागपुरस्सरं जायते। तथा च साधुशब्दज्ञापक– शास्त्रत्वं शब्दनिष्ठसाधुत्वज्ञानजनकशास्त्रत्वं वा व्याकरणस्य लक्षणं पर्यवसन्नम्। अन्यत्सर्वम् असाधुशब्दज्ञानं प्रकृतिप्रत्ययादिज्ञानं च परिचायकमात्रं न तु लक्षणस्वरूपे निविशते, डित्थादिशब्दे प्रकृतिप्रत्ययज्ञानविभागस्य सम्भवात्।

व्याकरणे शास्त्रत्वसमन्वये–शिष्यते हितमुप– दिश्यते अनेनेति शास्त्रम्। अत्र व्याकरणजिज्ञासूनां कृते प्रकृतिप्रत्ययविवेकज्ञानं किञ्च शब्दनिष्ठ– साधुत्वज्ञानं वा हितम् अस्ति। अत एतदुपदेशको नियमविशेषः सूत्रात्मकः शास्त्रपदेनोच्यते इति व्याकरणस्य शास्त्रत्वं सिद्धयति। यथोक्तं भगवता पतञ्जलिना ''शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यमिति। तत्र शब्दानां साधुत्वानुशासन– मेवानुशासनम्, तदेव साधुत्वज्ञानं, शिष्यतेऽनेनशास्त्रेण इति कृत्वा व्याकरणस्य शास्त्रत्वं सिद्धयति।

अपरञ्च ''लक्ष्यलक्षणे व्याकरणम्'' इति भाष्यकृता तत्तल्लक्ष्यनिष्ठसाधुत्वज्ञानजनकं लक्षणं व्याकरणमिति बोधितम्। एवञ्च व्याकरणशब्दव्युत्पत्या शास्त्रशब्द– व्युत्पत्या प्रमाणान्तरेण च व्याकरणस्य शास्त्रस्य च लक्षणं विधाय व्याकरणस्य शास्त्रत्वं समन्वितम्।

''मुखं व्याकरणं स्मृतम्'' इति प्रमाणेन षट्सुवेदाङ्गेषु व्याकरणम् असाधारणं महिमानमावहति। एवञ्च रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणमितिवदता भाष्यकृता प्रतिपादितम्। वेदार्थज्ञानाय शक्तिग्रहसाधनेषु च व्याकरणशास्त्रं प्रामुख्येन विराजते।

धातोः वस्तुतः कोऽर्थ? इति जिज्ञासायां मीमांसकनैयायिकवैयाकरणादिविदुषां मतवैभिन्यं वर्तते। तत्तद्विदुषां मतमुद्धृत्य समीक्ष्यते सम्यक् समीक्ष्यते।

संक्षेपतः अधोलिख्यते– तत्र केचन फलमात्रं– धात्वर्थः, व्यापारः प्रत्ययार्थः, फलव्यापारौ धातुवाच्यौ, आख्यातार्थः भावना। केचित्तु फलमात्रंधात्वर्थः आख्यातार्थ कृति, तत्रेव केचन फलव्यापारौ धातुवाच्यौ आख्यातार्थः कृतिरिति वदन्ति।

तम्रादौ नैयायिकाभिमतम्– तत्र प्राच्यनैयायिको व्यापरमात्रस्यधात्वर्थः इति तथा चोक्तं व्युत्पत्तिवादेः– ''व्यापारमात्रस्य धात्वर्थत्वात्''।

तत्पर्यमिदं तस्य यद् ग्रामं गच्छतीत्यादौ व्यापारमात्रं धात्वर्थः फल। द्वितीयार्थः। आख्यातार्थः कृतिः, तत्रद्वितीयार्थस्य फलस्य प्रकृत्यर्थे निष्ठत्वसम्बन्धेन धात्वर्थव्यापारे चानुकूलत्व– सम्बन्धेनान्वयः। धात्वर्थव्यापारश्च प्रत्ययार्थे कृतौ विशेषणं प्रकृत्यर्थप्रत्ययार्थयोः प्रत्ययार्थस्यैव प्राधान्यात्। एव च ग्रामनिष्ठसंयोगानुकूलव्यापारानुकूलकृतिमानिति बोधः।

नव्यास्तु फलव्यापारयोः धात्वर्थत्वं प्रतिपादयन्ति। आख्यातार्थश्च कृतिः, न तु कर्ता प्रथमान्तपदादेव तल्लाभात् अनन्यलभ्यस्यैवशब्दार्थत्वात्। कृतौ शक्तिस्वीकारे लाघवं वर्तते। यतोहि कर्तरिचेत् स्वीक्रियते शक्तिस्तदा कर्तृत्वंनाम कृत्याश्रयत्वमिति– वक्तव्यम्, तच्चकृतिरूपं प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारी– भूतोऽर्थः भावप्रत्ययार्थइति नियमात्। एवञ्च कृतिराश्रय भेदात् अनेका तस्या एव शक्यतावच्छेदकत्वे गौरवम्। शक्यताबच्छेदकभेदात् शक्तिनानात्वप्रसङ्गाच्च। प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकश्च शाब्दबोधः। तस्य फलस्य व्यापारे व्यापारस्य च कृतौ विशेषणता। एवञ्च चैत्रः पचति इत्यादौ विक्लित्तिजनकव्यापा– रजनककृति– मांश्चैत्र इतिशाब्दबोधः।

वैयाकरणानांमतम् – फलव्यापरयोः धातुवाच्यत्वं वैयाकरणानां मतम्। आख्यातार्थश्च कर्तृकर्मणी। तत्राख्यातार्थकर्तुः, चैत्रादिनाऽभेदेनान्वयः। फलत्वञ्च अनुकूलत्वसम्बन्धेन व्यापारे विशेषणम् आख्यातार्थ– कर्तुरपि व्यापार एव निरुपकत्वसम्बन्धेनान्वयः व्यापारमुख्यविशेष्यकश्च शाब्दबोधः। ''भावप्रधान– माख्यातं सत्वप्रधानानि नामानि'' इति निरुक्तोक्तेः। भूषणसारकारेणोक्तम्–

फलव्यापारयोर्धातुराश्रयेतु तिङः स्मृताः।
फले प्रधानं व्यापारस्तिङर्थस्तु विशेषणम्।।[4]

अतः फलव्यापारौ धातुवाच्यौ, आख्यातार्थः कर्तृकर्मणी, व्यापारमुख्यविशेष्यकशाब्दबोधश्चेति वैयाकरणाः इति।

किन्नामफलमिति प्रश्ने श्रीकौण्डभट्टेनाटीकितम्– ''फलं विक्लित्यादिः'' इति। धातु वाच्यं फलं धत्वर्थजन्यत्वेसति धातुजन्योपस्थितीयविषयता– श्रयत्वात्। एवं त्यजि धातौ संयोगस्य गमिधातौ विभागस्य न फलम्। तत्र संयोगाविभागयोस्तद्– व्यापारजन्यत्वेऽपि धातुजन्योपस्थितीयविषयता– श्रयत्वाभावात्।

शब्दविज्ञानं व्याकरणशास्त्रस्यमुख्यप्रतिपाद्य– विषयः तथा पदपदार्थज्ञानपुरस्सरं लिङादिनिर्धारणं एवं शब्दानामुत्पत्तिप्रक्रियादीनां रोचकशैल्यां वैज्ञानिकं विवेचनं प्रस्तौति व्याकरणशास्त्रम्। व्याकरणशस्त्रस्य रूपद्वयं वर्तते। प्रथमं तु शब्देषु प्रकृतिप्रत्ययविभागरूपं सिद्धान्तकौमुद्यादिग्रन्थेषु प्रतिष्ठापितम्। प्रकृत्यर्थस्य प्रत्ययार्थस्य च किं स्वरूपंतयोः सम्बन्धः, शाब्दबोधे च कस्य प्राधान्यं, धातोश्चकोऽर्थः नाम्नाम्, प्रत्ययानां समासप्रभृतीनाम् अर्थप्रकाशनपरं द्वितीयरूपमिति। इदानीमुपलभ्यमानेषु लौकिकवैदिकोभयनिष्ठतया लाघवानुरोधिसाधुत्वज्ञानप्रक्रियया च महभ्दिभि– र्विद्वद्भिः– समादृतत्वेन पाणिनीयं व्याकरणं सर्वाणि व्याकरणान्तराणि अतिशय्य विराजते। यथोक्तं पराशरपुराणे–

पाणिनीयं महाशास्त्रं पदसाधुत्वलक्षणम्।
सर्वोपकारकं ग्राह्यं कृत्स्नं त्याज्यं न किञ्चन।।[5]

अतः पाणिनीयव्याकरणस्यमहत्वं मनसि निधाय प्रक्रियाज्ञानमिव अर्थप्रत्ययमावश्यकं मत्वा अंशमिमं परयितुं वैयाकरमसिद्धान्तज्ञानाय भट्टोजिदीक्षितेन भाष्यमूला कारिका निरमायि। तासां कारिकाणां वैशद्येन तात्पर्यं बोधयितुं शब्दकौस्तुभादुद्धृत्य ता एवाश्रित्य च वैयाकरणभूषणसारनामकं ग्रन्थं कौण्डभट्टो व्यरचयत्।

[6]पाणिनेरारभ्य भर्तृहरिपर्यन्तं[7] प्रसृतेयं व्याकरणशास्त्रपरम्परा न केवलं भारतीयानामपितु आखिलं विश्वं विमोहयति।

धात्वर्थसमीक्षायाँ धात्वर्थ–विषये फलव्यापारौ धातुवाच्यौ आख्यातार्थः कृतिः, फलमात्रं धात्वर्थः आख्यातार्थः कृतिरिति नैयायिकसम्मतं फलमात्रं धात्वर्थः व्यापारः प्रत्यायर्थः इति, अच च फलव्यापारौ धातुवाच्या आख्यातार्थः भावना'' इति मीमासांकमतमुपस्थाय वैयाकरणसिद्धान्तः फलव्यापारौ धातुवाच्यौ आख्यातार्थः कतृकर्मणीति।

सन्दर्भ–

1 व्याकरणशास्त्रदृष्ट्या धातुकाव्यस्य सामाक्षिक– मध्ययनम्
2. पा.सू. 3/3117
3. सि.कौ.तत्व वो. ग्णा प्रक. 3– पा.सू. 3/2/182
4. वैयाकरणभूषणसारः
5. पराशरपुराणम्
6. अष्टाध्यायीकारः पाणिनिः
7. वाक्यपदीयकारो भर्तृहरिः

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

वेदेषु गोतत्त्वम्

❒ डॉ. देवेन्द्रप्रसादमिश्रः

शोध सारांश

धर्मार्थिकाममोक्षाणां पुरुषार्थाणां साधनस्य मूलं गोदेवता एव वर्तते। हिन्दुधर्मस्य तु सौभाग्यवैभवौ गौमाता एव वर्तते। वर्तमानसमये राष्ट्रे सर्वत्रा अपरिमितरूपेण गोहत्या प्रचलति। फलस्वरूपतया दुग्धघृतादीनामभावेन भारतस्य सन्ततिः अल्पवययुता जाता, सर्वेषां मनुष्याणां स्वास्थ्यमपि अस्वाथ्यत्वेन जीवनं कष्टकरं जातम् एवं प्रकारेण भारतदेशः मृत्युपथे अग्रसरो वर्तते, सर्वकारेण न्यायालयेन च गोहत्यायाः पूर्णतया निरोधः कर्तव्यः, गोविषयकस्य ज्ञानस्याभावद्वारा अज्ञानान्धकारः जगति प्रचलति, तेन च राष्ट्रस्य विनाशोन्मुखता जायते। गोसेवा एवं गोवशस्योऽतिः भारतीयसंस्कृतेः अभिऽमर्घे वर्तते।

यया सर्वमिदं व्याप्तं जगत् स्थावरजर्घमम्।
तां धेनुं शिरसा वन्दे भूतभव्यस्य मातरम्।।[1]

'गच्छति इति गौः' इति व्युत्पत्त्या यः चलति, गच्छति वा इत्यर्थकत्वात् सम्पूर्णविश्वमेव गौः वर्तते। विश्वस्यान्तर्गते विद्यमानपदार्थानां वाचकः गोशब्दः। तद्यथा श्रुतिरपि वदति–

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता
स पिता स पुत्राः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजनाः
अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्।।[2]

अदितिरेव द्युलोकः, अदितिरेव अन्तरिक्षम्, अदितिरेव माता, आदितिरेव पुत्राः, अदितिरेव सर्वे देवताः, अदितिरेव पञ्चमानवः, किं बहुना अदितिरेव सर्वम्, अदितिरेव प्रजननशक्तिश्च वर्तते। निघुण्टुनामके वैदिकशब्दकोषे स्वर्गद्युलोकादित्यानां षट्नामानि प्रदत्तानि सन्ति तेषु अन्यतमः गौरित्यपि वर्तते। यथा–

स्वः। पृश्निः। नाकः। गौः। विष्टप्। नभः।

एवं प्रकारेण गौशब्दस्य यौगिकार्थः स्वर्गलोकः, द्युलोकः, सूर्यलोकश्च जातः। तद्यथा सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यन्ते[3]। गौ शब्दः पृथ्वीवाच्यपि भवति। तथा च निरुक्ते एव प्रतिपादितं वर्तते–

गौरिति पृथिव्या नामधेयं यदस्यां
भूतानि गच्छन्ति[4]।

गावो मनुष्याणां सर्वविधकल्याणं कुर्वन्ति। तद्यथा–

आ गावो अग्मुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु
गोष्ठे रणयन्त्वस्मे।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय
पूर्वोरुषसो दुहानाः[5]।।

---

* सहायकाचार्यो वेदविभागस्य श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, नवदेहली –16

अथर्ववेदे गवां त्रायः जातयः कथिताः सन्ति – **त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा। ताः प्रयच्छेद् ब्रह्मभ्यः सोनाव्रस्कः प्रजापतौ[6]।।**

विलिप्ती इत्यस्यार्थः यस्याः शरीरं घृतवत् चिक्वणमस्ति, सूतवशा = सेवकत्वेन स्थीयते चेदेव वशे भाति, वशा = या सर्वेषां वशे तिष्ठति। तद्यथा–

शतं कंसाः शतं दोग्धरः शतं गोप्तारो
अधि पृष्ठे अस्याः।
ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकध[7]।।

या इच्छानुसारेण दुग्धं ददाति सा एव कामधेनुः, रक्तवर्णयुक्तधेनोः दुग्धदधिघृतादीनां सेवनेन हृदयरोगाः एवं पाण्डुरोगाः दूरीभवन्ति। तथाचोक्तम्–

अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते।
गोरोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दधमसि।।[8]

अथर्ववेदस्यास्मिन् सूक्ते हृदयरोगस्य एवं कामिलारोगस्य चिकित्सायाः उपदेशः प्रदत्तो वर्तते। उदरविकारमद्यप्राशनतमालपत्रासेवनाद्यनेककार्यद्वारा हृदयरोगाः उत्पद्यन्ते। युवावस्थायां वीर्यदोषद्वारा अपि हृदये विकाराः उत्पद्यन्ते, कामिलारोगः पित्तस्य दूषितकारणात् उत्पद्यते। पूर्वोक्तरोगद्वारा मनुष्याः कुशकायनिस्तेजदीनादयः भवन्ति। एवञ्च पूर्वोक्तरोगादिनिवारणोपायं वेदस्य सूक्तेस्मिन् वर्णितं वर्तते। यदि सूर्यरश्मिद्वारा चिकित्सा क्रियते, रक्तवर्णयुक्ता गोः दुग्धदिद्वारा चिकित्सा करणे सति पूर्वोक्तदोषाः दूरीभवन्ति एवञ्च उत्तमस्वाथ्यप्राप्तिश्च भवति।

गवि सत्ययज्ञज्ञानवेदतपादीनां निवासो भवति। तद्यथा–

ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्वा सर्वांल्लोकान्त्समश्नुते।
इृतं ह्यस्यामर्पितमपि ब्रह्माऽथो तपः[9]।।

गोः दुग्धस्य प्रतिष्ठा स्वर्गे अपि भवति। तथा चोक्तम् –

वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये।
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते[10]।।

येन कार्येण गवे कष्टं भवति तादृशं कार्यं कदापि न कर्तव्यम्। गौ सदा प्रसा कर्तव्या। तद्यथा–

यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते।
लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कुणुते स्वम्[11]।।

गोमयगोमुत्रो सर्वातिशायित्वेन पवित्रो एवं मानवजीवने उपयोगिनी च वर्तेते, एतयोः त्यागः क्रियते चेत् सः पापभागी भवति। यथा –

यदस्याः पल्पूलनं शकृद् दासी समस्यति।
तपोऽपरूपं जायते तस्मादब्येष्यदेनससः[12]।।

गोदानस्य प्रथा वैदिककालादेव प्रचलति, अहं गां संप्रददे एवं प्रकारेण कथनमेव सभ्यपुरुषाणां रीतिः वर्तते। यज्ञादिवैदिकसंस्काराणामन्ते ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणारूपेण गोदानं दीयते स्म। दाने उत्तमगोः दानस्य एव विधनं वर्तते। श्रुतौ दशतः आरभ्य षष्ठिसहङ्गोदानस्य वर्णनं वर्तते। भगवती श्रुतिरपि कथयति यत्–

त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान् दयन्तं गोनाम्[13]।।

हे प्रहुत अग्ने! विद्वांसस्तव प्रियाः भवन्तु, एवमेव यो ध्नवान् पुरुषो ब्राह्मणाय गवां समूहं ददाति तेऽपि तव प्रयाः भवन्तु इति। भगवती श्रुतिरपि गवां स्तुतिं करोति। तद्यथा –

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः।
बालेभ्यः शपफेभ्यो रुपायाध्न्ये ते नमः।।
यया द्योर्यया पृथिवी ययाऽपो गुपिता इमाः।
वशां सहङ्धरां ब्रह्मणाच्छावदामसि[14]।।

भगवती श्रुति कथयति हे देवताः! यः घृतसहितहविर्भागद्वारा तव सत्कारं करोति, तस्य समीपं गच्छ इति। तद्यथा–

यो वो देवा घुतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति।
तं विश्व उप गच्छथ[15]।।

अग्नेः प्रार्थना कृता वर्तते यत् हे अग्ने! यः अस्मिन् यज्ञे वसुरुद्रादित्यदेवतानां घृताहुतिं ददाति

एवं उत्तमयज्ञं करोति तस्य मनुष्यस्य सत्कारं कुरु इति –

त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत।
यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम्[16]।।

अनेन मन्त्रोण स्पष्टो भवति यत् अग्नौ आहुतिः घृतसहिता एव प्रदेया इति। वेदे गोर्नाम अघ्न्या इति वर्तते, यस्यार्थः अबध्या इति। यथा वैयक्तिकजीवनस्य कृते वैदिकोपदेशस्य उपयोगिता वर्तते तथैव सामाजिकराष्ट्रियजीवनयोः कृते अपि वेदे वर्णितोपदेशस्य मननार्थमुपादेयं वर्तते। वेदे गवां महिमा वर्णिता अस्ति। कृष्णायाः कामधेनोः इतुप्राप्तदुग्धद्वारा मनुष्यस्य पूर्णता भवति। संवत्सरवर्षमथवा कालः कामधेनुः वर्तते। कालसम्बन्धित्वात् अस्याः नाम कृष्णा धेनुः इति वर्तते, अस्याः नाम कामधेनुः एतस्मात् कारणात् वर्तते यत् मनुष्यादीनामिच्छितपफलधन्यादीनां पदार्थानामृत्वनुसारेण ददाति। प्रत्येकस्य इतोरनुकूलानि नानाप्रकारकाणि फलपुष्पादीनि संवत्सरः ददातीति, एतदर्थमेव वेदे संवत्सरं पितृत्वेन प्रतिपादितं वर्तते, एवमेव कामधेनुपदेनापि कथिता वर्तते। मनुष्यः स्वपुरुषार्थद्वारा प्रत्येकस्मिन् इतौ अधिकाधिकं दुग्धेत्पादनं करोतु, दुग्धस्य उपयोगेन च स्वास्थ्यलाभं कुरु इति भगवती श्रुतिः प्रतिपादयति–

समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्ते{नु मन्यन्तामहृणीयमानाः[17]।।

अस्यार्थः मासद्वयस्य एका इतुः भवति, प्रत्येकस्य इतोः शक्तिः पृथक्पृथगेव भवति। संवत्सराकारेण विद्यमानायाः गोः दुग्धमेव षड् इतवः वर्तन्ते, दुग्धं मनुष्याः पिबन्तु, बलवान् अपि भवन्तु, अस्यानुकूला इन्द्राग्न्यादयः देवताः कुर्वन्तु इति। मनुष्याः गोसेवाद्वारा स्वस्य आ वारोग्यबलवीर्यादिकं संवर्ध्य जगतितले यशस्वी भवितुं शक्नोति। गवादिदेवतानां सहयोगराहित्येन कः मनुष्यः कथमुऽतिं प्राप्तुं शक्नोति? सद्गृहस्थैः गोपालनार्थमुत्तमगोशालायाः निर्माणं कर्तव्यम्, गोः कृते उत्तमजलव्यवस्था प्रदेया। गोषु सदा सर्वदा प्रेम कर्तव्यम्, गवे योग्यमुत्तमं भक्ष्यपदार्थं स्वीकृत्य प्रतिदिनमर्पणं कर्तव्यम्। अथर्ववेदे श्रुतिरपि कथयति यत् –

सं वो गोष्ठेन सुषदा सं र या सं सुभूत्सा।
अहर्जातस्य य ाम तेना वः सं सृजामसि[18]।।

अर्यमापूषाबृहस्पतीन्द्रादयः सर्वे देवतागणाः गोः पोषणं कुर्वन्तु, एवञ्च पुष्टगोद्वारा यत् पोषकतत्त्वं दुग्धं प्राप्यते तत् मम पुष्टङ्कर्थं मयि प्रापय इति। तथा च श्रुतिः –

सं वः सृजत्वर्यमा सं पूषां सं बृहस्पतिः।
समिन्द्रो यो ध्नञ्जयो मयि पुष्यत यद्वसु[19]।।

भगवती श्रुतिः कथयति यत् –

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः।
बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन।।
इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत।
इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः[20]।।

अर्थात् उत्तमगोमयोत्पादनसमर्था, दुग्धसदृशमधुररसप्रदाता, निरोगस्थाने विचरन्त्यः गावः अस्यां गौशालायामागत्य निवासं कुर्वन्तु, अत्रा पुष्टाः भवन्तु, सन्तानोत्पत्तिं कुर्वन्तु एवं गोस्वामिं प्रति प्रेम कृत्वा आनन्देव तिष्ठन्तु इत्यादि।

गोः विश्वरूपप्रतिपादनम् –

अथर्ववेदस्य नवमे काण्डे सम्पूर्णेऽस्मिन् सूक्ते गोवृषयोः विश्वरूपत्वेन प्रतिपादितं वर्तते। श्रीकृष्णेन भगवद्गीतायां स्वस्य विश्वरूपस्य वर्णनं येन प्रकारेण कृतं तथैव गोरपि विश्वरूपस्य वर्णनमस्मिन् सूक्ते कृतं वर्तते। भगवती अथर्ववेदस्य श्रुतिः कथयति यत् –

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृर्धं इन्द्रः
शिरो अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम्।।
सोमो राजा मस्तिष्को द्योरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः।।
विद्युज्जिवा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः

कृत्तिका स्कन्ध धर्मो वहः।।
विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विध्रणी निवेष्यः।।
श्येनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्यं बृहस्पतिः
ककुद् बृहतीः कीकसाः।।
देवानां पत्नीः पृष्टय उपसदः पर्शवः।।
मित्राश्च वरुणांश्चासौ त्वष्टा चार्यमा
च दोषणी महादेवो बाहू।।
इन्द्राणी भसद् वायुः पुच्छं पवमानो बालाः।।
ब्रह्म च क्षत्रां च श्रोणी बलमुरु।।
धता च सविता चाष्ठीवन्तौ जघ्घा
गन्ध्वाप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शपफाः।।
चेतौ हृदयं यकृन्मेध व्रतं पुरीतत्।।
क्षुत् कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः।।
क्रोधे वृक्कौ मन्युपराण्डौ प्रजा शेषः।।
नदी सूत्राी वर्षस्य पतयः स्तनाः स्तनयित्नुरुधः।।
विश्वव्यचाश्चर्मौषधयोः लोमानि नक्षत्राणि रूपम्।।
देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्राा उदरम्।।
रक्षांसि लोहितमितरजना उफबध्यम्।।
अभ्रं पीवो मज्जा निधनम्।।
अग्निरासीन उत्थितोश्विना।।
इन्द्रः प्राघ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः।।
प्रत्यघ् तिष्ठन् धतोदघ् तिष्ठन् सविता।।
तृणानि प्राप्तः सोमो राजा।।
मित्रा ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः।।
युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम्।।
एतद्वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरुपम्।।
उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः
पशवस्तिष्ठन्ति य एवं वेद[21]।।

गावो विश्वस्य मातरः

धर्मार्थकाममोक्षाणां पुरुषार्थाणां साधनस्य मूलं गोदेवता एव वर्तते। हिन्दुधर्मस्य तु सौभाग्यवैभवौ गौमाता एव वर्तते। वर्तमानसमये राष्ट्रे सर्वत्रा अपरिमितरूपेण गोहत्या प्रचलति। फलस्वरूपतया दुग्धघृतादीनामभावेन भारतस्य सन्ततिः अल्पवययुता जाता, सर्वेषां मनुष्याणां स्वास्थ्यमपि अस्वाथ्यत्वेन जीवनं कष्टकरं जातम्, एवं प्रकारेण भारतदेशः मृत्युपथे अग्रसरो वर्तते, सर्वकारेण न्यायालयेन च गोहत्यायाः पूर्णतया निरोधः कर्तव्यः, गोविषयकस्य ज्ञानस्याभावद्वारा अज्ञानान्धकारः जगति प्रचलति, तेन च राष्ट्रस्य विनाशोन्मुखता जायते। गोसेवा एवं गोवशस्योऽतिः भारतीयसंस्कृतेः अभिऽमर्घैं वर्तते। गोमये परमपवित्राा सर्वमर्घैलमयी श्रीलक्ष्मी निवसति। तस्मादेव कारणात् गोमयेन लेपनं कर्तव्यम् –

लक्ष्मीश्च गोमये नित्यं पवित्रा सर्वमर्घैला।
गोमयालेपनं तस्मात् कर्तव्यं पाण्डुनन्दन[22]।।

शास्त्रो घृतस्य सर्वश्रेष्ठरसायनत्वेन स्वीकृतं वर्तते 'आयुर्वै घृतम्' इत्यादिना। देवतानामेवं पितृणामाहुतिप्रापकत्वेन शास्त्रो मार्गद्वयं प्रथितं वर्तते। अग्निरेवं ब्राह्मणस्य मुखम्। श्रीमद्भागवते भगवता प्रतिपादितं वर्तते यत् अहमग्निद्वारा घृताहुतेः भक्षणं कृत्वा तथा प्रस ो न भवामि यथा ब्राह्मणस्य मुखे घृतनिर्मिताहुतिद्वारा सन्तुष्टो भवामि। तद्यथा –

नाहं तथाप्रि यजमानहविर्विताने–

श्च्योतद्घृतप्लुतमदन् हुतभुघ्मुखेन।
यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं
तुष्टस्य मऽयवहितैर्निजकर्मपाकैः[23]।।

अस्याशयो यत् उभयप्रकारद्वारा देवतानां तृप्त्यर्थं तथा भगवत्प्राप्त्यर्थऽच गोः परमोपयोगिता सिद्धति। गोः दर्शनेन एवं स्पर्शद्वारैव शरीरे पवित्रा आगच्छति, पापस्य च नाशो भवति, गोः शरीरे त्रायस्त्रिांशत्कोटि– देवतानां निवासः स्वीकृतो वर्तते। गोः खुरद्वारा प्रवाहितधूलिकिरणाः अपि अतिपवित्रात्वेन स्वीकृतं वर्तते। स्वाहा एवं वषट्कारः सदा गवि एव प्रतिष्ठितो भवति। गावः यज्ञस्य संचालनं कुर्वन्ति। अनेन पूर्वोक्तेन कारणेन सिद्धति यत् वेदेषु विद्यमानं गोतत्त्वं सर्वातिशायि श्रेष्ठं मानवजीवने सुखप्रदं च वर्तते। अत एवोच्यते अस्माकं परम्परायाम् –

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगदि्ताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।।

इति शम्।

1. महा.अनु. 80.15
2. शुक्लयजुर्वेदः 25.23
3. निरुक्तम् 2.1.7
4. निरुक्तम् 2.1.1
5. ऋग्वेदः 6.28.1
6. अथर्ववेदः 12.4.47
7. अथर्ववेदः 10.10.15
8. अर्थर्ववेदः 1.22.1
9. अथर्ववेदः 10.10.33
10. अथर्ववेदः 10.10.31
11. अथर्ववेदः 12.4.6
12. अथर्ववेदः 12.4.9
13. ऋग्वेदः 7.16.7
14. अथर्ववेदः 10.10.1,4
15. ऋग्वेदः 6.52.8
16. ऋग्वेदः 1.45.1
17. अथर्ववेदः 1.35.4
18. अथर्ववेदः 3.14.1
19. अथर्ववेदः 3.14.2
20. अथर्ववेदः 3.14.3–4
21. अथर्ववेदः 9.4.1–26
22. स्कन्दः अ.रे.83.108
23. भागवतम् 3.16.8

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

गेहूँ की फसल में खरपतवार द्वारा खरपतवारों का नियंत्रण

❒ शिव प्रसाद विश्वकर्मा*
❒ एस. पी. वर्मा**

Corresponding Authors : drspverma_kadc@rediffmail.com

शोध सारांश

कुलभाष्कर आश्रम स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद के प्रायोगिक फसल उत्पादन प्रक्षेत्र पर वर्ष 2011-12 एवं 2012-13 में गेहूँ की फसल में उगने वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु विभिन्न उपचारों द्वारा खरपतवारनाशी रसायनों की एकल एवं संयुक्त प्रभाव देखा गया। प्रयोगोपरान्त यह पाया गया कि फ्लूरोक्जीपाइर खरपतवारनाशी से केवल चौड़े पत्ती वाले खरपतवार ही नियंत्रित होते हैं। संकरी पत्ती वाले खरपतवारों का नियंत्रण नहीं हो पाता है। जबकि आइसोप्रोट्युरान की 0.50 किग्रा/हे. + फ्लूरोक्जीपाइर की 0.20 अथवा 0.30 किग्रा/हे. मात्रा का संयुक्त रूप से प्रयोग से चौड़ी एवं संकरी दोनों प्रकार के खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण हो जाता है। प्रयोग में यह पाया गया है कि फ्लूरोक्जीपाइर की 0.30 किग्रा/हे. + 2, 4-डी की 0.25 किग्रा/हे. अथवा फ्लूरोक्जीपाइर की 0.30 किग्रा/हे. + आइसोप्रोट्युरान की 0.50 किग्रा/हे. के संयुक्त प्रयोग में उपज एकसमान प्राप्त हुई।

खरपतवार फसलों से पोषक तत्त्वों, नमी, प्रकाश के लिए प्रतियोगिता करते हैं। फसल की जड़ से निकटता एवं प्रति इकाई क्षेत्र में इनकी संख्या के आधार पर खरपतवार फसलों से प्रतियोगिता करके उसकी वृद्धि, विकास एवं उपज को प्रभावित करते हैं। (रेड्डी एवं रेड्डी, 1997) खेत में खरपतवारों की किस्म एवं उनकी सघनता के आधार पर गेहूँ की उपज 7 से 50 प्रतिशत तक कम हो जाती है। (कुरचनियाँ तथा सहयोगी, 2002) इष्टतम बीज दर के प्रयोग एवं सही फसल ज्यामिति एवं उचित खरपतवार प्रबंध से खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है।

प्रयोगात्मक

प्रस्तुत प्रयोग कुलभाष्कर आश्रम पी.जी. कालेज के प्रायोगिक फसल उत्पादन प्रक्षेत्र पर वर्ष 2011-12 एवं 2012-13 में 6×4 मी. के प्लाटों में किया गया। गेहूँ की मालवीय प्रजाति की बुवाई की गई। नाइट्रोजन की 60 किग्रा, फास्फोरस की 60 किग्रा तथा जिंक की 25 किग्रा मात्रा/हे. की दर बुवाई के समय बेसल डोज के रूप में, नाइट्रोजन की शेष 60 किग्रा/हे. मात्रा 25वें दिन बाद टाप ड्रेसिंग के रूप में एक समान रूप से डाली गई। फसल की बुवाई वर्ष 2011-12 में 25 नवम्बर तथा 2012-13 में 30 नवम्बर को की गयी।

* कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कालेज, इलाहाबाद-211001
** कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कालेज, इलाहाबाद-211001

फ्लूरोक्सीपाइर की 0.10, 0.20, 0.30, 0.40 तथा 0.50 सं. अ./हे., 2, 4-डी, 0.50 किग्रा सं. अ./हे., आइसोप्रोट्युरान 1.0 किग्रा स.अ./हे., फ्लूरोक्सीपाइर 0.3 किग्रा सं.अ./हे. + 2, 4-डी, 0.25 किग्रा स.अ./हे., फ्लूरोक्सीपाइर 0.2 किग्रा सं.अ./हे. + आइसोप्रोट्युरान 0.5 किग्रा सं.अ./हे. तथा फ्लूरोक्सीपाइर 0.3 किग्रा सं.अ./हे. + आइसोप्रोट्युरान 0.5 किग्रा सं.अ./हे. तथा फ्लूरोक्सीपाइर 0.3 किग्रा सं.अ./हे. + आइसोप्रोट्युरान 0.5 किग्रा सं.अ./हे. के कुल 11 उपचारों का प्रयोग किया गया। उपरोक्त उपचारों की दो नियंत्रित प्लाटों से तुलना की गई। पहले नियंत्रित प्लाट को बिना कोई उपचार किये खरपतवार सहित रखा गया जबकि दूसरे नियंत्रित प्लाट को खुरपी द्वारा निराई कर पूर्णतः खरपतवार रहित रखा गया। सभी 13 उपचारों का यादृच्छिक ब्लाक डिजाइन विधि के अनुसार 3 पुनरावृत्ति के माध्यम से गेहूँ की फसल उगाई गई। सभी खरपतवार नाशी बुवाई के 35 दिन पर छिड़के गये। बुवाई के 90 दिन बाद प्रतिवर्ग मीटर में सकल खरपतवार संख्या गणना की गई तथा शुष्क भार ग्राम में ज्ञात किया गया। खेत में उगे मुख्य खरपतवारों बथुआ, लेथरी, मटरी तथा मंडूसी का 40 दिन पर तथा 110 दिन पर नियंत्रण प्रतिशत (अनियंत्रित और 100 पूर्णतः नियंत्रित) ज्ञात किया गया। मूल आँकड़ों को नियंत्रण प्रतिशत में परिवर्तित किया गया। सभी आँकड़ों को एनालिसिस आफ वैरिएंस विधि से विश्लेषण किया गया।

सारणी (1)

गेहूँ की बुवाई के 40 एवं 110 दिन पर फ्लूराक्जीपाइर का अकेले तथा 2, 4-डी अथवा आइसोप्रोट्युरान के साथ संयुक्त रूप से प्रयोग करने पर खरपतवारों का नियंत्रण

उपचार (किग्रा स0अ0/हें0)	नियंत्रण						
	बुवाई के 45 दिन पर		बुवाई के 110 दिन पर				
	बथुआ	लेथरी	मंडूसी	जंगली जई	बथुआ	लेथरी	मटरी
फ्लूरोक्जीपाइर 0.10	0	0	0	0	50	30	30
फ्लूरोक्जीपाइर 0.20	0	0	0	0	62	50	50
फ्लूरोक्जीपाइर 0.30	42	27	0	0	73	60	60
फ्लूरोक्जीपाइर 0.40	70	30	0	0	73	64	64
फ्लूरोक्जीपाइर 0.50	76	42	0	0	73	63	65
फ्लूरोक्जीपाइर+2,4–डी (0.20+0.25)	90	47	0	0	73	65	65
फ्लूरोक्जीपाइर+2,4–डी (0.30+0.25)	90	46	0	0	73	63	63
फ्लू0+आइसोप्रोट्यूरान (0.20+0.50)	90	54	70	65	73	64	64
फ्लू0+आइसो0 (0.30+0.50)	90	50	73	66	73	63	63
2, 4–डी–0.50	85	40	0	0	73	56	56
आइसोप्रोट्यूरान–1.0	85	42	73	73	73	50	50
खरपतवार रहित	90	90	90	90	90	90	90
खरपतवार सहित	0	0	0	0	0	0	0
CD=(P=0.05)	13	8	2	3	4	6	5

नोट–नियंत्रण के मूल आँकड़ों को परिवर्तित किया गया है।

सारणी (2)

गेहूँ की बुवाई के 90 दिन पर फ्लूराक्जीपाइर का अकेले और 2, 4-डी तथा आइसोप्रोट्युरारान के साथ में खरपतवारों की संख्या, खरपतवारों का शुष्क भार तथा उपज पर प्रभाव

उपचार	खरपतवारों की कुल संख्या		कुल खरपतवारों का शुष्क भार (ग्रा0)		उपज (कु0/हे)	
	2011–12	2012–13	2011–12	2012–13	2011–12	2012–13
फ्लूराक्जीपाइर – 0.10	4.1	4.8	35.7	96.3	4318	3730
फ्लूराक्जीपाइर – 0.20	3.6	4.7	34.2	85.1	4760	3860
फ्लूराक्जीपाइर – 0.30	3.3	4.7	23.0	74.2	4820	4578
फ्लूराक्जीपाइर – 0.40	3.2	4.1	23.2	71.4	4823	4042
फ्लूराक्जीपाइर – 0.50	3.2	4.1	20.0	66.1	4942	4330
फ्लूराक्जीपाइर+2,4–डी (0.20+0.25)	3.0	3.7	31.8	72.0	4953	4682
फ्लूराक्जीपाइर+2,4–डी (0.30+0.25)	2.8	3.9	29.7	71.2	5052	4747
फ्लूरा0+आइसोप्रोट्यूरान (0.20+0.50)	2.8	3.1	15.9	64.3	5010	4503
फ्लूरा0+आइसोप्रोट्यूरान (0.30+0.50)	2.0	2.8	6.5	26.0	4865	4749
2,4–डी–0.50	2.7	3.7	17.2	70.6	4330	4502
आइसोप्रोट्यूरान–1.0	1.3	2.4	2.6	19.3	5280	4930
खरपतवार रहित	1.0	1.0	0.0	0.0	5300	5180
खरपतवार सहित	6.0	5.8	42.4	139.20	4110	3231
CD (P=0.05)	1.0	0.8	15.8	31.7	583	816

नोट- परिवर्तित आँकड़े प्रदर्शित।

परिणाम तथा विवेचना

सकल खरपतवारों की संख्या खरपतवार सहित प्लाट की तुलना में फ्लूराक्सीपाइर उपचारित प्लाटों में सार्थक रूप से कम पायी गयी। (पाण्डेय एवं द्विवेदी, 2007), वर्ष 2011-12 में सकल खरपतवारों का शुष्क भार समान ही पाया गया (सारणी-2)। सारणी-1 से यह स्पष्ट है कि फ्लूराक्सीपाइर की 0.30 किग्रा/हे. या उससे अधिक मात्रा के प्रयोग से चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों पर प्रभावी नियंत्रण रिकार्ड किया गया। फ्लूराक्सीपाइर 0.30 किग्रा/हे. + 2, 4-डी 0.25 किग्रा/हे. अथवा फ्लूराक्सीपाइर 0.20 किग्रा या 0.30 किग्रा/हे. + आइसोप्रोट्युरान 0.50 किग्रा/हे. उपचारित प्लाटों में खरपतवारों की संख्या

एवं उनका शुष्क भार खरपतवार सहित प्लाट की तुलना में सार्थक रूप से कम पाया गया। (पाण्डेय तथा सहयोगी, 2007) जबकि इन प्लाटों में खरपतवारों का शुष्क भार एवं उनकी कुल संख्या आइसोप्रोट्युरान 1.0 किग्रा/हे. की दर से उपचारित प्लाटों की तुलना में अधिक रही। क्योंकि आइसोप्रोट्युरान द्वारा घासों एवं बथुआ का नियंत्रण 73 प्रतिशत हुआ। अकेले 2, 4-डी द्वारा चौड़ी पत्ती के खरपतवार के नियंत्रण फ्लूराक्सीपाइर की 0.20 किग्रा/हे. द्वारा नियंत्रण के बराबर पाया गया।

सारणी-2 से यह स्पष्ट है कि फसल के सम्पूर्ण जीवन काल में खरपतवारों की उपस्थिति के कारण गेहूँ की उपज 2011-12 में 1190 किग्रा/हे. तथा वर्ष 2012-13 में 1949 किग्रा की कमी हुई। खरपतवारों सहित प्लाटों की तुलना में फ्लूरोक्सीपाइर 0.40 या 0.50 किग्रा/हे. तथा फ्लूरोक्सीपाइर 0.30 किग्रा/हे. + आइसोप्रोट्युरान 0.50 किग्रा/हे. उपचारित प्लाटों की उपज में क्रमशः 17, 24 एवं 23 प्रतिशत की वृद्धि हुई। केवल आइसोप्रोट्युरान उपचारित प्लाट की उपज में औसतन 28.46 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त हुई। उपचारित प्लाटों में खरपतवार फसल से प्रतियोगिता नहीं कर पाये जिससे वृद्धि एवं विकास के सभी कारक फसल के लिए अनुकूल रहे। फलतः अधिक उपज प्राप्त हुई। (शर्मा एवं सहयोगी, 1999)। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को फ्लूराक्सीपाइर द्वारा उपचारित प्लाटों की उपज अधिक पाई गयी। फ्लूराक्सीपाइर के 0.20 किग्रा/हे. मात्रा के प्रयोग से चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण हुआ (सारणी-2) इसलिए इसे 2, 4-डी के सुरक्षित विकल्प के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

निर्देश

रेड्डी, टी. येल्लामाण्डा तथा रेड्डी, जी.एच. शंकरा (1997), A text book of Principles of Agronomy my Kalyani Publishers, New Delhi.

कुरचनियाँ, एस.पी., भल्ला, सी.एस. तथा पराडकर, एन.आर. : J. Weed Se (2000), 32 (1&2), 67-69.

पाण्डेय, आई.वी. द्विवेदी, डी.के. तथा पाण्डेय, आर.के. : Indian J. Agron. 2007, 52 (1) 49-52.

पाण्डेय, आई.वी., द्विवेदी, डी.के. तथा पाण्डेय, आर.के. : Indian J. Agron. 2007, 52 (3) 235-38

शर्मा, बी.डी., नरवल, आर.के. तथा पवार आर.एस. : Indian J. Weed Se (1999), 31 (1&2) : 90-100

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

A Comparative Study of Job Satisfaction in Part Time and Full Time Teachers of KGBV of Uttar Pradesh

❒ Dr S P Verma[1]
❒ Dr Adesh Kumar Verma[2]
❒ Mamta Kanoujia[3]

Corresponding Authors : drspverma_kadc@rediffmail.com

ABSTRACT

This research work has been done to measure the satisfaction level of part time and full time teachers of KGBVs. Many researchers have worked in the area of employees' job satisfaction with different organizations but this kind of research work has not been done before in KGBVs. We went ahead in this research with sample size of 80 teachers. The purpose of this research is to elaborate the key factors which are useful for the satisfaction of the teachers. Data were collected based on structured questionnaire method on Likert five point scale for 8 major variables which namely Salary, Environment of school, Time schedule, Work overload, Feeling of inequality, Relationship with Supervisors, Contractual nature of job and Leave pattern. These factors help to make the policies effective and through this effectiveness, efficiency takes place in the management process. We found the employees to be satisfied on the basis of above said eight factors. For the purpose of data analysis we used IBM SPSS 20. The main objective of this research report is to find the crucial problems, faced by the PTT and FTT while working in KGBVs and find the ways how we make our employees loyal with their responsibilities and organization.

KEYWORDS: Education, Motivation, Satisfaction, Work efficiency, Organizational culture, Salary, Time schedule.

1. Associate Professor, Kulbhaskar Ashram P G College, Prayagraj
2. Ph.D. Research Scholar, IVRI, Izatnagar Bareilly
3. Full Time Teacher at KGBV Lakhimpur Kheri

INTRODUCTION

The Kasturba Gandhi Balika Vidyalaya (KGBV) scheme was launched by the Government of India in August, 2004 for setting up residential schools at upper primary level for girls belonging predominantly to the SC, ST, OBC and minorities in difficult areas. The scheme is implemented in educationally backward block of the country where the female literacy level is below the national average. The objective of KGBV is to ensure access and quality education to girls from disadvantaged groups by setting up residential schools at upper primary level. In Uttar Pradesh, each KGBV caters to 100 girl children in classes 6 – 8. 2578 KGBVs were sanctioned by Government of India till date. Of these, 427 KGBVs have been sanctioned in Muslim concentration blocks, 612 in ST blocks, 688 in SC blocks. A total of 750 residential schools would be opened in educational backward blocks. 75% enrollment is reserved for girls from SC, ST, OBC and Minority communities and the other 25% to girls from families below the poverty line. There are two types of teaching staff for school – Part time teacher and full time teacher. Part time teacher takes the formal classes in scheduled manner while full time teacher are working as teacher as well as a guardian and focused on overall development of students. Working quality and efficiency of teachers depends on their satisfaction with this job. Job satisfaction is a set of favorable or unfavorable feelings with which employees view their work. It is a worker's sense of achievement and success and is generally perceived to be directly linked to productivity as well as to personal wellbeing. The happier people are within their job, the more satisfied they are said to be. Job satisfaction implies doing a job one enjoys, doing it well, and being suitably rewarded for one's efforts. Job satisfaction can be influenced by a variety of factors, e.g., the quality of one's relationship with their warden, the quality of the physical environment in which they work, work load, salary etc. Job satisfaction is not the same as motivation, although it is closely linked, but satisfaction includes the management style and culture, employee involvement, empowerment and autonomous work groups. Job satisfaction is a very important attribute which is frequently measured by organizations. The most common way of measurement is the use of rating scales where employees report their reactions to their jobs. For the school, job satisfaction of its teachers means a work force that is motivated and committed to high quality performance. Teacher's satisfaction surveys provide the information needed to improve levels of performance and loyalty. Satisfaction levels increase when an employee knows that their issues are being addressed. There is a direct link between employee job satisfaction and their performance. In this Research paper we have tried to make a comparison of Job satisfaction between Part Time Teachers (PTT) and Full Time Teachers (FTT) of KGBVs of Uttar Pradesh and tried to find out the basic reasons of dissatisfaction in job.

IMPORTANCE/NEED OF THE STUDY

This research paper throws light on the comparison of satisfaction among Part Time Teachers and Full Time Teachers of KGBVs of Uttar Pradesh on the basis of key variables. The need of paper states that which type of teachers have more contentment with their responsibilities and whether there is any discretion among the teachers while selecting the job. Problem why people are more attracted towards part time or full time teaching as the pay scale is more for FTT while time schedule is less for PTT.

MATERIAL AND METHODS

Present study was carried out in Lakhimpur Kheri and Bareilly districts of the Uttar Pradesh. Uttar Pradesh was selected purposively due to

highest human population in India. Both districts were selected randomly. From each districts 10 KGBVs were selected randomly in this way total 20 KGBVs were selected for study. From each KGBV 2 PTT and 2 FTT was selected on the basis of their job experience. In this way total 80 teachers were selected for study and they were interviewed with the help of interview schedule keeping in view the objectives of the study. Responses of teachers were taken on five continuums as highly satisfied, satisfied, neutral, dissatisfied and highly dissatisfied. After collection, data were compiled, tabulated and analyzed by using Statistical Package of Social Sciences (SPSS).

RESULT AND DISCUSSION

Table 1 shows that PTT and FTT both were not satisfied with their salary as they were getting less than 10 thousand per month and doing hard work to teach the dropout students as compare to regular teachers of other government schools. In compare of PTT, FTT were more dissatisfied in terms of salary because they are doing job as a teacher as well as a guardian to develop overall personalities of the students. Working environment of school is also contributes in job satisfaction of teachers. Most of the teachers, both FTT and PTT were satisfied with working environment but this satisfaction is also higher in PTT in compare to FTT.

Table:
1 Mean score of different variables.

S.N.	Variables	PTT	FTT
1	Salary	2.65	1.94
2	Environment of school	4.13	3.46
3	Time schedule	4.2	2.34
4	Work overload	3.32	3.30
5	Feeling of inequality	3.04	2.10
6	Relationship with Supervisors	2.28	3.15
7	Contractual nature of job	2.31	2.45
8	Leave pattern	4.12	1.85

Data in table 1 also revealed that in terms of time scheduling responses of PTT and FTT were highly differs. Most of the PTT are highly satisfied with this schedule while FTT were dissatisfied with time schedule. This large gap in satisfaction with time schedule needed attention of policy makers to keep up FTT motivated toward their responsibilities. Both PTT and FTT feel that work over load was not a critical variable in their job satisfaction and they were satisfied with work overload this satisfaction is also more in PTT. This is because of the less working time period for PTT and their involvement only in teaching activities. Every person in an organization thinks for equality in term of their value, participation, recognition, freedom etc. Most of the PTT were satisfied with feeling of equality while FTT thinks that there is inequality with full time teachers in terms of several activities. They were not satisfied with feeling of equality between the both teaching staff. Relationship between superiors and subordinates is also responsible for creation job satisfying

environment. Most of the PTT were not satisfied with relationship pattern with superiors while FTT were satisfied with this. More satisfaction in FTT was due do the development of informal relationship with their superiors. Contractual nature of job creates dissatisfaction in both PTT as well as FTT towards their responsibilities. In KGBVs leaving pattern for teachers also plays a critical role in job satisfaction. Data reveals that most of the PTT are highly satisfied with leave pattern with mean score of 4.12 while FTT are highly dissatisfied with mean score of 1.85. This highly dissatisfaction with leave pattern is due to very few numbers of regular holidays for FTT and availability of rotation leave only for Sunday.

Table: 2 "t" Statistics

	PTT	FTT
Mean	3.25	2.57
Standard deviation	0.81652	0.63973
Standard error	0.28869	0.22618
Correlation	0.004	
"t" value	1.865	

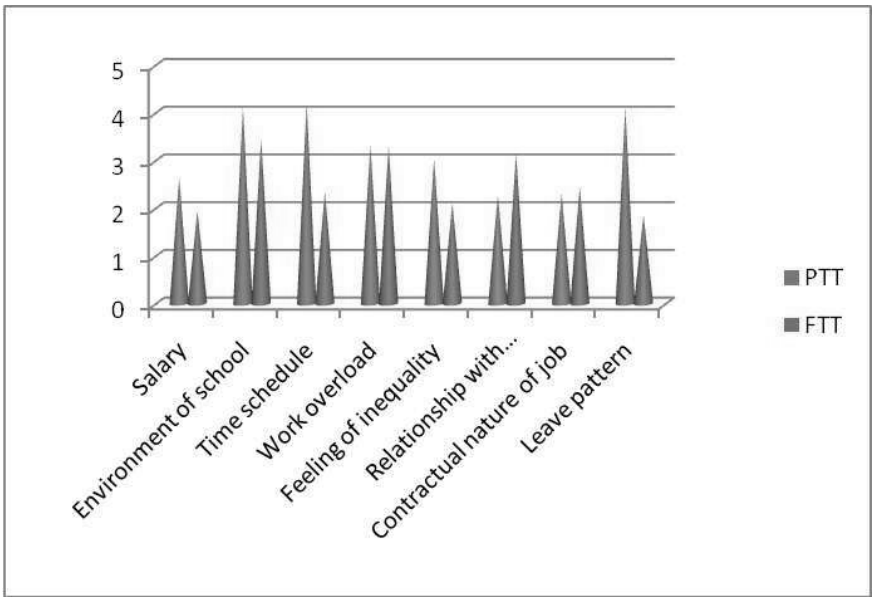

Figure -Comparison of satisfaction between PTT and FTT with different variables on the basis of their mean scores

CONCLUSION

The efficiency and determination of the teacher is the most important factor as far as the success of a school and students of that school. The determination and efforts in turn is dependent on the well being and satisfaction of the teachers. In an age of highly dynamic and competitive world, to be a satisfied person is a difficult task that can affect him on all realms of life. The growing importance

of interventional strategies is felt more at organizational level. This particular research was intended to study the impact of occupational stress on Part time and Full Time teachers of KGBVs. Although certain limitations were met with the study, every effort has been made to make it much comprehensive. It is expected to draw attention from policy makers and men of eminence in the related fields to resume further research.

RECOMMENDATIONS

Teachers are the assets of an educational organization and to retain them in organization some Effective measures should be taken into concern. Factors like Salary, Organizational environment, relationship among the employees and inequality should be the prime area for a head and To alleviate the negative consequences of these factors, more effort on the part of policy makers, practitioners, and organizational management has to envisage which are as follows:

- Salary should be according to job profile and stress level of employees.
- Certain modern techniques like tour, cultural activities should be included in organization to reduce the job stress.
- Proper appreciation and recognition should be given to hard working teachers.

REFERENCES

Hickman J.R, Oldham G.R. 1976, Motivation through design of work. *Organizational behaviour and human performance,* 16, 250–279.

http://ssa.nic.in/girls-education/kasturba-gandhi-balika-vidyalaya/kgbv-scheme (Retrieved on March 12, 2014)

Saleh S., 1981, A structural view of job involvement and its differentiation from satisfaction and Motivation, *International Review of Applied Psychology*, 30(1):17-29.

Sangeeta R., 2011, Status & Fuctioning of Kasturba Gandhi Balika Vidyalayas Uttarakhand, VSRD Technical & Non-Technical Journal Vol. 2 (11): 574-580.

Shobhna G., 2013, A Comparative Study of Job Satisfaction in Public and Private Sector, *Indian Journal of Arts,* 1(1):3-6.

Shweta S.S., 2014 , kasturba gandhi balika vidyalaya scheme- a Major draw for students to rejoin school, International Multidisciplinary Research Journal, 3(8)

Sinha D., 1958, Job satisfaction in the office and manual workers, *Indian Journal of Social Work*, 19, 39- 46.

Vander G, M Emans, and E VanDe, 2001, Patterns of interdependence in work teams: A two level investigation of the relation with job and team satisfaction, *Personnel Psychology*, 54 (1): 51-69.

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

Role of SHG Based Micro_Finance in Empowering Rural People : A Review

❒ Dr S P Verma[1]
❒ Dr Adesh Kumar Verma[2]
❒ Mamta Kanoujia[3]

Corresponding Authors : drspverma_kadc@rediffmail.com

ABSTRACT

Women empowerment is a process in which women challenge the existing norms and culture, to effectively promote their well being. The participation of women in Self Help Groups (SHGs) made a significant impact on their empowerment both in social and economical aspects. SHG is an organization of rural poor, particularly of women that deliver micro credit to undertake the entrepreneurial activity. Financial inclusion and participation of women in Self Help Groups (SHGs) made a significant impact on their empowerment both in social and economical aspects. Despite policy initiatives, the extent of inclusion is very low in rural and semi - urban India. There are still 90 million people who are excluded from the formal banking system for various reasons like lack of knowledge in the rural poor related to banking and banking products, high transaction costs and illiteracy. In this scenario, SHG based microfinance which is defined as the provision of financial services to the low income and vulnerable groups of the society is playing a challenging role in empowering rural people's and poverty eradication in economically viable manner. These groups concentrate mainly on thrift related activities; they also address several issues through training programs and capacity building members of these groups gain knowledge about government programs, environmental issues, planning and credit management etc. Also SHGs in rural area have empowered illiterate and poor women by linking them to the mainstream banking system and involving members in micro-entrepreneurship activities. These micro-entrepreneurship activities are also a feasible solution for empowering rural people.

Key words: Empowerment, microfinance, rural people, SHG

1. Associate Professor, Kulbhaskar Ashram P G College, Prayagraj
2. Ph.D. Research Scholar, IVRI, Izatnagar Bareilly
3. Full Time Teacher at KGBV Lakhimpur Kheri

Introduction

The Indian economy is the second fastest growing economy in the world with growth rate of 8.2% in 2010- 2011. Predominantly the population is concentrated in rural areas. As per the census of 2011, Indian population is 121 crore, out of which 70.5% of the population in rural areas. Therefore rural development is a prerequisite for the socio-economic development of the economy. It is vital for inclusive and sustainable growth. Credit is one of the very important inputs of economic development. The timely availability of credit at an affordable cost has a big role to play in contributing to the well-being of the weaker sections of the society. Availability of financial services at reasonable cost is very much important for the upliftment of the poor. In spite of several attempts to provide basic financial services, rural poor are still in the vicious circle of debt. Proper access to finance by the rural people is a key requisite to employment, economic growth and poverty reduction which are primary tools of rural women development.

In India, Microfinance scene is dominated by Self Help Group (SHGs) as an effective mechanism for providing financial services to the "Unreached Poor", and also in strengthening their collective self help capacities leading to their empowerment. Rapid progress in SHG formation has now turned into an empowerment movement among women across the country. Micro finance is necessary to overcome exploitation, create confidence for economic self reliance of the rural poor, particularly among rural women. Although no 'magic bullet', they are potentially a very significant contribution to gender equality and women's empowerment. Through their contribution to women's ability to earn an income, these programmes have potential to initiate a series of 'virtuous spirals' of economic empowerment, and wider social and political empowerment. Microfinance has emerged as a powerful tool for bridging the gap between poor and the banks. These are working with the objective of providing financial services to the bottom of the pyramid. These institutions targeted people who were previously excluded by the formal banking sector for the lack of security and various other reasons. Indian microfinance is dominated by Self Help Groups (SHGs) which are playing a powerful role in promoting financial inclusion. SHGs can give an opportunity to the rural poor to become self-sufficient and obtain financial freedom. The Indian banking sector today is struggling with the issue of financial inclusion. Financial inclusion is defined as the process of ensuring access to timely and adequate credit and financial services by vulnerable groups at an affordable cost (Kamath, 2007).Financial inclusion was envisaged and embedded in Indian credit policies in the earlier decades also, though in a disguised form and without the same nomenclature (Rao, 2007)and emphasis. Increasing access to credit for the poor has always remained at the core of Indian planning in fighting against the poverty. The 'social banking' policies followed by the country resulted in widening the 'geographical spread and functional reach' of commercial banks in rural area in the period that followed the nationalisation of bank (Shetty, 1997). Starting in the late 1960s, India is home to one of the largest state intervention in the rural credit market (Khandelwal, 2007).The present paper is an exploratory research study to review on the role of SHG based micro-finance in rural woman empowerment.

Need for micro finance

Rangarajan committee (2008) defined financial inclusion as "financial inclusion may defined as the process of ensuring access to financial services and timely and adequate credit where needed by vulnerable groups such as weaker sections and low income groups at an affordable cost". Financial services include

savings, insurance, loans etc. the objective is to help the poor to come out of the vicious circle of poverty. The index developed by Patrick Honohan to measure the access of financial services in 160 countries clearly proved that the advanced countries have higher indices (Agarwal, 2008). According to National Sample Survey Organization's (NSSO), 59th Round (2003), only 48.6 % of the total number of cultivator households received credit from both formal and informal sources (financial inclusion in a broader sense) and remaining 51.4 % did not receive any credit (total financial exclusion). The same survey revealed further that 22 % of the cultivator households received credit from informal sources (financial inclusion in a narrow sense). Only 27.6 % of the farmer households had availed credit from the formal institutions like banks, cooperatives and government (Jeromi, 2006).

The gap between rich and poor is increasing constantly. NC Saxena committee report (2009) says that 50% of the total population is below the poverty line. Therefore access to formal institutional finance to all the segments of the society and to provide wide range of financial services to every educate them should be on the top priority agenda of the government. Despite several efforts by RBI to cater to the financial needs of all the segments of the society through branch expansions and other initiatives the objective is not achieved. Still there are 400 million people not covered by any banks, out of which 280 million are below the poverty line. Out of 600 thousand villages in India only 30000 villages have bank branches. Poor people pay interest rates as high as 40-50% to money lenders leading to suicides and other social evils. Hence financial inclusion is the need of the time not only to shorten the gap between rich and the poor but also to reduce the social evils which are acting as hurdles for development.

Role of microfinance

Microfinance as an effective tool in promoting financial inclusion and thereby eliminating poverty. A discussion has been done about the policy framework in micro Finance sector, exiting MFI models in India and how these models contribute to the growth.(Srinivasan and Sriram (2009)). Shetty (2008) examined the role of micro finance in promoting financial inclusion and the impact of these programs on the economic and social welfare of the clients. A study was conducted in Karnataka to know the status of the household's pre and post micro finance. It is observed that about 89% of the clients are financially included post microfinance. Barman, et al. (2009) examined the effectiveness of micro finance as an alternate source of formal finance. A comparison has been done between the two microfinance models SHG – Bank linkage model and Grameena bank model. It is observed that microfinance has positively contributed towards financial inclusion. Agarwal (2008)opinioned that because of high cost non – price barriers and behavioral aspects financial inclusion will not happen on its own it needs the support of the policy makers. Sinha (2009) mentioned that if government wants major proportion of low income people to gain access to financial services they should focus both on interest rate controls and create enabling regulations for MFI's.

SHG and microfinance

Self Help Groups (SHGs) are the small groups of people, economically homogeneous and affinity group of 15-20 rural poor which comes together to save small amounts regularly, mutually agree to contribute to a common fund, meet their emergency needs, have collective decision making, resolve conflicts through collective leadership and mutual discussion, provide collateral free loans on terms decided by the group at market driven rates.

The SHG-Bank linkage programme started as a pilot programme in 1992 on the basis of recommendation of S K Kalia committee, in which SHGs are linked to banks in a gradual way-initially through savings and later through loan products- is considered to be an effective strategy to ensure financial inclusion (Rangappa, et al. 2010).

Models of linkage between SHG and Bank

SHG-bank linkage program has proved to be the major supplementary credit delivery system with a wide-bank linkage acceptance by banks, NGOs and various government departments. There are three models of SHG that have evolved over time, especially in India.

I. SHGs promoted and supported by banks

II. SHGs promoted by NGOs but financed by banks

III. SHGs promoted by NGOs and financed by NGO itself or any formal agency

Up to March 2006, 20% of the total numbers of SHGs financed were followed model -I, 74 percent followed model –II and only 6 percent followed model –III (Sadyojathappa, 2011).

Current status of financial inclusion and microfinance

The recent study concludes that the context of the availability and accessibility of the basic financial services is low, they states that *More than One billion poor people have no access to basic financial facilities,* which are essential for them to manage their precarious lives(Parida and Bandhu: 2012). In the case of rural India money lenders and other non-institutional financial sources still dominated. A study conducted by the (World Bank-NCAER Survey:2003) on „Rural Access to Finance indicate that 70 percent of the rural poor do not have a bank account and 87 percent have no access to credit from a formal source. This study found in the case of Andhra Pradesh and Uttar Pradesh in terms of informal sector landings 21% rural household have access to formal sector credit, although as much as 41% had a deposit account in a formal institutions. Informal sector lenders remain a strong presence in rural India (Basu and Srinivastava:2005)

At the end of 2009, there currently are more than 3,100 microfinance institutions (MFIs) were providing microcredit over 128 million people in the world. Over 100 million loans to poor families and their businesses, many of which explicitly aim to increase economic development and lift their clients out of poverty (Banerjee and Duflo: 2010. Microcredit Summit: 2009). Microfinance outreach and impact in the Indian context, The number of self-help groups (SHGs) savings linked increased to about 7.5 million with a member base of 98.1 million.(for detailed see the table no.8). The SHG bank linkage programme (SBLP) and the microfinance institutions (MFIs) put together achieved a growth in their customer base by about 10.8 per cent. The combined borrowing customer base increased to 93.9 million (Srinivasan: 2011)

The incidence of indebtedness among all rural labour households, defined as the percentage of indebted households to total rural labour households, increased from 25.0 per cent in 1999-2000 to 47.3 per cent in 2004-05. Access to formal source for lending increases continuously from 1951 to 2002 except in decade 1981-91.

While access to financial services can and does make vital contributions to the economic productivity and social well-being of poor women and their households, it does not "automatically" empower women, just as with other interventions, such as education, political quotas, etc., Therefore Micro finance works as a magic bullet to alleviate poverty and to promote women empowerment and to reduce the role of money lenders in rural credit system (Kabeer: 2005).

In 1951 about 70 percent people were accessing the informal souses of lending against only 5.9 accessed formal souses. Source assessment scenario just reversed in 2002 when more than 50 % people start accessing the formal sources of lending.

On 26th February 2012 this program has completed 20 years of progress and uplifted the lives of more than 80millionrural poor all over India. Therefore Microfinance through its SHG Linkage model is considered as a potential alternative for extending the financial services to the poor for various reasons like the ability of these institutions in providing credit and other financial services to the poor and the weaker sections, help them in overcoming financial shocks, support them in venturing into profitable entrepreneurial activities and encourage small savings.

Client outreach in MFI and SHG-Bank linkage program. During the period 2006-2010 there is 7.18% growth in the clients in SHG-Bank Linkage program and 3.97% in MFI program. The estimated number of families covered upto 31 March 2010 is 970 million. There is a considerable growth as compared to the previous year. (Report of NABARD 2009-10).

The overall progress under microfinance during the last three years. During the Year 2008-09 there is 22.2% increase in the number of SHGs and the amount of savings increased by 46.5%.in the year 2009-10 there is 13.6% increase in the number of SHGs and 11.8% increase in the amount of savings. Loan disbursed under SHG model in the year 2009-10 increased by 89.4% and Loan outstanding increased by 33.4% in SHG model.

Advantages of SHG Bank Linkage model

The success of SGH Bank linkage model can be attributed to the communal efforts of the poor, the managerial capabilities of the group intermediary and the financial strength of the banks. The advantages of this system are as—

- ✓ Peer group monitoring
- ✓ Peer Pressures
- ✓ Joint Liability
- ✓ Homogeneous and affinity in groups
- ✓ Compulsory Saving Mobilization

Mehrotra (1997), states that the Self-Help Groups have promptly repaid 80 per cent to 90 per cent of the finance given to small-scale units by the bank branches. He stresses that the self-help group is a good concept and every effort should be made to ensure its success.

Conclusion

Micro Finance has emerged as a powerful instrument for providing basic financial facilities to the rural poor, women, small and marginal farmers. The introduction of Micro finance programme increased the borrowing options to the rural poor and it is supposed to work as a weapon to alleviate poverty and to save the rural poor from the money lenders. Informal sector lenders remain a strong presence in rural India in terms of providing credit facilities in rural India. Farmers and rural poor borrowings from Money lenders and other informal sources of rural credit still significant this sources some extent i.e. 77 percent to 32 percent. In this situation micro finance has emerged as an alternative source of rural credit, microfinance programmes has providing all kinds of banking services, it includes loans, thrifts and insurance services. Sometimes it is working more than financial institutions. In addition to providing financial services MFIs typically provide information related to basic education, health, hygiene, child immunization, disease prevention and environment surely one cannot deny the role of microfinance in poverty reduction as it raises income and consumption of poor households. Around the world 128 million people were received microcredit. The growth of microfinance borrowers in the context of India consist of two dominated models SBLP and MFIs

increases from 48.0 to 93.9 million in between 2006-2011years. Major findings of this study explore the relationship between rural credit and microfinance instead of non-institutional sources of rural credit. The impact of microfinance on burden of rural debt is declined sharply, especially moneylenders and other non-institutional contribution in terms of lending to farmers, poor and women borrowings is going to downwards. Well managed and regulated microfinance programmes (particularly rate of interest, forced recovery of microcredit loans) augmented rural sector employment, productivity of non-agriculture sector, establishment of MSMEs, empowerment of women in socioeconomic aspects, it enhances health and educational facilities. Another important impact of microfinance programmes is that reduction of income and consumption disparities, especially vulnerable sections of the society will get the benefits from collateral or guarantee free. Microfinance programmes implies that the consumption pattern, it encourages from non-productivity expenditure to productive expenditure because of timely repayments of loans.

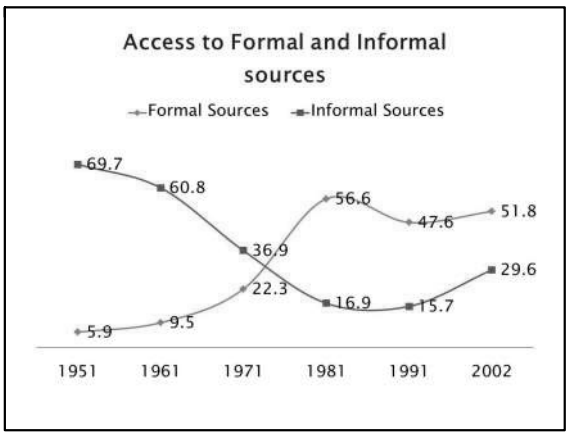

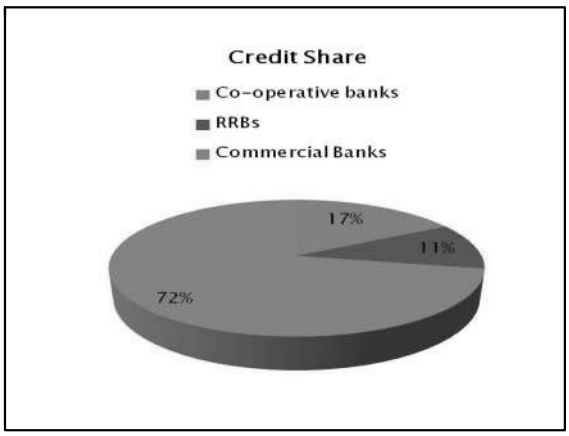

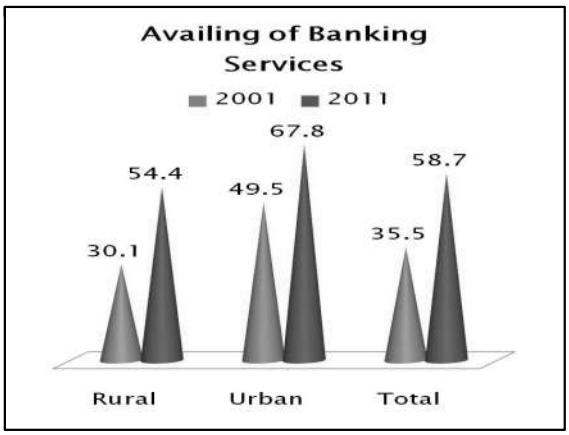

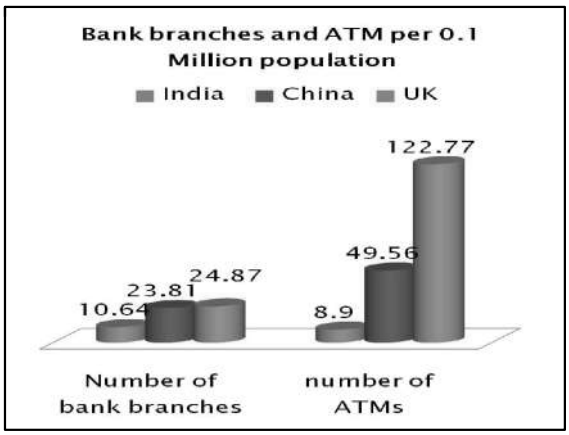

REFERENCES

Banerjee, A.V and Duflo, E (2010). "Giving Credit Where it is Due" MIMEO, MIT

Basu, Priya and Pradeep Srivastava (2005) "Exploring possibilities: Micro finance and rural credit access for the poor in India" Economic and Political Weekly. April 23, pp. 1747-1756.

C Rangarajan (2011): "Options in financial inclusion" Microfinance World Complementary with The financial Express

Kabeer, Naila.(2005) "Is micro finance a magic bullet for women s empowerment: Analysis of findings from South Asia" Economic and Political Weekly Oct 29, pp 4709-4718

Kamath Rajalaxmi (2007), "Financial Inclusion vis-à-vis Social Banking", Economic and Political Weekly, April, Vol. XLII (15), pp 1334-1335.

Kurukshetra (2009) Govt. of India, Ministry of Rural Development vol.58 November 2009

National Bank for Agriculture and Rural Development (1999), "Task Force Report on Supportive Policy and Regulatory Framework for Micro Finance, Mumbai, India.

NSSO, (2006), "Household Borrowing and Repayment in India During 1-7-02 to 30-6-2003", All India Debt and Investment Survey, NSS 59th Round, Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India.

Parida R.C and Bandhu, J.A (2012). "Rural Credit: Need of Financial Literacy."IIM Journal, Vol.1, No.1, pp. 146-152

Rangarajan, C (1996), "Rural India, the Role of Credit", Reserve Bank of India Bulletin, Reserve Bank of India, Mumbai.

RBI (www.rbi.org.in), and SIDBI (www.sidbi.in)

Sadyojathappa S (2011). Microfinance-self help group bank linkage programme (sblp) in india..

Shetty, S.L. (1997), "Financial Sector Reforms in India: An Evaluation", Prajnan, 25 (3-4), pp 253-287.

Srinivasan, N (2011) "State of the Sector Microfinance India 2011. New Delhi: SAGE Publications

World Bank/NCAER (2003) "Rural Finance Access Survey" www.nabard.org

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JULY TO SEPT., 2016) VOL. 3

ISSN : 2350-0441

उत्तर प्रदेश के संतुलित आर्थिक विकास की समस्याएँ एवं कठिनाइयाँ

❐ डॉ. जे.पी. सिंह*

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तर प्रदेश के सन्तुलित विकास में आने वाली समस्याओं एवं कठिनाइयों को चिन्हित किया गया है।

सन्तुलित विकास के लिए यह अत्यन्त आवश्यक रहा कि वहाँ की जनता के जीवन स्तर के अनुरूप विकास सम्बन्धी प्राथमिकताओं का निर्धारण किया जाय। किसी भी प्रदेश की एक समान रणनीति के आधार पर सन्तुलित विकास सम्भव नहीं है। इस प्रकार उत्तर प्रदेश में विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों के सन्तुलित आर्थिक विकास के लिए अलग–अलग स्तर पर प्राथमिकताओं का निर्धारण नहीं किया गया और चारों क्षेत्रों की आर्थिक विकास की स्थिति में काफी असमानतायें रही। पिछड़े क्षेत्रों का विकास अवरुद्ध हुआ। पश्चिमी उत्तर प्रदेश की प्राथमिकताओं एवं पूर्वी सीमावर्ती क्षेत्र की प्राथमिकताओं में काफी सरध ानात्मक अन्तर रहा। पूर्वी क्षेत्र मूल–भूत आवश्यकताओं के लिए भी सरकार पर निर्भर है जबकि पश्चिमी क्षेत्र में प्राथमिकताओं का निर्धारण विकास के एक उच्चस्तर पर किया गया। पिछडे जिलों या क्षेत्रों की प्राथमिकतायें मुख्य रूप से प्राथमिक क्षेत्र में सम्बन्धित निर्धारित की गयी। जबकि पश्चिमी क्षेत्र में औद्योगिक तथा सेवा क्षेत्र को प्राथमिकता दी गयी।

सरकार की आर्थिक नीतियों में दोहरापन

केन्द्र या विकास के लिए राज्य सरकार द्वारा जो नीतियाँ बनायी गई उनके मध्य सामंजस्य का अभाव पाया गया प्रदेश का पूर्वी तथा मध्य क्षेत्र आज भी विकास के लिए पिछ्ड रहा है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश कृषि उद्योग तथा सेवा क्षेत्र की दृष्टि से प्रथम स्थान पर है। प्रदेश के पिछड़े क्षेत्रों के लिए सरकारी नीतियों के बनने पर उनका क्रियान्वयन उचित रूप में नहीं हो सका। पश्चिमी तथा पूर्वी प्रदेश में विकास के लिए बनायी गयी। सरकारी नीतियों में मूलभूत रूप में अनेक अन्तर पाये गये जबकि बुन्देलखण्ड क्षेत्र आजादी के पूर्व तथा बाद में भी विकास के प्रति उपेक्षित रहा है। यही कारण है कि यहाँ गरीबी पदहाली चहुँ ओर दिखाई देती है।

संसाधनों की उचित उपयोग नीति की कमी के कारण भी सन्तुलित विकास में बाधायें उत्पन्न हुयी जिन क्षेत्रों में प्राकृतिक तथा मानवीय संसाधनों की प्रचुरता है। उन क्षेत्रों के विकास में इन संसाधनों का प्रयोग नहीं

* एसो. प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, डी.एस. कालेज, अलीगढ़ (उ.प्र.)

हो पा रहा है। एक क्षेत्र के संसाधनों का प्रयोग एक लम्बे समय तक दूसरे क्षेत्रों के आर्थिक विकास के लिए किया गया है। प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता होने के बावजूद इन क्षेत्रों के प्राकृतिक संसाधनों का भी दूसरे क्षेत्रों के विकास के लिए किया गया। पूर्वी तथा बुन्देलखण्ड क्षेत्र में खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।इनका प्रयोग इस क्षेत्र के विकास के लिए न होकर दूसरे क्षेत्रों तथा प्रदेशों के लिए किया गया जिससे यहाँ के मानवीय श्रम को पर्याप्त रोजगार उपलब्ध न हो सका। फलस्वरूप पूर्वी उत्तर प्रदेश से श्रम का विस्थापन पश्चिमी क्षेत्र के लिए हुआ।

गरीबी का दुश्चक्र

प्रदेश में गरीबी का दुश्चक्र भी संन्तुलित विकास के मार्ग में एक समस्या है। प्रोफेसर नर्क्से के अनुसार इसका तात्पर्य ऐसी शक्तियों का वित्तीय समूह है जो एक दूसरे पर इस तरह क्रिया प्रतिक्रिया करती है कि वे एक दरिद्र देश को दरिद्रता की अवस्था में रखती है। गरीबी का दुश्चक्र मानवीय तथा प्राकृतिक संसाधनों को आच्छादित कर लेता है। प्राकृतिक साधनों का विकास लोगों की उत्पादन क्षमता पर निर्भर रहता है।

पूर्वी तथा बुन्देलखण्ड क्षेत्र में साक्षरता का स्तर अपेक्षाकृत कम है। इसके साथ पूर्वी क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति आय भी निम्न स्तर पर पायी गयी पूर्वी क्षेत्र में ज्ञान, उद्यमशीलता, अशिक्षा के कारण साधनों का पूर्ण प्रयोग सम्भव नहीं हो सका। पिछड़े क्षेत्र में प्रति व्यक्ति आय निम्न होने के कारण माँग का स्तर भी निम्न रहा जिसके चलते पिछड़े क्षेत्र में निवेश को बढ़ावा नहीं मिल सका।

पूँजी निर्माण की दर में भिन्नता

प्रदेश के सन्तुलित आर्थिक विकास के लिए पूँजी की पर्याप्त उपलब्धता आवश्यक है। प्रदेश चारों क्षेत्रों में पूँजी निर्माण की दर भिन्न–भिन्न पायी गयी। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पूंजी निर्माण की दर ऊँची होने के विपरीत पूर्वी क्षेत्र में यह दर निम्न स्तर पर है। शिक्षा प्रशिक्षण एवं कार्य कुशलता की कमी के कारण पूर्वी उत्तर प्रदेश में पुराने पूँजी उपकरण तथा उत्पादन के तरीकों का प्रयोग किया गया । पूँजी की सीमान्त उत्पादकता बहुत कम रही। जिसके परिणाम स्वरूप वास्तविक आय, बचत निवेश तथा पूँजी निर्माण की दर के स्तर कम हुए। प्रदेश में लाखों किसान पुराने तथा अप्रचलित पूँजी उपकरण का प्रयोग करते है दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं की कमी के कारण बचत को प्रोत्साहन नहीं मिला।

प्रदेश के जिन क्षेत्रों में निवेशकों का ऋण आसानी से उपलब्ध हुआ वहाँ आर्थिक विकास की गति अधिक रही। आर्थिक विकास की प्रक्रिया को निरन्तर जारी रखने के लिए बैंकिंग सुविधाओं की उपलब्धता अत्यन्त आवश्यक पायी गयी ऋण सम्बन्धी सुविधायें उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं का विकास भी विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग रहा।

बैंक शाखाओं की कार्य पद्धति में भी अन्तर पाया गया। पश्चिमी तथा मध्य उत्तर प्रदेश में औद्योगिक बैंक शाखाओं की अधिकता पायीगयी जो निवेशकों को बिना किसी असुविधा के वित्तीय सहायता उपलब्ध करायी। पूर्वी क्षेत्र में गैर संस्थागत ऋण सुविधाएं उपलब्ध हुयी। जो क्षेत्र के विकास की अपेक्षा जनता पर बोझ बनी हुयी है। गैर संस्थागत व्याज की दर अत्यन्त ऊँची रही जो क्षेत्र के विकास के अनुकूल नहीं है।

वित्तीय संस्थाओं की कार्य प्रणाली भी स्थानीय उद्यमियों के व्यवहार तथा कार्य पद्धति पर निर्भर करती है। पूर्वी व बुन्देलखण्ड के पिछड़े हुये क्षेत्रों में उद्यमिता की कमी, निम्न स्तर की सामाजिक स्थिति, जनता में जागरूकता का अभाव आदि के कारण भी वित्तीय सुविधाओं का विकास व विस्तार सम्भव नहीं हुआ।

सार्वजनिक एवं निजी विनियोग

उत्तर प्रदेश के सन्तुलित आर्थिक विकास के मार्ग में सबसे बड़ी समस्या सार्वजनिक एवं निजी विनियोग के मध्य सामजस्य का न होना पाया गया। प्रदेश में सार्वजानिक एवं निजी निवेश को उसी क्षेत्र में अधिक प्राथमिकता दी गयी। जिन क्षेत्रों में विकास की अधिक सम्भावना थी। पश्चिमी उत्तर प्रदेश सार्वजनिक निवेश की स्थिति ठीक होने के साथ–साथ

निजी क्षेत्र के उद्यमियों द्वारा इस क्षेत्र को निवेश के लिए सर्वाधिक सुरक्षित माना। परिणाम स्वरूप पश्चिमी उत्तर प्रदेश में औद्योगिकीकरण हुआ है। इस क्षेत्र का विकास तीव्र गति से हुआ। इस निवेश का प्रदेश की अर्थव्यवस्था पर बहुआयामी प्रभाव के कारण कृषि तथा सेवा क्षेत्र पर भी विकासात्मक प्रभाव पड़ा। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में औद्योगिक विकास के साथ–साथ कृषि का विकास भी सन्तोषजनक रहा है।

पूर्वी क्षेत्र में औद्योगीकरण को बढ़ावा देने के लिए भारी मात्रा में सार्वजनिक निजी निवेश की आवश्यकता है। पश्चिमी क्षेत्र का औद्योगिक एवं कृषि काविकास होने के कारण पूर्वी उत्तर प्रदेश के श्रम व अन्य संसाधनों का पलायन इस क्षेत्र की ओर हुआ। फलस्वरूप पूर्वी क्षेत्र पूँजीपतियों के निवेश के लिए अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका। बुन्देलखण्ड क्षेत्र कृषि दृष्टि के पिछड़ापन का शिकार है तथा औद्योगिक विकास नगण्य है। प्रदेश की सरकारों ने भी इस क्षेत्र के पिछडेपन को दूर करने के विशेष उपाय नहीं किये।

सामाजिक राजनीतिक कारण

प्रदेश के सन्तुलित विकास की बाधाओं में सामाजिक तथा राजनीतिक तत्व भी महत्वपूर्ण स्थान रखते है। भय, अशान्ति, आतंकवाद, राजनीतिक हिंसाओं ने भी मध्य तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के विकास को बाधित किया है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में कानून व्यवस्था एवं नक्सलवाद का आर्थिक विकास विरोधी प्रभाव स्पष्ट दिखायी पड़ा है। सोनभद्र, निर्जापुर, चन्दौली में नक्सलवाद फैला हुआ है जबकि पश्चिमी तथा मध्य क्षेत्र के भागों में इस प्रकार की कोई समस्या नहीं है। देशी तथा विदेशी उद्यमियों ने उद्योगों की स्थापना के लिए नक्सलवाद प्रभावित क्षेत्रों से दूर रहकर पश्चिमी उत्तर प्रदेश को उद्योग की स्थापना के लिए प्राथमिकतायें दी।

पूर्वी क्षेत्र में इस प्रकार की स्थिति के लिए राजनीतिक कारण भी रहे। इन क्षेत्रों में सिंचाई के साधनों का व्यापक अभाव है। आधारभूत सुविधाओं की कमी रही इसके साथ क्षेत्र की जनता का जीवन स्तर जोकि अर्थव्यवस्था में माँग को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है भी सन्तुलित विकास न होने के लिए जिम्मेदार है। स्थानीय रोजगार का अभाव सामाजिक परम्परावादी मानसिकता. अकुशल श्रमिक आय का निम्न स्तर सामाजिक संचेतना की कमी राजनैतिक स्वार्थ धार्मिक आडम्बर भेदभाव, पूर्ण समाज आदि कारणों से पूर्वी व बुन्देलखण्ड विकास में पिछड़ गये।

भौगोलिक कारक

प्रदेश की भौगोलिक अवस्थिति भी सन्तुलित विकास न होने के लिए जिम्मेदार है ऊपरी गंगा मैदान तथा मध्य गंगा मैदान अपने उपजाऊपन के कारण कृषि के विकास में पश्चिमी क्षेत्र अग्रणी रहा। यहाँ रेल, सड़क परिवहन के साधनों का बड़े स्तर पर विकास सम्भव हुआ। बुन्देलखण्ड क्षेत्र, मध्य क्षेत्र की सीमाओं से जुड़े होने के कारण परिवहन सुविधाओं का विकास करने में अधिक सफल रहा। क्षेत्र के जनपदों का भारत की राजधानी दिल्ली के नजदीक होने के कारण इस क्षेत्र का तीव्र विकास सम्भव हुआ। इस क्षेत्र को राजस्थान, मध्य प्रदेश दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, उत्तरांचल, हिमाचल प्रदेश के समीपवर्ती स्थित होने का भी आर्थिक विकास के क्षेत्र में पूर्ण लाभ मिला। मध्य क्षेत्र उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में होने के कारण एवं भौगोलिक दृष्टि से समतल एवं उपजाऊ विकास की और अग्रसरित हुआ।

उत्तर प्रदेश में जलवायु विविधता के साथ–साथ नदियों का जाल बिछा हुआ है। प्रदेश में तीन ऋतुए वर्षा, शरद, ग्रीष्म के अनुसार कभी–कभी प्राकृतिक आपदायें भी उत्तर प्रदेश के सन्तुलित आर्थिक विकास के प्रयास को नकारात्मक रूप में प्रभावित करती है। जुलाई अगस्त सितम्बर के महीनों में पूर्वी तथा मध्य क्षेत्र नदियों में आयी बाढ़ का शिकार होता रहा है। जिससे अर्थव्यवस्था को प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से नुकसान हुआ। इसके साथ परिवहन तथा संचार सुविधाओं की उपलब्धता में भी इस मौसम में कभी आंकलित की गई। अत्यधिक वर्षा तथाओलावृष्टि के कारण भी इन क्षेत्रों में जन–धन की हानि होती रही। ग्रीष्म ऋतु में

पूर्वी, मध्य क्षेत्र के साथ–साथ पश्चिमी उत्तर प्रदेश का कुछ भाग सूखे की चपेट में आता रहा है। जिसके कारण कृषि में होने वाली हानि की भरपाई आगामी फसलों से भी नहीं कर पाते।

जनांकिकीय दबाव

उत्तर प्रदेश के सन्तुलित विकास में जनांकिकीय तत्वों द्वारा भी कठिनाइयों एवं समस्याऐं उत्पन्न की गई। प्रदेश के विभिन्न जिलों एवं क्षेत्रों में कुल जनसंख्या, महिला–पुरुष साक्षरता दर लिंगानुपात एवं जन घनत्व आर्थिक विकास के स्वरूप को अनेक रूपों में प्रभावित किया गया। किसी क्षेत्र का आर्थिक विकास वहाँ की श्रम शक्ति मात्रा पर निर्भर करता है। पुरुष साक्षरता के साथ–साथ महिला साक्षरता की दर क्षेत्र में श्रमशक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मात्रात्मक तथा गुणात्मक रूप में प्रभावित करती है। पूर्वी उत्तर प्रदेश का सर्वाधिक भौगोलिक क्षेत्रफल होने के साथ–साथ जनसंख्या का घनत्व तथा स्त्री–पुरुष अनुपात सर्वाधिक है।

योजनाओं के क्रियान्वयन में अन्तर

भौगोलिक क्षेत्रफल की दृष्टि से अपेक्षाकृत एक बड़े भू–भाग में विस्तृत होने के कारण विकास सम्बन्धी योजनाओं का क्रियान्वयन में एक रूपता नहीं आ सकी। योजनाओं का क्रियान्वयन अधिकारियों की कार्यकुशलता राजनैतिक महत्वाकांक्षा, जनता का सहयोग एवं जागरूकता आदि पर एक बड़ी सीमा तक निर्भर करता है। उत्तर प्रदेश के चारों आर्थिक क्षेत्रों में उक्त तत्वों में काफी भिन्नतायें है जिसके कारण योजनाओं के क्रियान्वयन में अनेक प्रकार की बाधायें उत्पन्न हुयी। फलस्वरूप उत्तर प्रदेश का सन्तुलित विकास सम्भव नहीं हो सका। अधिकारी वर्ग उसी क्षेत्र में योजनाओं के क्रियान्वयन में अधिक रूचि दिखायी जिन क्षेत्रों में योजनाओं के क्रियान्वयन से उन्हें अतिरिक्त आय प्राप्त हुयी। पूर्वी क्षेत्र में आर्थिक पिछड़ापन के कारण अधिकारी एवं जनता में योजनाओं के प्रति अधिक अभिरूचि नहीं दिखायी गयी। जनता का ध्यान रोजगार तथा आय उपार्जन के लिए मध्य तथा पश्चिमी क्षेत्र की ओर रहा।

तकनीकी में भिन्नताएँ

उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक विकास के विभिन्न तत्वों से सम्बन्धित तकनीकी में भिन्नताऐं पायी गयी। पिछड़े हुए क्षेत्रों/जिलो में आज भी कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों में पुरानी सकनीकी से कार्य किया जा रहा है। जबकि पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा मध्य उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों में आधुनिक तकनीकी का प्रयोग कृषि तथा उद्योग में किया जा रहा है। उत्तर प्रदेश के सन्तुलित विकास के लिए यह आवश्यक है कि क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों के कुशल विदोहन के लिए ऐसी तकनीकी का प्रयोग स्थानीय स्तर पर हो प्रदेश के पिछड़े क्षेत्रों की श्रम शक्ति एवं प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग उसी क्षेत्र के लिए न होकर विकसित क्षेत्रों के लिए हो रहा है। उत्तर प्रदेश के आर्थिक विकास में प्रयुक्त होने वाली तकनीकी आर्थिक विषमताओं को बढ़ावा देने वाली रही। प्रदेश में प्राकृतिक तथा मानवीय संसाधनों के मध्य विकास के सन्दर्भ में सामंजस्य स्थापित नहीं हो सका इसके साथ आवश्यकता के अनुसार तथा वैश्विक उदारीकरण के परिपेक्ष्य में प्रदेश के संसाधनों का प्रयोग सन्तुलित विकास के लिए नहीं हो सका।

उदारीकरण के दौर में लागत में कभी करने के उद्देश्य से पूँजी प्रधान तकनीकी का प्रयोग विकास के सभी क्षेत्रों में किया जा रहा है।

संदर्भ :

1. उत्तर प्रदेश 2020
2. भारत, 2020
3. कुरूक्षेत्र, भारत सरकार
4. योजना, भारत सरकार
5. अर्थ चिन्तन, अखाट
6. वार्ता – इलाहाबाद
7. इण्डियन इकॉनामिक नर्जल